MAPA - 06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विकास प्रशासन

MAPA - 06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विकास प्रशासन

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक एवं समन्वयक

प्रो. पी.सी. माथुर
परामर्शदाता (लोकप्रशासन)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. अरविन्द शर्मा**
  आचार्य, प्रबंध विकास संस्थान
  गुड़गांव
- **प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली**
  आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **प्रो.(डॉ.) पी.डी. शर्मा**
  आचार्य(सेवानिवृत्त), राजनीति विज्ञान विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो.(डॉ.) आर.बी. जैन**
  आचार्य(सेवानिवृत्त), राजनीति विज्ञान विभाग
  दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- **प्रो. अशोक शर्मा**
  आचार्य(सेवानिवृत्त), लोक प्रशासन विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो.(डॉ.) रविन्द्र शर्मा**
  आचार्य(सेवानिवृत्त), लोक प्रशासन विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो. राजेन्द्र जोशी**
  आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  महर्षि दयानन्द सरस्वती विद्यालय, अजमेर
- **प्रो.(डॉ.) बी.एम. चितलंगी**
  आचार्य, लोक प्रशासन विभाग
  जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
- **डॉ. लीला राम गुर्जर**
  सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **डॉ. अशोक शर्मा**
  सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादन

प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली	**डॉ. लीला राम गुर्जर**	**डॉ. अशोक शर्मा**
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग	सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग	सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

संपादक

पाठ लेखक	(इकाई संख्या)	पाठ लेखक	(इकाई संख्या)
प्रो.(डॉ.) आर.के. सप्रू आचार्य, लोक प्रशासन विभाग **पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़**	**1,2**	**डॉ. प्रदीप कुमार सक्सेना** व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	**8**
डॉ. एम.ए. कयूम रजिस्ट्रार (से.नि.) **एन.आई.आर.डी., हैदराबाद**	**3**	**डॉ. नेमीचन्द गोलिया** म.नं. 2752 सेक्टर 37-सी, **चण्डीगढ़**	**9**
डॉ. आर.सी. श्रीवास्तव **रीपा, जयपुर**	**4**	**प्रो.(डॉ.) रवीन्द्र शर्मा** आचार्य(से.नि.), लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	**10**
प्रो.(डॉ.) आर.बी. जैन आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग **दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**	**5**	**डॉ. धर्मेन्द्र मिश्रा** व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग **एम.एल.वी. राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा**	**11**
डॉ. आर.पी. जोशी आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग **एम.डी.एस. विश्वविद्यालय, अजमेर**	**6, 13**	**श्री टी.एन. चतुर्वेदी** मुख्य नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (से.नि.) भारत सरकार, नई दिल्ली	**12**

प्रो.(डॉ.) बालारामूलु **7**
आचार्य, लोक प्रशासन विभाग
काकाटिया विश्वविद्यालय,वारांगल

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली**	**प्रो.(डॉ.) पी.के. शर्मा**
कुलपति	निदेशक	निदेशक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**
	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन- अप्रैल 2009 ISBN - 13/978-81-8496-035-8

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय सूची

विकास प्रशासन

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	विकास प्रशासन : अवधारणा, अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र	8–22
इकाई - 2	विकास प्रशासन : उद्भव एवं विकासशील देशों में इसकी भूमिका	23–39
इकाई - 3	भारत में ग्रामीण विकास प्रशासन : एक परिदृश्य	40–48
इकाई - 4	भारत में पंचायती राज और ग्रामीण विकास	49–55
इकाई - 5	विकास प्रबंधन में नागरिक सहभागिता	56–67
इकाई - 6	विकास प्रशासन और सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था	68–79
इकाई - 7	विकास प्रबंध एवं आर्थिक व्यवस्थायें	80–86
इकाई - 8	योजना प्रतिपादन एवं कार्यान्वयन	87–93
इकाई - 9	जिला एवं उससे नीचे के स्तर पर विकास के लिये प्रशासनिक व्यवस्था: जिला ग्रामीण विकास अभिकरण एवं पंचायतीराज संस्थाएँ	94–114
इकाई - 10	नौकरशाही की संस्कृति और विकास प्रशासन	115–134
इकाई - 11	गैर सरकारी संगठनों की स्थिति व भूमिका	135–146
इकाई - 12	ग्रामीण विकास प्रशासन : बदलते परिप्रेक्ष्य	147–156
इकाई - 13	विकास प्रशासन में जन प्रतिभागिता	157–168

अध्याय–1

विकास प्रशासन : अवधारणा, अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 विकास प्रशासन की अवधारणा
1.3 विकास प्रशासन का अर्थ
1.4 विकास प्रशासन की प्रकृति
1.4.1 राजनीतिक सन्दर्भ
1.4.2 आर्थिक सन्दर्भ
1.4.3 सामाजिक सन्दर्भ
1.5 विकास प्रशासन की विशेषताऐं
1.5.1 नियोजित परिवर्तनोन्मुखी प्रशासन
1.5.2 लक्ष्योन्मुखी प्रशासन
1.5.3 क्षमता–निर्माणोन्मुखी प्रशासन
1.5.4 अनुक्रियाशीलोन्मुखी प्रशासन
1.5.5 सृजनात्मक एवं नवाचारोन्मुखी प्रशासन
1.5.6 जनोन्मुखी प्रशासन
1.5.7 सहभागितान्मुखी प्रशासन
1.6 विकास प्रशासन का क्षेत्र
1.6.1 प्रशासन का विकास
1.6.2 विकास का प्रशासन
1.7 सारांश
1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
1.9 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- विकास प्रशासन का अर्थ 'एवं अवधारणा को समझ सकेंगे,
- विकास प्रशासन और परम्परागत प्रशासन के बीच अन्तर को समझ पाएंगे, तथा
- विकास प्रशासन के क्षेत्र की व्याख्या कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त में लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार का विकास नए सिद्धान्तों नए तकनीकों का विकास है जिसने लोक प्रशासन के परम्परागत सिद्धान्त में कुछ आवश्यक बदलावों को अनिवार्य बना दिया। 1950 के दशक के आरम्भ में एक महत्त्वपूर्ण विकास विकासशील देशों के सामाजिक–आर्थिक विकास में लोक प्रशासन की बढ़ती सम्बद्धता एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति बन गई। विकासशील देशों में यह तर्क दिया जाता रहा है कि यह सरकार और उसकी भुजाऐं, लोक प्रशासन, राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

विकास को राजनीति के केन्द्र तथा राष्ट्रीय नेताओं के लक्ष्य के रूप में मान्यता प्रदान की गई। धन और आय का बढ़ता समान वितरण, मानव शक्ति का पूर्ण उपयोग, प्राकृतिक संसाधनों का कुशलता से उपयोग तथा मानवीय वातावरण का संरक्षण को मुख्य विकास लक्ष्यों में शामिल किया गया। इससे भी अधिक सामाजिक विकास की विकास के एकीकृत भाग के रूप में पहचान की गई। एक बार विकास की राजनीति के केन्द्र के रूप में पहचान करने के बाद सरकार के कार्यों में वृद्धि केवल विस्तार, घनत्व एवं महत्व की दृष्टि से ही नहीं हुई बल्कि जटिलता की दृष्टि से भी हुई क्योंकि बहुत सारे दायित्वों और मामले जो कि विकास से जुड़े हुए थे केवल सरकार द्वारा या उसके समर्थन के साथ ही 'हल किए जा सकते हैं। लोक प्रशासन राष्ट्रीय विकास के कार्यों को हासिल करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। लोक प्रशासन की भूमिका की पहचान और प्रशासनिक क्षमताओं में बढ़ोतरी करने से यह काम और आसान हो जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रकाशन में संक्षेप में लिखा कि 'यह खतरनाक होगा यदि राष्ट्रीय विकास के लिए जो उत्तरदायी है उनके द्वारा लोक प्रशासन के महत्व की पहचान नही की गई या लोक प्रशासन को पूर्णतया विकसित नहीं किया और विकासशील देशों के विकास की भरसक कोशिश में इसको काम में लिया जाए। "एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के विकासशील देशों में विकास प्रशासन की आवश्यकता को नीतियों के क्रियान्वयन तथा राष्ट्र–निर्माण और सामाजिक–आर्थिक विकास की ओर योजनाओं के निर्देशन के साधन के रूप में पहचान की गई है। विकास प्रशासन की मूल मान्यता है – राष्ट्रीय विकास के सभी प्रयासों के भाग के रूप में लोक प्रशासन तन्त्र में सुधार और निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करना।"

1.2 विकास प्रशासन की अवधारणा

विकास प्रशासन की अवधारणा अपने उद्भव के लिए पश्चिमी अध्येताओं के कार्य, विशेषकर अमेरिकी अध्येताओं के लिए ऋणी है। एक अवधारणा के रूप में इसका विकास 1960 के दशक के शुरूआत में, राज्य के द्वारा विकास के युग में, पश्चिम में हुआ। इसके उत्प्रेरण रॉबर्ट डहाल के 1947 में लिखे लेख में ढूंढे जा सकते हैं जहाँ लोक प्रशासन की तुलनात्मक ढाँचे के विकास करने में अयोग्य रहने के कारण आलोचना की गई थी। हालांकि इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग एक भारतीय सिविल सेवक यू.एल. गोस्वामी ने 1955 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सन्दर्भ में लिखे एक लेख में किया था। इसको गेंट, स्टोन, रिग्स और विडनर ने 1960 के दशक में लोकप्रिय बनाया।

एफ. डब्ल्यू रिग्स को विकास प्रशासन के क्षेत्र की धूरी के रूप में जाना जाता है। भट्टाचार्य ने लिखा है – "विकास प्रशासन पश्चिमी विकसित देशों की एक (प्र)शाखा और द्वितीय विश्व युद्धोत्तर युग में नये स्वतन्त्र देशों में सामाजिक–आर्थिक पुनर्निर्माण को तेजी से आगे बढ़ाने की उत्सुकता थी।"

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त नये राज्यों का उद्भव हुआ जिन्हें तृतीय विश्व का नाम दिया। तृतीय विश्व में राष्ट्र–निर्माण एवं सामाजिक–आर्थिक प्रगति की प्राप्ति हेतु तन्त्र के रूप में 'विकास प्रशासन; को यू.एस.ए.आई.डी (USAID) कार्यक्रम के नेतृत्व में लोकप्रिय बनाया गया। इस कार्यक्रम के तहत विपुल मात्रा में वित्त, प्रशासन व तकनीकी सहायता उपलब्ध करायी गई थी। 1930 की महान् मन्दी के प्रभावों द्वितीय विश्व युद्ध (1939–45)ए की चुनौतियों, मार्शल प्लान की सीखो (पश्चिमी यूरोप का पुनर्निर्माण कार्यक्रम), और विकासशील देशों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को सुधारने के संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों ने विकास प्रशासन की अवधारणा के विकास को प्रभावित किया। इसके पीछे आधारभूत मान्यता और अन्तर्निहित उद्देश्य यह था कि – पर्याप्त विदेशी सहायता और बदली हुई प्रशासन–व्यवस्था को नये राष्ट्रों द्वारा स्वीकारने पर ही पश्चिमी औद्योगिक प्रगति को प्राप्त किया जा सकेगा अन्यथा नहीं। दूसरी ओर मार्क्सवादी–लेनिनवादी विचारधारा के द्वारा प्रस्तुत वर्गविहीन समाज का प्रतिरोध करना भी इसका दूसरा कारण माना गया। नये राष्ट्रों को साम्यवाद की घोषणाओं से बचाया जा सकता था। ला पालोम्बरा ने लिखा है कि '.. मुख्य बात यह है कि यही उचित रूप में हमारी राजनीतिक विचारधारा, और हमारे राजनीतिक संस्थाओं की विवेक संगत अनुलिपि का निर्यात अधिक मुक्त एवं सचेत रूप में होना चाहिए न कि केवल अमेरिकी तकनीकी जानकारी का ही।"

इसके बावजूद भी मूल मुद्दा विद्यमान सरकारी तन्त्र का रूपान्तरण एक नई सत्ता में करने का था। यह प्रशासनिक विकास द्वारा सम्पन्न हुआ था। जैसे– बाहरी अभिप्रेरण द्वारा सरकारी तन्त्र का आधुनिकीकरण करना, तकनीकी हस्तान्तरण, विदेशी विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण और लोक–प्रशासन की संस्थाओं की स्थापना आदि विकासशील देशों में करना।

आखिर में संयुक्त राष्ट्र संघ और उसकी एजेन्सियों (जैसे डब्ल्यू.एच.ओ., युनेस्को व आईएलओ) की स्थापना और शोध निधियन संस्थाओं (जैसे फोर्ड फाउण्डेशन, विश्वविद्यालयों एवं अमेरिकन सोसाइटी फॉर पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन) ने विकास प्रशासन की अवधारणा के उद्भव में उत्प्रेरण का काम किया। इन तन्त्रों का प्रयोग किया जाता था कि किस प्रकार नवोदित राष्ट्रों द्वारा पश्चिमी स्तर के जीवन स्तर को प्राप्त किया जा सकता था। राज्यनीत विकास युग में यह माना जाता था कि विकासशील देश पश्चिम की औद्योगिक प्रगति को तब ही हासिल कर पाएंगे जब उन्हें पर्याप्त तकनीकी सहायता एवं बदला हुआ प्रशासनिक तन्त्र प्राप्त होगा। इन देशों में विकास राजनीति का केन्द्र बिन्दु बन गया। विकास प्रशासन को विद्यमान एवं नये संसाधनों के संचालन करने, पर्याप्त प्रशासनिक क्षमताओं का सृजन करने तथा सहमति मूलक विकासमान लक्ष्यों को हासिल करने के रूप में देखा गया था। इस प्रकार विकास प्रशासन लोगों की आवश्यकताओं के प्रति अनुक्रिया के दायित्व के साथ क्रियान्मुखी प्रशासन बन गया। विकसित राष्ट्रों के कार्य को बाह्य उत्प्रेरण का सृजन करने से लेकर तकनीकी सहायता द्वारा परिवर्तन करने तथा संस्थाओं एवं तकनीक का हस्तान्तरण के रूप में देखा गया। पश्चिमीकरण की ऐसी रणनीति ने प्रशासनिक तन्त्र और सम्पूर्ण राष्ट्रीय समुदाय दोनों को साथ–साथ निर्देशित किया था।

1.3 विकास प्रशासन का अर्थ

विकास प्रशासन 1960 के दशक के आरम्भ में तब विकसित हुआ जब लोक प्रशासन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। लेकिन 1960 के दशक के मध्य से विकासशील देशों में विकास प्रशासन ने धीरे–धीरे लोकप्रियता हासिल की, हालांकि यह पूर्णतया स्पष्ट नहीं है कि इसका अर्थ क्यों है। लोक–प्रशासन के अधिकतर अध्येता और सम्बन्धित अनुशासकों ने विकास प्रशासन की अवधारणा को परिभाषित करने का प्रयास करना शुरू किया।

एडवर्ड डब्ल्यू. वीडनर के अनुसार, "विकास प्रशासन विकास के लिए नवाचारों को अधिकतम करने से सम्बन्धित है।" उन्होंने परिभाषित किया कि "विकास के लिए नवाचार आधुनिकता या राष्ट्र–निर्माण तथा सामाजिक–आर्थिक बदलाव की दिशा में किया जाने वाला नियोजित या इरादतन बदलाव की प्रक्रिया है। ' इसी तरह जॉन मोन्टगोमरी ने 'विकास प्रशासन को अर्थव्यवस्था में (कृषि, उद्योग, वित्तीय संरचना आदि में) एवं, कुछ सीमा तक, राज्य की सामाजिक सेवाओं में (विशेषकर शिक्षा एवं जन स्वास्थ्य) नियोजित बदलाव लाने के रूप में परिभाषित किया। " इनायतुल्ला के लिए विकास प्रशासन संगठनात्मक व्यवस्थाओं की एक जटिलता है – राष्ट्र निर्माण एवं सामाजिक–आर्थिक लक्ष्यों के अनुसरण में सार्वजनिक सत्ता की प्राप्ति की। यह एक सुस्पष्ट विकास के लिए नीतियों, योजनाओं एवं प्रगतियों की परिकल्पना करता है साथ ही साथ एक ऐसी नौकरशाही की ओर भी झुकाव रखता है जो निरन्तर रूप से नियोजित परिवर्तन की माँगों को पूरा करने के लिए स्वयं को आधुनिकीकृत करना चाहती हो। "

एफ.डब्ल्यू. रिग्स ने विकास प्रशासन को विकासात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु निर्धारित कार्यक्रमों या परिकल्पनाओं को सम्पन्न कराने के संगठित प्रयासों के रूप में परिभाषित किया है। रिग्स का मानना है कि – 'विकास प्रशासन न केवल भौतिक, मानवीय एवं सांस्कृतिक वातावरण को नया रूप देने वाले कार्यक्रमों के निर्माण के सरकारी प्रयासों की ओर ही संकेत करता है बल्कि ऐसे कार्यक्रमों में संलग्न सरकारी क्षमताओं को बढ़ाने की ओर भी संकेत करता है।"

शॉफर (Schaffer) ने इस विचार को आगे बढ़ाते हुए निष्कर्ष निकाला कि विकास प्रशासन उन दशाओं में विकास कार्यक्रमों, नीतियों एवं परियोजनाओं सम्बन्धी है जहाँ पर सामान्यत: विस्तृत एवं नई मांगे हैं तथा उनको पूरा करने में विशेष रूप से कई बाधाएँ व न्यूनतम क्षमताएँ होती हैं। '

इन विभिन्न परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात् पाया कि विकास प्रशासन का प्राथमिक उद्देश्य प्रशासनिक तन्त्र को सुदृढ़ करना है जो कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विकास को सम्पादित करेगा। संक्षेप में विकास प्रशासन सार्वजनिक संगठन द्वारा सामाजिक–आर्थिक प्रगति एवं राष्ट्र निर्माण की दिशा में विकास कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं को पूरा करने की प्रक्रिया है। यह सार्वजनिक संगठनों की सहायता एवं उनके सही प्रबन्धन द्वारा विकासशील देश राष्ट्रीय लक्ष्यों के मूर्तिकरण के लिए विकास–नीति मापदण्डों को सम्पन्न कर सकता है।

'विकास प्रशासन' के दो पहलु है । इसका एक पहलु तो 'प्रशासन का विकास' (Development of Administration) को दिखाता है। जिसका अर्थ है – प्रशासकों का विकास करना । इसका दूसरा पहलू है 'विकास का प्रशासन' (Administration of Development), जिसका अर्थ है – विकास कार्यक्रमों, परियोजनाओं एवं नीतियों को लागू करना। प्रशासन का विकास और विकास का प्रशासन

एक ही सिक्के के दो पहलु है क्योंकि जब तक सरकार की प्रशासनिक प्रभावित को नहीं बढ़ाया जाता है तब तक विकासात्मक लक्ष्यों, जो कि एक विकासशील देश की इच्छाओं को पूरा करता है, को मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता है।

एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के विकासशील देशों में विकास–प्रशासन की आवश्यकता को राष्ट्र निर्माण तथा सामाजिक–आर्थिक प्रगति की ओर निर्देशित नीतियों एवं योजनाओं की क्रियान्वित का साधन के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। 'विकास प्रशासन' की ओर मूल मान्यता – राष्ट्रीय विकास के सम्पूर्ण प्रयासों के भाग के रूप में एक लोक प्रशासन तन्त्र का उत्थान एवं निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करना है।

1.4 विकास प्रशासन की प्रकृति

मूलत: विकास प्रशासन लोक–प्रशासन का एकीकृत भाग है जिसका मुख्य ध्यान राष्ट्रीय विकास के सम्पूर्ण प्रयास के नाम के रूप में लोक प्रशासन तन्त्र का उत्थान एवं निर्माण करने पर केन्द्रित रहता है। भारत में लोक प्रशासन के बड़े अध्येता, मोहित भट्टाचार्य ने इस विचार को आगे बढ़ाते हुए लिखा है कि "विकास प्रशासन विभेद (Difference) के साथ लोक प्रशासन है। इसका ध्यान सरकार से प्रभावित बदलावों की ओर जैसे – सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति करने की ओर रहता है।"

विकास प्रशासन एक देश विशेष में उसकी दी गई आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक वातावरण के तहत संचालित होता है। दूसरे शब्दों में विकास प्रशासन स्वतन्त्र परिवर्त्य नहीं है क्योंकि यह विद्यमान वातावरण को प्रभावित करता है और विद्यमान वातावरण से प्रभावित भी होता है। यहाँ तन्त्र और वातावरण के बीच में निरन्तर अन्तःक्रिया होती है और सम्बन्धों की पारस्परिकता विकास प्रशासन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

विकास प्रशासन सरकारी मशीनरी की प्रकृति से निपटता है जो कि विकास नीतियों के निर्माण में सहायता तथा विकास नीतियों, योजनाओं व कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु जरूरी है। निश्चित: राजनीति, आर्थिक एवं सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरणों के प्रभाव विकास प्रशासन के कार्यों की प्रकृति को प्रभावित करते हैं। राजनीति वातावरण बदलाव हेतु मांग करता है और शासन के लिए निर्देश देता है, आर्थिक वातावरण प्रशासन की कार्यवाही हेतु कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाता है और संसाधनों पर लगाम लगाता है। सामाजिक–आर्थिक वातावरण एक ऐसा परिवेश उत्पन्न करता है जिसमें विकास के लिए सरकारी तन्त्र को कार्य करना होता है। यह निम्नलिखित उप–शीर्षकों के तहत व्याख्यायित है –

1.4.1 राजनीतिक सन्दर्भ

राजनीतिक सन्दर्भ में प्रशासनिक विकास की ज्यादातर बहस कार्यक्रम क्रियान्वयन हेतु मुख्य साधनों के रूप में नौकरशाही संगठनों का प्रसार एवं फैलाव की ओर इंगित करती है। हालांकि कोई भी राजनीतिक दलों, हित समूहों, विधायिका, न्यायालयों एवं निर्वाचकों द्वारा राजनीतिक विकास में निभायी जाने वाली भूमिका से नकार नहीं सकता है। रिग्स का कहना है यह नवोदित राष्ट्रों के लोगों के लिए एवं दुनिया के लिए अच्छे जीवन हेतु अपने आप में एक मौलिक पूर्व शर्त है तथा लोक प्रशासन में प्रगति एवं आर्थिक प्रगति स्वत: राजनीतिक विकास को बढ़ावा नहीं देगी। हालांकि यह कहा जा सकता

है, जैसा फैनसोड ने निश्चयपूर्व कहा कि 'विकास प्रशासन की प्रभावशीलता में सुधार तात्विक रूप से लोक सेवकों, जो कि उसके आदमी है, के प्रशिक्षण एवं गुणवत्ता पर तथा सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण पर, जो कि उनकी ऊर्जाओं को बंधन मुक्त करता है, निर्भर करती है। ' इस पर जोर देना अनावश्यक है कि नौकरशाही पर ही सरकारी योजनाओं की सफलता या असफलता बहु त हद तक निर्भर करती है। अब नौकरशाही को मुख्यत: "प्रशासनिक अधिकारियों का शासन" के रूप निर्दिष्टित किया जाता है। रिग्स के लिए यह एक पदसोपानीय भूमिकाओं का व्यवस्थित मूर्त संगठन है, औपचारिक रूप से यह एक एजेन्ट के रूप में बड़े समाज हस्ती या व्यवस्था की सेवा करता है। " जो लोग ऐसी भूमिकाओं को निभाते हैं वे उन कार्यों में संलग्न हो जाते हैं जो मुख्यत: कार्य की दृष्टि से प्रशासनिक है और जैसा कि पूर्व में कहा गया कि, बहु त हद तक सरकार की प्रभावशीलता उसके लोक सेवकों के कार्य निष्पादन पर निर्भर करती है। ये लोक सेवक नये राज्यों में प्राय: राजनीतिक कार्य करते हैं और ऐसा करते हु ए वे शक्ति का दुरूपयोग करते हैं। हालांकि कई नये राज्यों में नौकरशाही शक्ति का अभ्यास, नौकरशाहीकेत्तर संस्थाओं की स्थापना की प्रति – सन्तुलनकारी शक्ति द्वारा, निर्वाचित विधानसभा के तात्विक गठन द्वारा, निर्वाचक तन्त्र द्वारा तथा एक दल प्रणाली द्वारा संतुलित हो सकती है। रिग्स स्वीकारते हैं कि "किसी भी आधुनिक सरकार का प्रभावी संचालन हेतु सरकारी संस्थाओं के इन दो मुख्य समूहों के बीच पर्याप्त शक्ति सन्तुलन होना जरूरी है। रिग्स का सुझाव है कि इन दो संस्थाओं के बीच शक्ति सन्तुलन को बनाए रखने के लिए एक मजबूत विधायक तन्त्र हो जो पर्याप्त शक्ति का अभ्यास करें और नौकरशाही के ऊपर प्रभावी नियंत्रण को सुधारे।" उन्होंने कहा कि सार्वजनिक नीति का मूल प्रणोदक 'विधायक व्यवस्था' एवं उसकी (विधायक व्यवस्था) 'सापेक्ष शक्ति' द्वारा निर्मित होना चाहिए। इस तरह से राजनीति और प्रशासन में शक्ति सन्तुलन बनाया जा सकता है। संयुक्ता राज्य और पश्चिमी राजनीति में यह संतुलन पहले से ही विद्यमान है लेकिन विकासशील देश विधायक तन्त्र की शक्ति और नौकरशाही की शक्ति के बीच सन्तुलन बनाने में असफल रहे हैं। रिग्स सुझाव देते हैं– इन व्यवस्थाओं में (विकासशील देशों में) संतुलन प्राप्ति के प्रयासों के लिए प्राथमिक आवश्यकताओं पर जोर दे, चाहे विधायक तन्त्र (विधायिका. दलों एवं निर्वाचित राजनीतिज्ञों) को मजबूत करके या नौकरशाही को, जोकि इन मुख्य संस्थाओं के ऊपर निर्भर सापेक्षत: कम शक्तिशाली है।

निष्कर्षत: हम कहेंगे कि प्रशासन के राजनीतिक सन्दर्भ में यहाँ राजनीति के साथ–साथ नौकरशाही संस्थाओं दोनों को मजबूत करने व सुधारने की आवश्यकता है ताकि उन विकासात्मक लक्ष्यों को पूरा किया जा सके। प्रशासनिक व्यवहारों एवं लोकतान्त्रिक मूल्यों को बड़े स्तर पर सुधारना विकासशील लोकतन्त्रों में विकास प्रशासन की सफलता की दशा है और इसलिए साथ–साथ चलना चाहिए।

1.4.2 आर्थिक सन्दर्भ

विकास कार्यों को अन्जाम देने के लिए पर्याप्त आर्थिक आधार का विद्यमान होना अति आवश्यक है। रिग्स ने कहा कि "आर्थिक उत्पादन का स्तर अवश्य पर्याप्त ऊँचा होना चाहिए जो न केवल प्राथमिक उत्पादकों की उपभोग आवश्यकताओं को ही पूरा करता है बल्कि सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में संलग्न कर्मचारियों (जो प्राथमिक और क्षेत्र के व्यवसायों में संलग्न है) की बड़ी सेना की

सहायता भी करता है। " एक देश के विकास का मुख्य लक्ष्य प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद को बढ़ाना है। अब यह ज्यादातर आर्थिक विकास पर निर्भर करता है जो कि बारी–बारी से औद्योगिक उत्पादन के साधनों द्वारा, कृषि और गैर–कृषि द्वारा, मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों द्वारा, पूँजी आदि द्वारा निर्धारित होता है। दूसरी ओर एक देश में आर्थिक प्रगति और विकास का स्तर एक हद तक नौकरशाही संगठनों का आकार और विशेषीकृत सरकारी एजेन्सियों के प्रसार को निर्धारित करती है। इसलिए इस प्रकार से अर्थव्यवस्था नौकरशाही के विस्तार और प्रकार के सृजन या निर्माण को अवश्य प्रभावित करती है।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि एक देश जो आर्थिक उत्पादन का उच्च स्तर रखता है, एक मजबूत नौकरशाही का गठन कर सकता है जो उन कार्यक्रमों को अन्जाम देने में सक्षम होगी जिनसे आर्थिक उत्पादकता को बढ़ायेंगे तथा विकासात्मक लक्ष्यों – राष्ट्र निर्माण और सामाजिक– आर्थिक प्रगति को हासिल करने में व्यापक योगदान देगी। रिग्स कहते हैं कि जहाँ अर्थव्यवस्था एक अनुकूलतम उच्च स्तर को हासिल नहीं कर पाती है। एक संगठित नौकरशाही का वेतन–कल्प तरीका संसाधनों के हनन का एवं दायित्वहीनों का परजीवी वर्ग के फैलाव का सम्पादन करती है जो उत्पादकता को कम करते और इसलिए उनके समाज की स्वतन्त्र चुनाव की सीमा को समाप्त करते हैं। उसके द्वारा राजनीतिक ठहराव एवं आर्थिक मन्दी या अद्यपतन को बढ़ावा मिलता है।

इस प्रकार विकास प्रशासन का आर्थिक सन्दर्भ – नौकरशाही एवं अर्थव्यवस्था के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि समाज को उसकी प्रशासनिक क्षमताओं को बढ़ाने योग्य बनाता है और इसके द्वारा ही आगे राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा मिलता है।

1.4.3 सामाजिक सन्दर्भ

विकास प्रशासन सामाजिक कल्याण में संपोशित सुधारों के कार्य को तीव्र करता है। स्वास्थ्य सेवाओं, आवास, सांस्कृतिक सुविधाओं, शिक्षा की व्यवस्था एवं महिलाओं की हैसियत में सुधार, बच्चों का संरक्षण, श्रम का विनियमन, श्रमिकों के लिए सुधरी हुई स्थिति, मानवाधिकारों का संरक्षण आदि सामाजिक क्षेत्र के दायरे में ही आते हैं। इन लक्ष्यों को ध्यान में रखा जाता है क्योंकि औपचारिक संगठनों द्वारा दबाव बना रहता है, जो संगठन की नये राज्यों में बढ़ी संख्या में वृद्धि हुई है। ये औपचारिक संगठन ऐसे लगते हैं कि इनकी आकृति 'पश्चिमी प्रतिमान जैसे – राजनीतिक दलों, निजी एवं सार्वजनिक निगमों, विधायिकाओं, व्यापार संघों, संगठनों आदि जैसी है।

विकासशील देशों के इन संगठनों में प्राय: व्यक्तियों का प्रभुत्व होता है जो या तो राजनीतिक दलों के होते हैं या नौकरशाही के। ये संगठन उनके नेताओं के हितों की सेवा करते प्रतीत होते हैं न कि उनकी जो उसके सदस्य हैं। विकसित व्यवस्था में यह तर्क पूर्णतया विपरीत होता है। वहाँ के संगठन उनके अपने सदस्यों के हितों का संवर्द्धन करते हैं और सदस्यों कीं ऊर्जा और कौशल को संगठित करके परिवेश वातावरण के नियंत्रण हेतु समन्वित कार्यवाही करते हैं। वे विकास को आगे बढ़ाने में अधिक योगदान देते हैं। हालांकि उन देशों में जहाँ प्रभावी संगठनों व विकास का अभाव होता है उनके नियोजित कार्यवाही में यह बाधक प्रतीत होता है। विकासशील समाजों को ऐसे संगठनों को अवश्य विकसित करना चाहिए जो उनकी संगठनात्मक गतिविधियों में संपोशित सुधारों में सक्षम हो।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि विकास के तीन आयाम – राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक, विकास प्रशासन के सन्दर्भ में आपस में अन्तर्सम्बन्धित है। विकास प्रशासन का राजनीतिक सन्दर्भ राजनीति और प्रशासन के बीच सन्तुलन की आवश्यकता, आर्थिक सन्दर्भ – प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने पर तथा सामाजिक सन्दर्भ लोगों के कल्याण को बढ़ाने की मांग पर जोर देता है जो कि विकास का तात्विक लक्ष्य है। रिग्स का निष्कर्ष है कि – यह कहना पर्याप्त है कि यह एक समाज या सामाजिक व्यवस्था के विकास के स्तर को परखने का एक तरीका है जो सन्तुलित राजव्यवस्था, संगठनात्मक परिपक्वता तथा उसके नौकरशाहीयों में प्रचलित वेतन तन्त्र की विशेषताओं को प्रदर्शित करता है।

1.5 विकास प्रशासन की विशेषताऐं

एक बड़ी संख्या में अध्येताओं ने विकास प्रशासन के पद को परिभाषित एवं पुनर्परिभाषित किया है। वर्षों से इसका अर्थ विकासशील देशों के नये बदलावों एवं अनुभवों के साथ परिवर्तन से गुजरता जा रहा है। परिणामत: इस पद की एक सहमतिमूलक परिभाषा खोजना कठिन है। अधिक से अधिक कोई भी इस पद के संघटक तत्वों की पहचान का प्रयास कर सकता है। विकास प्रशासन के सबसे महत्वपूर्ण तत्व एवं विशेषताएँ नीचे दी गई हैं।

1.5.1 नियोजित परिवर्तनोन्मुखी प्रशासन

विकास प्रशासन मूलत: परिवर्तनोन्मुखी है। यह दफ्तरशाही नीतियों, कार्यक्रमों, प्रक्रियाओं एवं कार्य की पद्धति, संगठनात्मक संरचनाओं व स्टॉफिंग प्रतिमानों, विभिन्न प्रकार के विकास कार्मिकों की संख्या व गुणवत्ता तथा प्रशासन का मुवक्किलों के साथ सम्बन्धों के तरीकों में संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों तरह के बदलावों पर जोर देता है।

एक नियोजित बदलाव संगठित प्रयासों में महत्वपूर्ण बन गया है। विकासशील देशों में जहाँ मानवीय तथा भौतिक संसाधनों की कमी है। सरकार को चाहिए कि वह विकास को नियोजन तकनीकों के अनुसार बदले व अपनाऐं। सामाजिक–आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण सहायता के रूप में। मुख्य कार्यों की पहचान सम्पन्न हो और उनका जुड़ाव विकास प्रशासन का मूलभूत अवयव है। एक विकसित प्रशासनिक तन्त्र का निर्णय समन्वय की उपयुक्त पद्धति और विभिन्न स्तरों पर विभिन्न कार्यों के नियंत्रण से होता है।

1.5.2 लक्ष्योन्मुखी प्रशासन

विकास प्रशासन गतिविधियों को सम्पन्न करने के अर्थ में लोक प्रशासन मात्र नहीं है, यह सामाजिक–आर्थिक लक्ष्यों की उपलब्धि पर जोर देने के साथ लक्ष्योन्मुखी प्रशासन है। दफ्तरशाही प्रशासन को कानूनबद्ध एवं प्रक्रियोन्मुखी प्रशासन का पर्याय के रूप में माना जाता है। यह बदलाव का प्रतिरोध करता है। दूसरी ओर विकास प्रशासन की प्रगति / वृद्धि व्यापकत: जटिल प्रकृति की विकासात्मक गतिविधियों को सम्भालने की इसकी क्षमता के साथ सम्बन्ध है। विकास प्रशासन सम्भवत: वांछित बदलाव लाने के लिए पर्याप्त भूमिका निभाता है जिससे आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। यह अपने संचालन में लचीला होता है।

नवोदित स्वतंत्र देशों की प्रशासनिक संरचनाओं को अपने आप में विकास प्रक्रिया के साधनों के रूप में संचालित करने की सम्भावना है। बड़ी मात्रा में उपयुक्त ज्ञान और अनुभव विकास लक्ष्यों के नियोजन तथा उपलब्धि हेतु प्रभावी संगठन के विकास के बारे में उपलब्ध है। विकासोन्मुखी प्रशासन संचालन का अनुकूलतम लचीलापन रखता है जो कि एक प्रशासक को कुछ निश्चित प्रशासनिक परिस्थितियों में विवेक के साथ कानून को लागू करने से मांगी गई स्वायत्तता के लिए अनुमति प्रदान करता है।

1.5.3 क्षमता–निर्माणोन्मुखी प्रशासन

विकास प्रशासन विकास लक्ष्यों को हासिल करने के साधनों के रूप में प्रबन्ध क्षमताओं का सृजन करने एवं उनमें वृद्धि करने में संलग्न रहता है। कई विकासशील देशों की सामाजिक संरचनाओं पर विउपनिवेशीकरण के प्रभाव राजनीतिक एवं दफ्तरशाही अभिजन, जो कि लोकप्रिय दबावों के प्रति अनुक्रियान्मुखी नहीं थे, के चढ़ाव की ओर थे। लुके (Luke) ने टिप्पणी की कि "उत्तर उपनिवेशी शासन प्रणालियाँ उनके उपनिवेशी पूर्वजों से भिन्न नहीं है, परिणामत: वे वैद्‌यता के अपेक्षाकृत संदेहास्पद आधारों पर खड़ी हुई है।"

पिछली टिप्पणियों से यह निश्चित हो जाता है कि प्रशासन के विरासती तन्त्र में परिवर्तन जरूरी हो गया है ताकि आर्थिक–सामाजिक बदलाव और राज्य–निर्माण की सम्मिलित चुनौतियों से निपटा जा सके।

मूलत: विकास प्रशासन का केन्द्र बिन्दु विकासोन्मुखी प्रशासकों के ज्ञान व कौशल को बढ़ाया जाए ताकि वे लोगों की बढ़ती मांगों से निपटने में सक्षम हो जाए। विकास प्रशासन का एक अनोखा एवं विशेष कार्य सूक्ष्म प्रबन्धन करना है। इसलिए उन्हें इसके पर्याप्त विकास और प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

1.5.4 अनुक्रियाशीलोन्मुखी प्रशासन

परम्परागत लोक प्रशासन व्यवस्था में लोक प्रशासक नियमित कार्य करने व स्थिर कार्य करने की मनोवृत्ति वाले थे और सामान्यत: उनमें नवाचार के लिए उत्साह व योग्यता का अभाव था। दूसरी ओर विकास प्रशासन को विकास के लिए एक प्रशासक का प्रावैगिक, नवाचारी व विकास संवेदी होना जरूरी है उसके विकास सम्बन्धी भूमिका को निभाने के लिए। यह मूलत: विकास प्रशासन का सबसे निर्णायक क्षेत्र है।

विकास प्रशासन का अनुक्रियाशील व उत्तरदायी होना जरूरी है। नीचे से ऊपर की ओर संचारों तथा कार्यों के प्रवाह को उत्तरदायी प्रशासनिक क्षमता के मुख्य तत्व के रूप में पहचान की गई। प्रशासनिक संरचनाओं में नीति–निर्माण की केन्द्रीयकृत प्रवृत्ति को अनुक्रियाशील एवं उत्तरदायी प्रशासनिक क्षमता के पोषण के प्रयासों में सबसे बड़ी बाधा के रूप में माना गया है। सामान्यत: नवोदित राज्यों की प्रशासनिक संरचनाऐं अपने उद्भवों को उपनिवेशी प्रशासन की विरासत में रखती है। नवाचार, सृजनात्मकता, अनुकूलनता एवं लचीलापन विकास गतिविधियों के नियोजन व प्रशासन में बड़े ही महत्त्वपूर्ण है। विकास प्रशासन तन्त्र को सभी स्तरों पर उच्च स्तरीय उत्प्रेरित कार्मिकों की जरूरत होती है। ऐसे कार्मिक विकास लक्ष्यों के प्रति प्रतिबद्ध होने चाहिए और उन्हें पूरा करने का उच्च स्तरीय

उत्साह रखना चाहिए। उन्हें स्वामित्व की और उनकी इच्छा, समर्पण और संरक्षण के प्रदर्शन की भी विकास के विकासात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु आवश्यकता है।

गैन्ट के अनुसार विकास प्रशासन इसके उद्देश्यों, प्रवृत्तियों व वफादारियों से जाना जाता है। विकास प्रशासन के उद्देश्य – निर्धारित सामाजिक–आर्थिक प्रगति के कार्यक्रमों को बढ़ाना और आसान बनाना है। वफादारियों के सन्दर्भ में नौकरशाही को चाहिए कि वह लोगों के प्रति उत्तरदायी रहे, न तो अपने ओर न ही किसी राजा या सम्राट के निहित स्वार्थों के प्रति उत्तरदायी रहे। दृष्टिकोणों के अर्थों में विकास प्रशासन नौकरशाही के लिए सकारात्मक, सुझ–बूझ एवं नवाचारी कदमों की मांग करता है।

1.5.5 सृजनात्मक एवं नवाचारोन्मुखी प्रशासन

सृजनात्मकता विकास प्रशासन का एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। 'सृजनात्मकता' (creativity) के पद को प्राय: नये विचारों को विकसित करने की क्षमता व ताकत के रूप में समझा जाता है। दूसरी ओर 'नवाचार (Innovation) का सामान्य अर्थ – सृजित विचारों के अनुप्रयोग के रूप में लिया जाता है। अर्थात् यह कार्य करने का नया तरीका है।

लक्ष्यों पर सहमति बनने एवं प्राथमिकताओं के निर्धारण के बाद यदि विकास चाहिए तो बड़े नवाचार जरूरी होते हैं। इस प्रकार नवाचार को प्रोत्साहन व खोजबीन करना सरकार का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। विकास प्रशासन सरकार के साधन के रूप में नई संरचनाओं, प्रक्रियाओं, नीतियों, नियोजनों एवं कार्यक्रमों की स्वीकारोक्ति है जो विकासात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करेंगे जहाँ तक यह करना आसान होगा। भारत में, उदाहरणार्थ – गरीबी निवारण कार्यक्रमों जैसे – राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी स्कीम (नरेगा), मानव विकास योजनाऐं जैसे – अपराह्न भोजन योजना, आई.सी.डी.एस., एस.एस.ए., सामाजिक सहायता योजनाऐं जैसे – राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना (अब नाम परिवर्तित करके – इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना), क्षेत्र विकार: कार्यक्रमों जैसे – राष्ट्रीय जल संभरण विकास कार्यक्रम तथा कृषि, बागवानी व पशुपालन जैसे उत्पादनकारी क्षेत्रों की योजनाओं में नवाचारों की जरूरत है।

आधुनिक संचार साधनों ने व्यक्ति – व्यक्ति के बीच सम्बन्धों को सशक्त किया और रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर, टेलीफोन्स आदि ने विचारों का प्रसरण को बहुत बढ़ावा मिला है। येसभी नवाचार के उदाहरण है जो कि विकास प्रक्रिया में सहायता करते हैं।

1.5.6 जनोन्मुखी प्रशासन

विकास प्रशासन मूलत: एक जनोन्मुखी प्रशासन है। इसका उद्देश्य लोगों की सेवा करना है। विकास कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं जो कि नियोजकों एवं प्रशासकों द्वारा तैयार की जाती है। उनका उद्देश्य लोगों को लाभ पहुँचाना होता है। सबसे गरीब लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के प्रशासन के लिए प्रेषण तन्त्र का संगठन उत्तर–औपनिवेशिक प्रशासनिक तन्त्र के लिए परीक्षण एक चुनौती है। समुदाय विकास के प्रशासन को लचीला एवं कार्योन्मुखी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता को व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है। विकास प्रशासन क्षेत्र में लोगों की ओर से आधारभूत मांगों के लिए माध्यम बनने एवं जवाब देने की क्षमता को पूर्व शर्त के रूप में रखने

की सम्भावना है। यह अपने वातावरण से उठने वाली माँगों और चुनौतियों के लिए जवाब देता है। 12वीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012) में कहा गया कि "सरकार को सामाजिक एवं आर्थिक जन सेवाओं के प्रेषण में अवश्य प्रभावी एवं सक्षम होना चाहिए।'

1.5.7 सहभागितान्मुखी

विकासशील अर्थव्यवस्था द्वारा विकास लक्ष्यों का विकासात्मक अहसास या मूर्तिकरण लोगों की व्यापक सहभागिता को बढ़ाता है। एक राजनीतिक लोकतन्त्र में सहभागिता–दबाव समूहों व राजनीतिक दलों को, राजनीतिक कार्यालयों में समान अवसर को एवं सरकारी मामलों में जनमत के लिए सम्मान को सशक्त बनायेगा। विकास प्रशासन तन्त्र से ऐसी आशा है ऐसी दशाऐं बनाये व बढ़ाये जो सामाजिक–आर्थिक बदलाव की प्रक्रिया में लोगों की व्यापक सहभागिता को आसान बनायेगा। लोगों द्वारा कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के निर्माण, क्रियान्वयन, निरीक्षण एवं मूल्यांकन में सहभागिता उनको लाभ पहुँचाती है, यह विकास प्रशासन की सुभेदक विशेषता है।

लोगों की अर्थपूर्ण एवं प्रभावी सहभागिता समस्या के समाधान में अवश्य अनुकूल होती है, उन्हें अवश्य अपनी इच्छा और योग्यता के प्रदर्शन में योग्य होना चाहिए और उन्हें स्थानीय संसाधनों के उपयोग तक आसान पहुँच के अवसर उपलब्ध होने चाहिए। विकासोन्मुखी प्रशासन प्रभावी रूप से विकेन्द्रीकरण, प्रतिनिधिक एवं सलाहकारी रणनीतियों का प्रभावी रूप से उपयोग करता है और इस तरह यह प्रशासन को आधारोन्मुखी (Grassroots oriented) बनाता है। इसका यह भी अर्थ है शक्ति वितरण के लिए संस्थागत अवसरों का सृजन करना। इस तरह विकासशील देशों के विकास की दीर्घकालिक चुनौती ने विकासोन्मुखी प्रशासन का निर्माण किया है जिसने 3.5 बिलियन लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया। विकास प्रशासन में पहचान योग्य प्रवृत्ति यह समझ है कि परिवर्तन की संपोशित प्रक्रिया के लिए गरीबी निवारण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में लक्षित जनसंख्या को शामिल करना आवश्यक है।

1.6 विकास प्रशासन का क्षेत्र

राज्य–नीति विकास के युग में सरकार के कार्यों में आकार, संख्या एवं फैलाव में वृद्धि हुई। सरकार के बढ़ते कार्यों को सम्पन्न करने के क्रम में प्रशासनिक–तन्त्र, जिसकी अभी तक सामान्य एवं नियामक प्रशासन द्वारा देखभाल की जाती रही थी, को विकसित करना, अनुकूलित बनाना या बढ़ाना जरूरी है। प्रत्यक्ष रूप से इसमें न केवल प्रशासन तन्त्र का विस्तार, उत्थान या मौलिक पुनर्गठन ही शामिल है बल्कि राष्ट्रीय विकास के कार्य की ओर उनको उन्मुख करने की प्रशासकों की क्षमताओं को बढ़ाना भी शामिल है। इस प्रकार को प्रशासनिक तन्त्र को वर्तमान में 'विकास प्रशासन' का नाम दिया गया है। यह विकासशील देशों की विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने का अन्त:अनुशासनात्मक विषय है।

1960 के दशक से पहले सरकारी संगठन मितव्ययता और क्षमता की प्राप्ति पर जोर देते थे लेकिन सरकार के कार्यों में वृद्धि के साथ–साथ जटिल समस्याओं और राष्ट्रीय विकास की तात्कालीन माँगों से निपटने के लिए कई प्रशासनिक सुधारों ने माना कि मितव्ययी और सक्षम प्रबन्ध ही पर्याप्त नहीं है। प्रशासनिक तन्त्र को नये विकासशील लक्ष्यों को पूरा करने की ओर अवश्य बढ़ना चाहिए। ब्रायंट

ने बहु त ही स्पष्ट रूप से टिप्पणी की कि मानवाधिकारों व मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं तथा बदलती अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के मामलों की जानकारी के साथ विकास प्रशासन समता एवं पुनर्वितरण मामलों का समाधान कर सकता है और अवश्य करना भी चाहिए, उन क्रियान्वयन समस्याओं पर ध्यान देते हु ए जो कि इन मामलों को उठाती है। "

लोक प्रशासन के अध्ययन का विस्तार 'विकास प्रशासन' की ओर उस विचार के प्रति अनुक्रिया है जो कि अधिक आवश्यक है। इसमें यह अर्थ निहित नहीं है कि 'विकास प्रशासन लोक प्रशासन की सहायक है क्योंकि जहाँ तक उत्तरवर्ती का सम्बन्ध है, वह विकासोन्मुखी लक्ष्यों को सम्पन्न कराने का प्रयास करता है तथा पूर्ववर्ती सरकार का सामान्य या नियामक प्रशासन है। शुशेंग शुहे (Shousheng Hsueh) ने उद्धृत किया है कि 'विकास प्रशासन मूलत: एक लोक प्रशासन है जारी सम्बन्ध के रूप में सरकार की सामान्य गतिविधि के रखरखाव के लिए। दूसरी ओर व्याख्या के अर्थ में विकास प्रशासन लोक प्रशासन की उस भूमिका पर जोर देता है जो कि सरकार की गतिविधि को विकसित करती है विशेषकर राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में।"

इस प्रकार शुहे प्रशासन की सामान्य गतिविधियों और विकासात्मक गतिविधियों में सुस्पष्ट विभाजन नहीं करता है। 1966 में गैंट ने विकास प्रशासन को इस रूप में देखा कि "यह लोक प्रशासन का एक पहलु है जिसमें ध्यान का केन्द्र सार्वजनिक एजेन्सियों का संगठन करना और प्रशासन करना है ऐसे रास्ते के रूप में करना है जो सामाजिक–आर्थिक प्रगति के परिभाषित कार्यक्रमों को उत्प्रेरित करता है और आसान बनाता है। सामान्यत: जनसंख्या के लिए यह बदलाव के आकर्षक और सम्भव लक्ष्य रखता है।"

परम्परागत लोक प्रशासन – कानून एवं व्यवस्था के रखरखाव, राजस्व के संग्रह और कानूनों व नीतियों के क्रियान्वयन आदि के साथ जुड़ा रहा है। फिर भी परम्परागत प्रशासन विकास प्रशासन से अपने उद्देश्यों एवं क्षेत्र की दृष्टि से भिन्न है। प्रथम, विकास प्रशासन लक्ष्योन्मुखी प्रशासन है जो कि राष्ट्र–निर्माण तथा सामाजिक–आर्थिक प्रगति के लक्ष्यों को आगे बढ़ाता है। दूसरा, यह प्रशासनिक क्षमता को बढ़ावा देने पर जोर देता है। इसमें जहाँ प्रथम 'विकास का प्रशासन' के रूप में संकेत करता है दूसरा 'प्रशासन का विकास' के रूप में संकेत करता है। इस तरह से विकास प्रशासन लोक प्रशासन की तुलना में गतिविधियों का अधिक व्यापक क्षेत्र रखता है। सोल एम. काट्ज मानते हैं कि 'कानून एवं व्यवस्था का रखरखाव, कुछ सीमित सार्वजनिक सेवाओं की व्यवस्था तथा करों का संग्रहण आदि प्रशासन का सीमित कार्य ही है व्यापक नहीं। अपेक्षाकृत संसाधनों के संचालन एवं उनके आवंटन व्यापक स्तर पर विकास गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए विशेष रूप से।"

काट्ज के विचारों के अनुसार विकास प्रशासन सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों में नियोजित परिवर्तन करने के बढ़ते उत्तरदायित्व का भार वहन करना है। हालांकि विकास प्रशासन और लोक प्रशासन में अन्तर करने के दौरान उनके सम्बन्धित महत्व की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। विकास प्रशासन और परम्परागत (लोक) प्रशासन के बीच अन्तर को बहु त ज्यादा नहीं खींचना चाहिए। नियमित भू–राजस्व या कानून–व्यवस्था प्रशासन विकास के लिए दशाओं को सृजित करता है। जब तक नित्य कार्यों को ठीक ढंग से अन्जाम नहीं दिया जाएगा तब तक विकास प्रशासन सम्भवत: दैनिक प्रशासन की चट्टान पर छटपटाता रहेगा। भारत में विकास प्रशासन के सन्दर्भ में त्रिलोक सिंह सहमत है कि–

"सामान्य प्रशासन विद्यमान संरचना का चरित्र या विशेषता विकास प्रशासन की कमजोरी एवं शक्ति पर निर्णायक प्रभाव छोड़ती है। यह उन जुड़ावों का कारण है जो कि सामान्य प्रशासन और विकास प्रशासन के बीच बने रहते हैं।"

विकास प्रशासन का उद्देश्य विकास लक्ष्यों की प्राप्ति है। 'विकास' शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि यह लोक प्रशासन और विकास प्रशासन के बीच विभाजन रेखा खींचता है। इसलिए यह प्रतीत होता है कि तृतीय विश्व में विकास के लिए संघर्ष के सन्दर्भ में उक्त विषय के साथ–साथ विकास शैली के अन्य उप–क्षेत्र, जो कि उनकी विशेष प्रास्थिति का परिणाम है, उपलब्ध कराता है। गैंट के अनुसार 'विकास प्रशासन लोक प्रशासन के अन्य पहलुओं तथा सम्बन्धों से सुभेदित है, हालांकि उससे स्वतन्त्र नहीं है।

विकास प्रशासन सरकार की प्रशासनिक क्षमता की प्रकृति सम्बन्धित है जो कि आवश्यक है–

(i) विकास नीतियों के निर्माण एवं विकास नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं को लागू करने में

(ii) ऐसी प्रशासनिक क्षमता को बढ़ाने व सुधारने के साधन एवं तरीके के साथ में, और

(iii) इस समस्या के साथ कि विकास के लिए प्रशासनिक तन्त्र को कैसे संगठित किया जाना चाहिए।

इस प्रकार विकास प्रशासन का क्षेत्र बहुत व्यापक है। विकास प्रशासन का उद्यम दो मुख्य आयाम रखता है

(iv) प्रशासन का विकास (Development of Administration)

(v) विकास का प्रशासन (Administration of Development)

1.6.1 प्रशासन का विकास

प्रशासन का विकास (प्रशासनिक विकास) का सम्बन्ध विकास के लिए प्रशासनिक क्षमता की प्रकृति तथा उसके संवर्द्धन की पद्धति से है। विकास प्रशासन की परिधि में निम्नलिखित क्षेत्र आते हैं–

(i) विकास के लिए प्रशासनिक क्षमता का सुधार एवं उत्थान करना;

(ii) विकास योजनाओं, कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन करना,

(iii) विकास योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन में सहायता करना।

(iv) मानवीय संसाधन विकास का प्रबन्धन (कार्मिक, प्रशिक्षण, उत्प्रेरण आदि) करना, तथा

(v) प्रशासनिक सुधारों (संगठन एवं प्रबन्ध पद्धति) के द्वारा लोक प्रशासनिक तन्त्र की क्षमता व प्रभावशीलता में वृद्धि करना।

1.6.2 विकास का प्रशासन

विकास का प्रशासन संबंध विविध विकासात्मक प्रयासों के संगठन एवं प्रबन्ध से है जिनमें लोक प्रशासन राष्ट्रीय विकास के उपकरण या साधन के रूप में कार्य करता है। यह शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि करने में, सामाजिक व्यवस्थाओं का रूपान्तरण करने में, जन स्वास्थ्य उत्थान में, राष्ट्रीय आय बढ़ाने में, राजनीतिक व्यवस्था को स्थिर करने में, राष्ट्रीय संसाधनों के संरक्षण में, संचार तन्त्र को सुधारने में, बाँधों, विद्युत प्लान्ट्स के निर्माण में और राष्ट्रीय महत्व के कई अन्य विकासात्मक कार्यों में संलिप्त रहता है।

विकास का प्रशासन के क्षेत्र में शामिल होंगे –

(1) सरकारी विभाग (विकास के साधन के रूप में)

(2) नियामकीय प्रशासन (विकास के साधन के रूप में)

(3) लोक उद्यम (विकास के साधन के रूप में)

उक्त तीन विकास प्रशासन के मुख्य साधनों के अतिरिक्त यहाँ अन्य महत्वपूर्ण साधन भी हैं। बढ़ते तदर्थ प्रकार की परियोजनाएं एवं संगठन विकास प्रशासन की संस्थाओं का सामान्य रूप बन गई है। वे प्राय: समिति, कार्यकारिणी समिति, सहयोगी समूह या अस्थायी संरचना के रूप में विद्यमान है। वे औपचारिक स्थायी संगठन के तहत या स्वायत्त अस्थायी इकाई के रूप में स्वतन्त्र रूप में संगठित हैं।

इस प्रकार विकास का प्रशासन और प्रशासन का विकास एक ही सिक्के के दो पहलु है। एफ.डब्ल्यू रिग्स स्पष्ट रूप से टिप्पणी की है कि – "इन दोनों पहलुओं के आपसी जुड़ाव में अण्डे और मुर्गे के बीच सम्बद्धता जैसा कारण–कार्य नियम सम्बन्ध है। प्रशासन को सामान्य रूप से बहुत ज्यादा सुधारा नहीं जा सकता, बिना पर्यावरणीय बाधकों (संरचना) में बदलाव लाए जो कि उनकी प्रभावशीलता को कम करता है और स्वयं पर्यावरण भी बदल नहीं सकता जब तक विकास कार्यक्रमों का प्रशासन मजबूत नहीं हो जाता है।"

जब तक सरकार की प्रशासनिक प्रभावशीलता नहीं बढ़ती है तब तक विकासशील देशों को प्रेरित करने वाले उत्थान के विकासात्मक उद्देश्यों को मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता है।

1.7 सारांश

विकासशील दुनिया में विकास को अच्छे जीवन स्तर के अर्थों में परिभाषित किया जाता है और राष्ट्र–राज्यों का सामाजिक–आर्थिक प्रगति मुख्य कार्य है। यह पहले से ही संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के एजेण्डे में शामिल है। स्थायी शान्ति भी असम्भव होगी जब तक कि अल्प विकास एवं कुविकास की समस्या का समाधान नहीं हो जाता है। मानवीय खुशी, भूख एवं भुखमरी, जनसंख्या विस्फोट, ऊर्जा संकट, मानवीय पर्यावरण का हास, सरहदों का विस्तार, अन्तरिक्ष एवं गहरे समुद्र में अनुसंधान आदि व्यापक अर्थ में आधुनिकीकरण या विकास की समस्याओं के ही भाग हैं। विकास प्रशासन के अध्ययन की, जिसे अब प्राय: 'विकास प्रबन्धन' का नाम दिया गया, पहचान विकासशील दुनिया की स्थायी समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करने पर केन्द्रित किया गया है। अभी भी यह इस चुनौती का पर्याप्त रूप से समाधान करता प्रतीत नहीं होता है।

1.8 अभ्यास प्रश्न

1. विकास प्रशासन को परिभाषित करें और इसके महत्व को इंगित करें।
2. विकास प्रशासन परम्परागत प्रशासन से कैसे भिन्न है?
3. विकास प्रशासन की विशेषताएं क्या–क्या हैं?
4. विकास प्रशासन के क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।

1.9 संदर्भ ग्रन्थ

- भट्टाचार्य, मोहित, सोशल थ्यॉरी एण्ड डवलपमेंट– एडमिनिस्ट्रेशन, जवाहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2002
- द्विवेदी, ओ.पी., (संपादित) डेवलपमेंट : फ्रॉम अण्डरडेवलेपमेंट टू सस्टेनेबल डेवलपमेंट, मेकमिलन प्रेस, लन्दन, 1994
- ला. पालोम्बरा, जोसेफ (सम्पादित), ब्यूरोकेसी एण्ड पॉलिटिकल डेवलपमेंट, प्रींसटन यनिवर्सिटी प्रेस प्रिंसटन, 1963
- रिग्स, एफ. डब्ल्यू, फ्रन्टियर्स ऑफ डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन, एनसी: ड्यूक युनिवर्सिटी प्रेस, दुर्हाम 1970
- गेट, जी. एफ., डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन कॉफ्रेन्स गोल्स एण्ड मेथड्स, युनिवर्सिटी और विस्कॉसिन प्रेस मेडिसन, 1979

इकाई - 2

विकास प्रशासन : उद्भव एवं विकासशील देशों में इसकी भूमिका

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विकास प्रशासन का अर्थ

2.3 विकास प्रशासन और सार्वजनिक प्रशासन

2.4 विकास प्रशासन का क्रमिक विकास

2.4.1 आधार अवधि

2.4.2 1970 के दशक तक विकास प्रशासन

2.4.2.1 तकनीकों पर बल

2.4.2.2 सी. ए. जी. एवं पश्चिमी व्यूरचना की आलोचना

2.4.3 1980 के दशक में विकास प्रशासन

2.4.4 1990 के दशक में विकास प्रशासन और विकास प्रशासन की प्रवृत्तियां एवं प्रोचेण

2.4.4.1 प्रशासन को योग्य बनाना

2.4.4.2 मेक्रो–मैनेजमेंट

2.4.4.3 प्रबंधन संस्कृति

2.4.4.4 विकेन्द्रित एवं प्रबंधकीय स्वायत्तता

2.5 विकासशील देशों में विकास प्रशासन की भूमिका

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 अभ्यास प्रश्न

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस प्रकार के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप

- विकास प्रशासन के क्रमिक विकास पर चर्चा कर सकेंगे।
- विकास प्रशासन को समझ सकेंगे और इसके महत्व एवं भूमिका का जान सकेंगे।
- सार्वजनिक प्रशासन में प्रयुक्त कार्यों किस प्रकार को प्रभावित कर रही है।

2.1 प्रस्तावना

विकास प्रशासन का प्रादुभार्व 1960 के दशक में लगभग उस समय हु आ जबकि सार्वजनिक प्रशासन अपने शिखर पर था। लेकिन 1960 के दशक के मध्य से 'लेखक' 'विकास प्रशासन' ने

विकासशील देशों में वषद्धिगत लोकप्रियता हासिल करती है, यद्यपि यह पूर्णत: स्पष्ट नहीं है कि उस समय 'लेब' का अर्थ क्या है? इस प्रवृति का एक एक स्रोत यह विचार है कि यह सार्वजनिक प्रशासन के विद्वानों का दिया हु आ नाम है, विशेषकर अमेरिकीयों द्वारा विकासशील देशों की सबसे अपने विकास कार्यक्रमों एवं योजनाओं का संचालन कर सकें।

जैसा कि एक आलेख यह संकेत देता है:

उभरती समस्या यह है कि इन (विकासशील) देशों में जो कुशलता उपलब्ध है उसे किस प्रकार जोड़ा जाये और उन्हें किस प्रकार और अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से कार्यशील कार्यक्रमों को गति देने में प्रयुक्त किया जाये जो कि आर्थिक वृद्धि को बढ़ायेगी, सामाजिक कामकाज को विस्तार देगी और सार्वजनिक सेवाओं में सुधार लायेगी यही विकास प्रशासन का सार है।

एशिया, अमेरिका एवं लेटिन अमेरिका के विकासशील देशों में विकास प्रशासन की आवश्यकता भलीभांति मान्यता पा चुके है, नीतियों और योजनाओं का क्रियान्वयन करने के माध्यम से निर्माण की तथा सामाजिक–आर्थिक प्रगति की दिशा में ' 'विकास प्रशासन की मूल अवधारणा यह है कि राष्ट्र के समाज निर्माण के सम्पूर्ण प्रयत्न के भाग के रूप में ध्यान को सार्वजनिक प्रशासन प्रणाली का निर्माण करने पर केन्द्रित किया जाये।"5

2.2 प्रशासन का अर्थ

विकास प्रशासन का अध्ययन करने के लिए, यह आवश्यक है कि इस विषय कोई कार्यशील परिभाषा की जाये। कई सार्वजनिक प्रशासन एवं संबंधित अनुशासनों के विद्वानों ने विकास प्रशासन की धारणा को परिभाषित करने के प्रयास किये है।

डब्ल्यू वैडनर के अनुसार विकास प्रशासन का तुलनात्मक विकास के लिए नवीनता का अधिकतम उपयोग करना है। वे विकास के लिए नवीनता को परिभाषित करते है – इस रूप में कि "एक सुविचारित या ध्येयनिष्ठ परिवर्तन प्रक्रिया जो आधुनिकता या राष्ट्र निर्माण एवं सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन की ओर उन्मुख हो।"

इसी ध्वनि के साथ, जोहन मोन्टग्रोमकी भी विकास प्रशासन को परिभाषित करते हु ए कहते है कि "अर्थव्यवस्था (कृषि एवं उद्योग में) सुनियोजित परिवर्तन लाने या पूंजीगत संरचना जो इसमें से किसी को समर्थन के और, कुछ अपेक्षाकृत कम सीमा तक, राज्य की सामाजिक सेवाओं में (विशेषकर शिक्षा एवं जन स्वास्थ्य) को बदले।"

इनायतुाम्लाह विकास प्रशासन को, 1. सामाजिक–आर्थिक लक्ष्यों तथा 2. राष्ट्र निर्माण की उपलब्धि हेतु अधिकरण के माध्यम से कार्यवाही के लिए विषय संगठनात्मक प्रबन्ध या व्यवस्था मानते है। ऐसा करने के लिए यह माना जाता है कि नीतियां, योजनाऐं और कार्यक्रम हो विशेष विकास युक्त और साथ ही ऐसी नयूरोकेसी या कारिन्दे हो जो सचेत रहते हु ए अपने को अनवर आधुनिक बनाने का प्रयास करती रहे ताकि सुनियोजित परिवर्तन लाने की मांग को पूरा किया जा सके।

फेड डब्ल्यू रिग्गस विकास प्रशासन की परिभाषा इस प्रकार करते है कि ' 'जो लोग विकास लक्ष्यों को पूरा करने में संलग्न है वे संगठित प्रयासों का कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के विचार का संचालन करे। " आगे प्रशासन के विकास पर बल देते हु ए रिग्गस ने पाया कि विकास प्रशासन केवल सरकार के द्वारा इसके भौतिक, मानवीय, और सांस्कृतिक पर्यावरण को फिर से एक बदली हुई शक्ल

देने के लिए बनाये गये कार्यक्रमों का संचालन करने मात्र की ओर इशारा नहीं है बल्कि यह सरकार को इन कार्यक्रमों में संलग्न करने के लिए जारी संघर्ष में सरकार की क्षमता को विस्तार देना भी है।

इन विभिन्न परिभाषाओं पर दृष्टि डालने पर, पाया गया है कि विकास प्रशासन का प्रारम्भिक लक्ष्य प्रशासनिक बनाया या मशीनरी को सुदृढ़ करना है, जो सामाजिक–राजनीतिक–आर्थिक विकास का सपना पूरा करेगी। संक्षेप में, विकास प्रशासन सार्वजनिक संगठन के माध्यम से राष्ट्र–निर्माण तथा सामाजिक आर्थिक प्रगति के विकास कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के संचालन की एक प्रक्रिया है। यह केवल सार्वजनिक एवं असार्वजनिक संगठनों और प्रचलित प्रबंधक के माध्यम से ही संभव है कि एक विकासशील देश अपनी विकास नीति के उपायों का राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में संचालन करने में सफल हो।

विकास प्रशासन की धारणा के दो प्रमुख पहलू है। एक पहलू का संकेत प्रशासन का विकास करना है। इससे तात्पर्य है कि प्रशासकों को विकसित करें। इसमें विकास लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए प्रशासनिक क्षमताओं को सुधार कर सुदृढ़ करें, विकास लक्ष्यों को पाने के एक माध्यम के रूप में। दूसरा पहलू है 'विकास का प्रशासन'। इस स्पष्टीकरण के अनुसार हमारी अपेक्षा है कि विकास प्रशासन (प्रशासनिक संगठन) विकास कार्यक्रमों, परियोजनाओं और नीतियों के क्रियान्वयन में एक उपकरण था। इन्स्ट्रूमेन्ट की तरह कार्य करें। इसमें, शिक्षा का स्तर ऊंचा करना सामाजिक प्रजातियों को पूर्णत: बदलना, सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार लाना, राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना, राजनीतिक प्रणाली को स्थापित्व देना, राष्ट्रीय स्त्रोत संरक्षित करना, संचार प्रणाली को सुधारना, बांधें का निर्माण करना, ऊर्जा संयंत्र बनाना, और राष्ट्रीय महत्व कई अन्य विकासात्मक कार्यो को हाथ में लेना शामिल है।

प्रशासन का विकास और विकास का प्रशासन इस प्रकार ही सिक्के के दो पहलू है । इस संदर्भ में फेड डब्ल्यू रिग्गस कासटीक कथन है:

इन दोनों पहलूओं के बीच पारस्परिक संबंध है जो मुर्गी के बीच और अंडे के प्रकार के कारण उत्पन्न करता है। प्रशासन को साधारणत: तब तक सुधारा नहीं जा सकता बिना पर्यावरणीय बाधाओं (संरचनात्मक) जो कि इस प्रभावशाली बनाने के मार्ग में रोडा अटकती है, और पर्यावरण भी अपने आप नहीं बदल सकता, जब तक कि विकास कार्यक्रमों के प्रशासन को सुदृढ़ नहीं किया सके।

जब तक सरकार को प्रभावोत्पादकात में इजाफा नहीं हो, तब तक वे विकास लक्ष्य हासिल नहीं किये जा सकते जिनकी विकासशील देश पूरे होने की आशा लगाये हुए है।

2.3 विकास प्रशासन और सार्वजनिक प्रशासन

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से, सरकार के कार्यों में साइज एवं संख्या दोनों स्तरों पर इजाफा हुआ है। लेकिन इसके साथ ही एक गंभीर असंतुलितउभरकर सामने आया है – लोगों की उम्मीदों और यथार्थ के बीच और विकास की जरूरत है और उन्हें पूरा करने के बीच। इसके परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय विकास को धक्का लगा है। सरकार के बढ़ते कार्यों का संचालन करने के लिए अब तक केवल साधारण एवं नियामक प्रशासन की देखभाल कर रही थी,उसका अब विकसित करने की जरूरत है, उसे स्थितियों के अनुरूप बनाने एवं विस्तार देने की जरूरत है। यों देखे तो, इसमें केवल विस्तार सुधार या प्रशासनिक प्रणाली का मौलिक पुनर्गठन ही शामिल नहीं है। इस प्रकार के विकास प्रणाली को सम सामाजिक रूप

से विकास प्रशासन कहा जाता है। यह एक 'इन्टर डिसिप्लनरी विषय है जिस पर विकासशील देशों की विकास जरूरतों के बाद में प्रतिक्रिया व्यक्त की जाये।

1960 के दशक से पूर्व सरकारी संगठनों में मितव्ययिता एवं कुशलता प्राप्त करने पर बल दिया जाता था। लेकिन जटिल समस्याओं एवं राष्ट्रीय विकास की त्वरित मांगों के साथ तालमेल बैठाने एवं सरकार के कार्यों का विस्तार होने के कारण कई प्रशासनिक सुधार अब यह पहचान करने लगे है कि मितव्ययी एवं कुशल प्रबंधन ही काफी नहीं है। विकास के नये लक्ष्यों को पाने के प्रयासों में प्रशासनिक तब में आमूलचूल परिवर्तन होना चाहिये। ब्रायन्ट का यह सही संकेत है कि –

माननीय अधिकारों के प्रति उभरते मुद्दों के साथ और मनुष्य की मूलभूत जरूरतों और बदलते अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश विकास प्रशासन को अपना ध्यान समानता एवं पुन: वितरण संबंधी मुद्दों को संबोधित करना चाहिए तथा क्रियान्वयन की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये, जो कि इन मुद्दों से उभरकर आते है।

"विकास प्रशासन' की ओर सार्वजनिक प्रशासन के अध्ययन का विस्तार, इस विचार की प्रतिक्रिया है कि कुछ और करने के आवश्यकता है। इसका अर्थ नहीं है कि विकास प्रशासन, सार्वजनिक प्रशासन के अधीन है। पहले का संदर्भ विकास–आधारित लक्ष्यों के संचालन के लिए संगठित प्रयासों से है जबकि दूसरा सरकार के आम एवं नियामक प्रशासन से संबंध करवाता है। शाऊ–शेंग हमूच को उद्दत करें तो –

विकास प्रशासन वास्तव में सार्वजनिक प्रशासन सरकार के चालू आम कार्यों की देखभाल से संबंधित है जबकि दूसरी तरफ, विकास प्रशासन, जैसे की इस अभिव्यक्ति से प्रगट होता है, सार्वजनिक विकास इस भूमिका पर बल देता है, विशेषकर आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में।

इस प्रकार हरूच विकास और प्रशासन की आम गतिविधियों के बीच कोई स्पष्ट रेखा खींचते।

परम्परागत सार्वजनिक प्रशासन का तुलनात्मक कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने ये रहा है,? साथ ही राजस्व एकत्रित करना और नियमों एवं नीतियों आदि को लागू करने, से रहा है। लेकिन यह अपने लक्ष्य एवं क्षेत्र में विकास प्रशासन से भिन्न है। प्रथम, विकास प्रशासन लक्ष्य आधारित प्रशासन है जो कि राष्ट्र निर्माण एवं सामाजिक–आर्थिक लक्ष्यों को लेकर संचालित किया जाता है। दूसरा, यह विकास के लिए प्रशासनिक क्षमता में वृद्धि पर बल देता है। पहले को 'विकास के प्रशासन' की संज्ञा दे सकते है और दूसरे का प्रशासन के विकास' की इस प्रकार सार्वजनिक प्रशासन की अपेक्षा विकास प्रशासन का गतिविधियों पूर्ण व्यापक क्षेत्र है। सौल एमा कार्टज का मानना है।

अब यह कानून एवं व्यवस्था को बनाये रखने तक सीमित नहीं है, कुछ सार्वजनिक सेवाओं के प्रावधानों और करों का संग्रह तक बल्कि यह विशेषकर स्त्रोतों के एकत्रित करने एवं विभिन्न, प्रकार की विकास गतिविधियों के लिए आवंटित करने, बड़े पैमाने पर। कार्टज के विचारों के अनुसार विकास प्रशासन का अर्थव्यवस्था, सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में सुनियोजित बदलाव लाने का वषद्धिगत दायित्व सौपा गया है। फिर भी विकास प्रशासन एवं सार्वजनिक प्रशासन के बीच भेद करते समय उनकी अपनी–अपनी महत्ता से आलोचना नहीं की जानी चाहिये। तरलोक सिंह, भारत में विकास प्रशासन के संदर्भ सहमत है कि –

साधारण प्रशासन के सम सामाजिक ढांचे के चरित्र का विकास प्रशासन की शक्ति एवं दुर्बलता पर एक निश्चित प्रभाव है। यह इस कारण से है कि साधारण एवं विकास प्रशासन के आपसी गठजोड़ है।

विकास प्रशासन का लक्ष्य को प्राप्त करना है। "विकास" शब्द ही महत्त्वपूर्ण है जो इन दोनों के बीच मतभेद की रेखा खींचता है –सार्वजनिक प्रशासन और विकास प्रशासन।

2.4 विकास प्रशासन का क्रमिक विकास

इस शीर्षक के अंतर्गत विकास प्रशासन के क्रमिक विकास की धारणा को जानने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त, इस सेक्शन में यह वर्णन है कि विकास प्रशासन की प्रवृतियां किस प्रकार सार्वजनिक प्रबंधन के क्रियाकलापों को प्रभावित करता है।

2.4.1 आधार अवधि

विकास प्रशासन, एक शैक्षणिक विषय के रूप में, राज्य द्वारा संचालित विकास के रूप में पश्चिम में 1960 के दशक के प्रारंभ में उभरकर सामने आया, इसका प्रभाव स्वतन्त्रता के 1947 के आखिर में देखा जा सकता है। जिसमें सार्वजनिक प्रशासन इस की तुलनात्मक फ्रेमवर्क विकसित करने में अयोग्यता की आलोचना की गई थी।

यद्यपि इस शब्द का पहली बार प्रयोग एक भारतीय प्रशासनिक सेना के अधिकारी ने अपने आलेख "दी स्ट्रूवचक ऑफ डेवलपमेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया' ' में 1955 में सामुदायिक कार्यक्रम के संदर्भ में किया था, इसे लोकप्रिय बनाया गान्ट स्टोन, रिग्गस एवं वैडनर ने 1960 के दशक में।

पूर्व की विदेशी शासको के अंतर्गत रही कोलोनीय के स्वतंत्र राष्ट्रों के रूप में उभरने से, यू.एस.ए. आई डी के अंतर्गत कापरेटिव एडमिनिस्ट्रेटिव ग्रुप (सीएजी) एवं तकनीकि सहयोग के लिए भारी शोध 'फन्डिग' या राशि की व्यवस्था की गई है। जिसके 'सामाजिक–आर्थिक प्रगति' एवं राष्ट्र निर्माण की तथा कथित तीसरी दुनिया में (लेटिन – अमेरिका ने अपवाद के साथ, नये स्वतंत्र राष्ट्रों की दुनिया' युद्ध पूर्व 'कोलोनियल आर्डर की विरासत भी जिस पर कुछ यूरोपियन शक्तियों का वर्चस्व था) विकास प्रशासन की लोकप्रियता बढाई सामाजिक–आर्थिक प्रगति एवं राष्ट्र निर्माण के लक्ष्यों को प्राप्त करने के मेकेनियम के रूप में। 1930 के दशक की बड़ी मंदी विश्वयुद्ध द्वितीय (1939–43) की चुनौतियों, मार्शल प्लान के सबको (पश्चिमी यूरोप के पूलर्निमाण का कार्यक्रम) एवं संयुक्त राष्ट्र संघ के विकासशील देशों की आर्थिक–स्थिति में सुधार लगने के प्रयासों ने विकास प्रशासन के क्रमिक विकास की धारणा को प्रभावित किया। इसके पीछे यह लक्ष्य औश्र धारणा थी कि संतोषजनक विदेशी सहायता और व्यवस्थित बनाई गई। प्रशासनिक प्रणाली के साथ, ये नये राष्ट्र करीब से अनुसरण करेंगे पश्चिम की औद्योगिक प्रगति का यदि पूर्णत: इसे उपलब्ध न भी करवाये तो। ऐसा लगता है कि इसके पीछे जो लक्ष्य था वह आधुनिकरण करने का था, लेकिन इसके पीछे तत्कालीन संरचनाओं एवं प्रक्रियाओं को जड़ से उखाडना नहीं था, ताकि गरीबों, छोटे उत्पादकों एवं पिछडे समाजों को निर्भरता के चक्र में बंद रखा जा सके एवं मानों अंडर डेवलपमेन्ट में रखा जा सके। दूसरा कारण जो सुझाया जा सकता है वह मार्क्सवादी–लेनिनवादी 'वर्गहीन समाज' की विचारधारा का प्रवाह को रोकना हो सकता है। न्यू राष्ट्रों को साम्यवाद के आकर्षण से बचाना था। लापालोम्बारा लिखते है, ' 'बिन्दु यह है कि और अधिक एवं

खुला एवं सचेत प्रयास होना चाहिये कि केवल अमेरिकी तकनीकी विशेषता का आयात न हो बल्कि हमारी राजनीतिक विचारधारा एवं हमारी राजनैतिक संस्थाओं एवं क्रियाकलापों को ही मध्यनजर रखा जाये।”

इससे यह स्पष्ट होता है कि मुख्य मुद्दा जो अस्तित्व में है उस सरकारी मशीनरी को आमूल्यक रूप से परिवर्तित कर एक नई ईकाई के रूप में स्थापित किया जाये, यह कार्य प्रशासनिक विकास के माध्यम से सम्पन्न करना था, जो कि बाह्य परिवर्तनों, टेक्नोलॉजीज स्थानान्तरण, विदेशी विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण और विकासशील देशों में सार्वजनिक प्रशासन की संस्थाओं की स्थापना के माध्यम से सरकारी मशीनरी का आधुनिकरण था।

2.4.2 1970 के दशक तक विकास प्रशासन

यू.एन एवं इसकी एजेन्सियों (जैसे कि डब्लू.एच.ओ., यूनेस्कों एवं आई.एल.ओ.) एवं वित्त उपलब्ध कराने वाली 'फण्डिग' संस्थानों (फोर्ड फाउन्डेशन, अनइवर्सिटीज एण्ड अमेरिकन सोसायटी फॉर पाटकक एडमिनिस्ट्रेशन) की स्थापना से विकास प्रशासन की धारणा को पुष्ट किया। इसका उपयोग नये राष्ट्रों को पश्चिम के समान जीवनस्तर प्राप्त करने में उपकरण के रूप में माना गया।

राज्य द्वारा संचालित विकास के युग में, यह माना गया है कि संतोषजनक तकनीकी सहयोग और चुस्त–दुरूस्त की गई प्रशासनिक प्रणाली से विकासशील देशों द्वारा पश्चिम की औद्योगिक प्रगति का अनुसरण करेगी। विकास इन देशों की राजनीति का केन्द्र बन गया। विकास प्रशासन को तत्कालीन इच्छा शक्ति के एकीकरण औश्र नये स्रोत तथा पर्याप्त प्रशासनिक क्षमताएं प्राप्त करने तथा सहमति आधारित विकास लक्ष्य पाक से संबंधित देखा जाने लगा।

इस प्रकार विकास प्रशासन एक ऐसा कार्यशील प्रशासन बन गया है जो लोगों की जरूरतों को पूरा करने का सर्वोतम प्रेरक था। विकसित देशों के कार्यो को तकनीकी सहयोग और एवं संस्थाएं हस्तान्तरण कर प्रतिवर्तन के प्रलोचन के रूप में देखा जाने लगा। इस प्रकार की पश्चिमी करण की व्यूह रचना प्रशासनिक मशीनरी एवं सम्पूर्ण राष्ट्रीय समुदाय की और निर्देशित थी।

2.4.2.1 तकनीकों पर बल

1960 के दशक में कई तकनीकों एवं कार्यक्रम लोकप्रिय हुए, जैसे कि पंचवर्षीय योजना, बजटिंग प्रशिक्षण एवं कार्मिक प्रशासन और सामुदायिक विकास जिनका झुकाव आधुनिकीकरण पश्चिम आधारित प्रशासन की ओर परिभाषित होती है। पूरे' 1960 के दशक में, शोध निष्कर्षों ने आर्थिक वृद्धि के लिए प्रशासनिक क्षमता के महत्व को कम आंका। लेकिन यह अनुभव किया गया कि तीसरी दुनिया के लिए राजनीतिक सामाजिक–आर्थिक बदलाव लाने के लिए आवश्यक शर्त निर्धारण थी। इनमें एक विस्तृत आर्थिक आधार, कानून एवं व्यवस्था, राजनीतिक इच्छा, एक कर आधार व्यावसायिक प्रशिक्षित मानव–शक्ति एवं राजनैतिक–प्रशासन की क्षमता रखती हो, शासकीय थे। इन गुणों के अभाव के साथ, सभी स्थानीय–स्तरों, राज्य एवं केन्द्र में प्रशासनिक क्षमताऐं दुर्लभ थी। यह मानते हुए कि सार्वजनिक घटनाओं या कार्यक्रमों, नवीनीकरण जो कि बहुधा विदेशी विशेषज्ञों से उत्पन्न क्षमतावान कार्मिकों को इनके प्रबंधन की दुर्लभता। ये सब ऊपरी सजावट के संरचनात्मक बदलाव मात्र जिनसे यथा स्थिति में कोई वास्तविक बदलाव नहीं आया। यहां तक की जहां आयोजकृत भारी संख्या में प्रशिक्षित सार्वजनिक

कर्मी थे, नौकरशाही का सम्पूर्ण संस्थाकरणों ने विकास लक्ष्यों को संकुचित कर दिया। इसके अलाव नौकरशाही के कई विकासशील देशों विस्तार का सामाजिक–संरचना पर आधारभूत प्रभाव पड़ा। कई एशियन एवं अफ्रीका देशों में, एक नये नौकरशाही बुर्जवा वर्ग के सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में अपना वर्चस्व कायम कर लिया। अभिकरण के केन्द्रीकरण एवं मनमर्जी की शक्तियों के साथ, राज्य नौकरशाही के अपने लाभ के अग्रसर करने की भूमिका निभाने का अवसर मिला, इस प्रकार पश्चिम द्वारा संचालित विकास प्रशासन तीसरी दुनिया के देशों के अविकसित रहने के साथ कदम से कदम निभाने में असफल हो गया। राज्य की नौकरशाही के क्रियाकलापों में या तो कम या कोई सुधार नहीं हुआ। साऊथवियतनाम इरान और दक्षिण कोरिया की थोपे हुए आधुनिकरण के उदाहरण, विकास प्रशासन की निराशाजनक असफलता की ओर संकेत देते है। 1970 के दशक दूसरे आधे चरण में यह अनुभव किया गया कि यू.एस.ए.आइडी–सीएजी सरकार की सर्वाधिक अधिनायकवादी एवं सैनिक सरकारों की नीतियों में योगदान दिया। एक अमेरिकी विद्वान, ब्रायन लवमेन ने लिखा – " 1970 के दशक तक प्रशासनिक विकास और विकास प्रशासन अधिनायकवादी प्रतिभा बन गये थे, बारबार सैनिक शासक कि अभी औद्योगिकीकरण थोप, आधुनिकरण औश्र यहाँ तक आर्थिक वृद्धि। लेकिन यह सब ग्रामीण एवं शहरी गरीबों कल्याण की करने की थी। कीमत चुकाकर किया गया। यदि स्वत जनता के साथ सम्बन्ध राजनीतिक आदि को खत्म करके नही हुआ।"

2.4.2.2 सीएजी एवं पश्चिमी व्यूरचना की आलोचना

फ्रेड रिग्गस ने स्वीकारा कि सीएजी सार्वजनिक प्रशासन कार्यक्रमों की सहायता करने में सीएजी के बहुत कम योगदान किया। वास्तव में, 1960 के दशक के सी.ए.जी अभियान में बढी हुई वृद्धि के, विकास प्रशासन बौद्धिक निराशा की गहरी खाई में गिर गया।

1970 के दशक ने तुलनात्मक सार्वजनिक प्रशासन अभियान की अवनति को देखा और इसकी विरासत राजनीति विज्ञान एवं सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तृत दायरें में समा–गई। " सीएजी के बंधन 1973 में टूट गये, और इसकी प्रमुख जानकारी 'दी जनरल ऑफ कमोरेटीव एडमिनिस्ट्रेशन' जो 1974 से प्रकाशन में बद था, बंद हो गया। सी.एसी की प्रशासनिक विकास एवं विकास प्रशासन की जो अवधारणा की गई थी, उसकी विभिन्न कारणों में समीक्षा की वर्ग एवं आलोचना की गई। पहली, यह कहा गया कि जो व्यक्तिगत रूप से विद्वान सीएसी से संबद्ध थे, वे समेकित बौद्धिकता संगठनात्मक सर्म्पूणता का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। उनमें मौलिक रूप से इस बात की सहमति या एकमत का अभाव था कि विदेशी तकनीकी सहयोग एवं सहायता के कार्यक्रमों में लाग तुलनात्मक प्रशासन का अध्ययन किस प्रकार किया जाये। पीटर सेनेज कहते है कि ' तुलनात्मक प्रशासन बिना किसी अपने पेटर्न के प्रारम्भ हुआ और इसके कोई विकसित भी नहीं किया।'

विकास की पश्चिमी व्यूहरचना पर टिप्पणी करते हुए, इस पर इस प्रकार खेद व्यक्त करते हैं। "एक व्यवस्थित परिवर्तन के स्थान पर सम्पूर्ण एशिया, मध्यपूर्व अफ्रीका और लेकिन अमेरिका में एक अस्त व्यवस्था एवं बिखराव हो गया। इसके अभाव, 1970 के दशक की मंदी और 1960 के प्रारम्भिक दशक ने पश्चिम की विकासात्मक व्यूह रचना के प्रति उत्साह में कमी की और तीसरी दुनिया में पश्चिम की बुहिक्ता के प्रति सन्देह उत्पन्न कर दिये।'

2.4.3 1980 के दशक में विकास प्रशासन

यहां इस बात पर बल दिया जा सकता है कि सी.ए.जी का अवसान फिर भी, विकास प्रशासन में शोध के अंत का संकेत नहीं देता। दूसरी और इसको अनवरत बनाये रखा योगदान देते हु ए फाउन्डेशन प्रशासनिक द्वार, जैसे कि मिल्टन एस्मिन एवं गेराल्ड कैडन इसे और पूरा करके में समाज वैज्ञानिकों, विकास प्रक्रटशनर्स, प्लानर्स एवं नीति सलाहकारों ने राष्ट्रीय सरकारों एवं अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्थानों जैसे विश्व बैंक सहयोग किया।

नियो–लिबरल अर्थशास्त्रियों की बौद्धक वर्चस्वता के साथ 1980 के दशक में और नियो–लिबरल विश्व बैंक द्वारा आरन्तियार करने के साथ, एक मूठ पैदा करने वाला सम्पूर्ण स्पष्टीकरण सार्वजनिक नौकरशाही और विकास लक्ष्यों के बीच के संबंधों पर प्रस्तुत किया गया। नियो–लिबरलम ने इस मुद्दे को इस तरह उठाया कि सार्वजनिक नौकरशाही में विकास लक्ष्यों को पूरा करने की क्षमता थी। तीसरी दुनिया की प्रकृति पर ध्यान केन्द्रित करते हु ए और वास्तव में, राज्य की असफलता पर जोर देता है नियो–लिबरनम विकास प्रशासन के राजनैतिक पर्यावरण की सीमा क्षेत्र में घिर गया।

जबकि नियो–लिबरनम आलोचकों के साथ राज्य द्वारा निर्देशित विकास एवं विकास प्रशासन के मुंह खतरों से भरे रहे क्योंकि विश्व बैंक के अंतर्गत दबावों में 1980 के दशक में सार्वजनिक क्षेत्र (संस्थानों) के पूनर्निमाण की बडी वास्तविकता ने इसे मानव पटल बौद्धिक प्रभुत्व से प्रभावित किया। परिणाम स्वरूप, आधारभूत विकास प्रशासकों, जैसे एसमेन ने अपने शोध एजेण्डे को नियो–लिबरनम के विवादास्पद दावों से संचालित पाया। इसके अलावा, विकास प्रशासकों कोई कार्य सार्वजनिक क्षेत्र और सार्वजनिक संस्थानों के निजीकरण की चर्चा के बिना सम्पन्न होता। यहां तक कि प्रशासनिक सुधारों के प्रमुख हिमायती (कैडन) ने अपने दूबोक्स में प्रशासनिक सुधारों के उपायों सुझावों जो प्रशासन के खिलाफ थे। सार्वजनिक प्रशासन एवं प्रशासन 1981–91 से चुने हु ए पेपर्स का संग्रह, इस प्रकृति को पकडते है। समसामयिक सार्वजनिक प्रशासन और विकास के जरनाम वर्ल्ड बैंक की नौकरशाही के विकासात्मक तथ्यों को प्राप्त करने में उपायाच्छियों पर प्रतिक्रिया को कम आंकते है।

1980 के दशक में विकासशील देशों का मोह भंग हो गया जबकि अपने ऋण देने के लिए विवश किया गया। विकासशील –देशों को उबेजक शुद्ध वित्तीय स्थानान्तरण उछलकर 36 विमियन डालर शुद्ध इनफो हो गया। 1981 में बढकर शुद्ध आऊटसको 300 विमियन के करीब हो गये 1989 में सब सहारा अफ्रीका एक कमजोर कार्य–सम्पादन के रिकार्ड के साथ ने सक्षम प्रशासनिक क्षमता के लिए 1980 के दशक विश्व बैंको में पूंजी नियोजन अभिजित किया। जामकिया में कार्यक्रम के सम्पन्न सब सहारा अभिकल में प्रशासनिक क्षमता निर्माण में शासकीय था। आर्थिक योजना एवं वित्तीय प्रबंधन संस्थाओं को सुदृढ़ करना एवं पुर्नगठित करना, आर्थिक नीति निर्धारण में सुधार लाना, योजना एवं प्रबंधक सार्वजनिक पूंजी नियोजन एवं व्यय, योजना, एवं बाहरी वित्तीय प्रबंधन।

इस प्रकार आर्थिक वृद्धि एवं सार्वजनिक प्रशासन साम्यवाद के बाद पूर्वी यूरोप में पर चर्चा में, विश्व बैंक ने भी दूरगामी क्षमता निर्माण प्रयास के सुधार पर तर्क किया। विश्व बैंक के प्रबंधन आयामों को नकारात्मक आर्थिक वृद्धि से पार पाने की व्यूहरचना के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

ब्रान्डर कमीशन रिर्पोट (1980) ने विश्व व्यवस्था की रचना के विचार के साथ विकसित एवं विकासशील देशों के बीच शान्ति– भागीदारी की वकालत की। इससे यह परिकल्पना की गई थी, कि

लंबी अवधि में, सफल देशों को हथियार निर्यात के माध्यम से तथा सील्ड खनिजों में बढायें जा रहे। राजस्व सामाजिक आधार से भारी स्रोत स्थानान्तरण समय पर होगा।

1980 के दशक में, सार्वजनिक क्षेत्र एवं सरकार के प्रति एक नकारात्मक भाव था। अधिकांश विकासशील देशों को सार्वजनिक क्षेत्र की भूमि को कम करने को विवश होना पड़ा। उनसे ढांचागत सुधार करने को कहा गया जिनमें सार्वजनिक मालिकाना हक वाले सार्वजनिक संस्थानों का नीजिकरण एवं वित्तीय बाजार के मुक्तिकरण शामिल थे।

2.4.4.1 1990 के दशक में विकास प्रशासन और विकास प्रबंधन की प्रवृतियाँ एवं प्रोचेण

1990 के दशक के प्रभाव के आर्थिक सुधारों की ओर लोटने से पूर्व विकासशील देशों के समक्ष प्रण संकट था। भुगतान संतुलन समस्याओं के एक्सचेंज रेट का क्षय कर दिया एवं सरकार की खरीद शक्ति को उधार देने वाली संस्थाओं प्रण सुविधा वापिस लेने 1980 के अन्तिम हिस्ट में और यहां तक कि निजी बैंको के आगे प्रण देने से आनाकानी के कारण प्रण राजस्व स्रोत कम करने से घटा दिया। पश्चिम ब्लॉक देशों की केन्द्रीय स्तर पर नियोजित आर्थिक प्रणाली के ध्वस्त होने से यह प्रदर्शित हुआ कि दुर्बल सार्वजनिक सेवाओं की समस्याओं के निदान के लिए सरकारी कार्य संचालन में प्रबंधकीय पुनर्विचार की जरूरत है।

विश्व बैंक की वर्ल्ड डैवलमेन्ट रिर्पोट 1991 में इस बात पर बल दिया कि लोगों पर पूंजी नियोजन बना संस्थानों के वातावरण में सुधार लाने, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं पूंजी नियोजन को खोलना, मेक्रो–इकोनॉमी पर लिखी अख्तियार करना और सरकारों में यह चाहना कि जहां बाजार सक्रिय हो वहां कुछ कम करें, या तर्क विसंगत से ढंग से ठीक कार्य करें। विकास के 'नियो–लिबरनम मॉडल' सरकार के न्यूनतम भूमिका देता है, आवश्यक रूप से मेक्रो–इकनॉमी के स्थायित्व को सुनिश्चित करने की, इस बात बल देते हुए कि कीमतों में स्थायित्व हो, जबकि व्यापार के मुक्तिकरण की ओर कदम बढाना, निजीकरण और कीमतों को ठीक करते वक्त।

1990 के दशक की शुरूआत 1960 के दशक के रिट्रेचमेन्ट या कटनेक आर्थात कर्मचारियों को हटाने या कम करने की नीति पर ध्यान केन्द्रित करती हुई। ज्यों दशक आगे बढते गये और राजनीतिक माहौल में भी प्रतिक्रियाओं में भी इजाफा होता गया सामाजिक समानता कायम करने वाले कई कार्यक्रमों के संदर्भ में विकास प्रशासन के लिए भी इसके प्रभाव कई हुए और है। जबकि प्रमुख ध्यान सरकार के क्षेत्र और साइज को घटाने पर केन्द्रित था, कई गतिविधियों का लक्ष्य ऐसे प्रयासों के माध्यम से बचत प्राप्त करने और सरकार के कार्य संचालन में सुधार लाने का था। इस प्रकार पुनः अनुमान एवं पुन इन्जीनियरिंग 1990 के दशक की सबक बन गये थे।

विकास प्रशासन को अब बहुआ विकास प्रबंधन कहा जाने लगा है। यह एक प्रकार प्रोटोटिपी काम है निरन्तर तुलनात्मक सार्वजनिक प्रशासन को खालने का।

इसके विपरीत नियमन मैकेनिज के उपयोग करने, नवीन तौर तरीका का बल सरकारी संस्थानों को कम या संकुचित करके और दायित्वों को कम करने पर है। आर्थिक मुक्तिकरण राज्य द्वारा संचालित सस्थानों के निजी क्षेत्र में स्थानान्तरित करने, राज्य की नौकरशाही की साईज को घटाकर, बाहरी कार्य संविदा पर कराना, विकेन्द्रिकरण और संगठनात्मक प्लुरेलिजा को व्यूहरचना एजेण्डा में उच्च स्थान पर रखा गया है। सरकार की प्राथमिकता वाली भूमिका बदल गई है और सामाजिक–आर्थिक विकास

में सरकार का मार्ग दर्शन करने एवं सुविधाजनक बनाने के वाहक के रूप में कार्यरत रहने की अधिकतर भूमिका अर्थव्यवस्था में संरचना –शिक्षणगत तकनोलॉजी, वित्तीय, पर्यावरणीय, और सामाजिक संरचना तैयार करने की हो रही से देखा गया है। संक्षेप में, 1990 के दशक में सरकार के चुने हुए कार्यो में विकास प्रशासन पर वर्चस्व कायम रखा इनमें से कुछ नये तौर तरीकों का संक्षेप में आगामी पैजों में वर्णन किया गया है।

2.4.4.1 प्रशासन को योग्य बनाना

विकासशील देशों की सरकारों का अर्थव्यवस्था के माइको–मैनेजमेन्ट में दशक देने की लम्बी परम्पराएं रही है। इनमें कीमतें करना, प्रण नियमन, विपणन और विदेशी लाभों और एवं पूंजी नियमन पर पाबन्दियां शामिल है। नई एप्रोच में इस बात की आवश्यकता है कि प्रतिस्पर्धा पर पाबन्दियां हटाई जाय, उन सार्वजनिक एजेन्सियां को खत्म की जाये जो ये कार्य निष्पादित करती है इससे यह भी अर्थ निकलता है कि सार्वजनिक क्षेत्र का घटती प्लेईंग फील्ड अर्थात एक समान धरातल पर कार्य करने का अवसर उपलब्ध कराया जाये। विकास के लक्ष्यों का पीछा करने या पूरा करने की व्यूहरचना का अर्थ है कि सार्वजनिक क्षेत्र की घटती भूमिका और निजी क्षेत्र पर अधिक निर्भरता। लेकिन विश्व बैंक के परिवर्तन करने के लिए दबाव के बावजूद, राज्य की सही भूमिका के बारे में वाद–विवाद जारी है। ऑथर या लेखक यह दृढ़ता के साथ अनुभव करता है कि बाजार–अर्थव्यवस्था के संचालक में सार्वजनिक एक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में है। सार्वजनिक रूप में उपलब्ध कराई ढांचागत सुविधाएं या संरचना पूंजीवाद एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था दोनों में निजी क्षेत्र की वृद्धि का सदैव आधार या फाउण्डेशन रही है। यह माना गया है कि मानव शक्ति प्रशिक्षण, टेक्नोलॉजीज नवीनीकरण एवं सामाजिक विकास में राज्य की अग्रणीय भूमिका होती है। नई एप्रोच में, प्रशासित विकास, निजी क्षेत्र उद्यमियों एवं एनजीओ के साथ सार्वजनिक सेवक योग्य बनाने वाला उपलब्ध कराना और आवश्यक इन्फ्ररटक और वित्तीय नियम के साथ अस्तित्व में रहेगा। विवि तकनीकी विपुल की उपस्थिति सरकार को संस्थागत एवं संचालन संबंध फार्मूला चुनने की आज्ञा देंगे जो सामाजिक राजनैतिक प्राथमिकताओं एवं सांस्कृतिक पेटर्नस के संबंध में है।

2.4.4.2 मेक्रों–मैनेजमेन्ट

कई क्लासिक सार्वजनिक प्रशासन सिद्धान्तों एवं प्रशासन की संरचनात्मक धारणात्मक ने माइक्रो मैनेजमेन्ट पर ध्यान केन्द्रित किया। क्लासिकी प्रशासन सिद्धान्त का प्रमुख उद्देश्य यह रहा है कि ' 'टॉप मैनेजमेन्ट या उच्च प्रबंधन द्वारा उपलब्ध करने के लिए एक संगठन में लोग किये प्रशासन करते है को स्पष्ट करना। '47 इसके विपरीत, मेक्रो मैनेजमेन्ट में संगठनों की एक समूह और एजेन्सियां होती है जो आपके कार्यक्रमों के लक्ष्य पाने के लिए इन्टरएक्ट करती है। यह सार्वजनिक संस्थानों को बल प्रदान करने में क्षमता पर बल देती है। समसामाजिक क्षमता–निर्माण मॉडल खासतौर से 1950 एवं 1960 के दशक के टेक्नोलॉजी सहमेज प्रशिक्षण मॉडल से किया है जिसमें मानव स्रोत को शीक्षण एवं प्रशिक्षण द्वारा क्षमता निर्माण चाहा गया है हालत में विश्व बैंक की क्षमता निर्माण के लिए यह एप्रोच संकुचित विचार के साथ रही है कि प्रणाली में सुधार लाया जाये, और प्रभावपूर्ण मानव स्रोत आवंटन किया जाये ताकि नीति नियमन को बढाया जा सके एवं क्षमता का विश्लेषण किया जा सके।

दूसरे विश्व बैंक की मेक्रो–मैनेजमेन्ट धारणा स्पष्ट होती है ।कई विकासशील देश, विशेषकर एशिया, अफ्रीका, द. अमेरिका एवं कोरिया में प्रभारी क्षमता का आभाव है और मेक्रोइकोनॉजी एवं व्यूह रचनात्मक के संदर्भ में आन्तरिक समन्वय का आभाव ये सब नौकरशाही की निम्नांकित समस्याओं के कारण वरिष्ठ स्तर पर निम्न वेतन, राजनीतिक स्वरूप का निरन्तर चलन, और योग्यता के आधार पर नियुक्तियां एवं पदोन्नति। विश्व विकास प्रतिवेदन 1998 में इस कम आंका गया है। हर राज्य को विश्व स्वरूप बनाने के लिए दो–हितों की व्यूहरचना, अपने देश के विकास में प्रभावी भागीदार जो न कि (1) राज्य की भूमिका इसकी क्षमता के अनुरूप ढालना और (2) सार्वजनिक संस्थानों का पूर्णशक्तिकरण कर राज्य की क्षमता को ऊँचा बढाना। नई एप्रोच में चाहा गया है कि राज्य सुद्दढ़ एवं और आर्थिक कुशल बनें। वे आर्थिक एवं वित्तीय में संस्थान जो कर प्रशासन में समूह है और सामाजिक सुराग प्रजातियों का प्रशासन को चलानी है, और नियामक में स्थान जो बैंको एवं स्टाफ एक्सचेंज जो तथा कार्पोरेट इकाईयों को देखती और सुपरवाइज करती है, वे आर्थिक सुधारों पर विचार विनिमय में प्रमुखतः उभरती है।

2.4.4.3 प्रबंधन संस्कृति

अधिकांश सामाजिक वैज्ञानिक एवं नीति योजना बनाने वाले आज यह प्रस्ताव स्वीकार करते है कि बाजार अकेले आर्थिक विकास सुनिश्चित करने में सफल नहीं हो सकता और समाज के कुछ वर्गो या सेगमेन्टस की भारी गरीबी से रक्षा करने में असफल हो सकता है। कुछ लोग यह तर्क प्रस्तुत करते है कि सरकार दखलान्दाजी ज्यादातर बहुदा व्यवहार में गैर उत्पादन या काउन्टस–प्राडक्टिव रही है। मौलिक स्वरूप बाजारों एवं सरकारों की शक्तियों और कमजोरियों में संतुलन की बात करता है। और यह निश्चय है कि वे एक दूसरे के किस प्रकार सर्वश्रेष्ठ तरीक से पुष्ट कर सकते है। विकास प्रशासन के हाल ही के कार्यक्रमों ने निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों की एक दूसरे पर निर्भरता को मान्यता दी है। विकास नीतियों के क्रियान्वयन में भागीदारी के विकास निजी रक्षा एवं स्वयं सेवी संगठनों के बीच एक प्रमुख तत्व उभर कर आई। कार्यक्रमों एवं यात्रियों के क्रियान्वन की हो हुई है। सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों की सिनर्मी लचीले और अब तब चतुराई ब्यूर एवं गतिविधियों व्यूहर रचना एवं गतिविधियों के चयन में बनाये रखी गई उदाहरण के लिये नाम्बिया में संचार किया का वाणिज्यकरण दिया गया दो निम्न के साथ इंडिया मोस्ट एवं भारत संचार का निम्न के नाम से उनके और अधिक वाणिज्यिक एवं ग्राहक आधारित एप्रोच अख्तियार करने की अनुमति देकर यद्यपि ने सार्वजनिक क्षेत्र में अनवरत बनी रह सकती है। अधिकांश विकासशील देशों में यह सुनिश्चित करने के लिये कि तथा सार्वजनिक सेवा गतिविधियों के संचालन में संविदा के द्वारा काम करना सर्वाधिक कुशल होगा। जो कि जाहिर है सार्वजनिक क्षेत्र का एक मात्र पूरा दायित्व की जरूरत है। सार्वजनिक क्षेत्रों के क्षेत्रों का निजी था एनपीओ आपूर्तिकर्ताओं के लिये अवलोकन की जरूरत है। भारत, शिक्षा स्वास्थ्य वन एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में स्वायतशाषी संगठनों से या एनजीओ की भूमिका का सफल अनुभव कर चुका है। इसी प्रकार बांग्लादेश में ग्रामीण बैंक की स्थापना साथ भागीदारी या पार्टनर की प्राप्त की जा चुकी है। जिन्हें समाज के गरीब तबकों के सीधे लाल उपलब्ध कराने के लिये प्रभावपूर्ण कार्यक्रम विकसित किये। विश्व बैंक, इन्टरनेशनल मोनेटरी एवं यूएएआईडी, ब्रिटिश ओवर सीप डेवलपमेन्ट एजेन्सी बोर्ड एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों द्वारा प्रयोजन ने नये उपाय एक वैकल्पिक मॉडल उपलब्ध कराते

लगते है। उन सब समस्याओं के लिये जो जो प्रशासनिकत विकास के बिना प्रशासनीकृत विकास के साथ सम्बद्ध है।

यह प्रबंधकीय केन्द्रीय हमारे वृद्धि गत रूप से औपचारिक प्रक्रियाओं से हटकर परिणामों की और निर्देशित की गई है। कई विकासशील देश जैसे मलेशिया, नाम्बिया, सिंगापुर मोरिशिस एवं आशा ग्राहक बने सेवा गुणवत्ता प्रदान करने पर ध्यान केन्द्रित करने के महत्व पर जोर देते है। गुणवत्ता एवं वृद्धिगत पहचान सार्वजनिक जरूरतों की सेवा की महत्व पक्ष ही नई संस्कृति के एक नई संस्कृति के मूलों में नेतृत्व, गुणवत्ता उत्पादकता एवं पारदर्शिता शामिल है। हाल ही के वर्षों में राजनीतिज्ञों में नैतिक मानकों की बढ़ती अवनति को देखा गया है। जिसकी इस प्रकार के बडे पैमाने पर नैतिक मानकों ने नौकरशाही को अभी तक अपने जाल में यद्यपि मीडिया नौकरशाही को दागी, अनुशासन एवं अपने पद के प्रति सचेत एवं अधिनामक वृद्धि के रूप में नकारात्मक छवि लगातार प्रस्तुत करता है। लेकिन किसी के यह पूर्णतः सनकी आदर्शों एक समर्पण से विहीन है। सार्वजनिक क्षेत्र में हाल ही के सुधारों एवं प्रयासों के नौकरशाही की एवं मूल्यों के समक्ष बडी चुनौती प्रस्तुत की है। इस सम्बन्ध में द्विवेदी ये अनुभव करते है विकास प्रशासन के सामने सबसे बडी चुनौती नैतिक स्तर पर ऊंचे उठे और राजनैतिक नेताओं की प्रशंसा की स्व–केन्द्रित आन्नदानुभूति में न डूबे। उन्होंने विश्वधर्मा से आध्यात्मिक मार्गदर्शन लेकर सार्वजनिक सेवा के मूल्यों की नई एप्रोच पर बल दिया।

जन सेवा सुधार भारत में डूबा प्रशासनिक सुधार आयोग एआरडी खण्ड में गठित किया गया। सार्वजनिक प्रशासन प्रजा की तो चुस्त दुरूस्त करने के लिये प्रस्तावित किये जा रहे है। इस कर्मचारियों की सत्यता सुवृद्ध करके बदलकर प्रक्रिया में पारदर्शिता ही कार्य के लिये जिस पुरस्कार व्यक्तिगत प्रयास को मान्यता तथा ग्राहकों एवं उपयोग कर्ताओं से सलाह के माध्यम से संगठनात्मक संस्कृति सुदृढ़ बनाने पर जोर देने के साथ। समसामयिक एप्रोच में योग्यता एवं उपलब्धि पर नवीनता के साथ बल देने प्रबंधकीय स्वायत्तों और टीम ए वार्ड से रोजगारों में समान अवसर पर नीतियां और भ्रष्टाचार को न्यूनतम करने के प्रयास मजबूत हो रहे है। सेवा लम्बाई एवं वरिष्ठता अपेक्षाकृत कम अवधि के संविदा रोजगार में और उपलब्धि आधारित पदोन्नति के उच्च संरक्षित केरियर से शिफ्ट में एक नये संवेदनात्मक प्रबंधको को डर उभरता हुआ नजर आता है। सिंगापुर एवं अन्य कई देशों ने कुशलता पर ध्यान देते हुये प्रमुख मापदण्ड वरिष्ठ सार्वजनिक अधिकारियों का बनाये रखने या सेवानिवृत्त करने पर ध्यान केन्द्रित करने की एक व्यवस्थित प्रणाली बनाये रखी है।

2.4.4.4 विकेन्द्रीय एवं प्रबंधकीय स्वायत्तता

विकेन्द्रीय करण की आलोचना के बावजूद, सरकार इस एप्रोच की योग्यता या मेरिट के प्रति आश्वस्त है। विशेषकर सामाजिक नीति के क्रियान्वयन के क्षेत्र में यह धारणा एक संगठनात्मक अधिशाषी उपाय के रूप उत्पन्न हुआ है जो बदले हुये लक्ष्यों से जुड़ाहै। राज्य की शांति एवं स्रोतों का विकेन्द्रीयरण करना लगता है कि सरकार को जनता के और अधिक करीब लाने के प्रयासों की प्रमुख व्यूह रचना है। परम्परागत नौकरशाही. का यह चरित्र वर्णित किया गया कि वह केन्द्रीय नियन्त्रण एवं दिशा निर्देश का एक अंग है। इसके विपरीत केन्द्रीयकरण, सार्वजनिक सेवाओं को स्थानीय मांग और कार्य संचालन के और नजदीकी और निम्न स्तर में और अधिक संवेदानात्मक एवं दायित्वपूर्ण सरकार लोगों की 'जरूरतों के अनुरूप हो।

यह विस्तृत स्तर पर अब स्वीकार कर लिया गया कि सार्वजनिक सेवा के प्रबंन्धनों को कार्यो का प्रबंध करने की अनुमति की गई है। उनके परिणामों के लिये उन्हें जिम्मेदार बनाया जाना चाहिए। कार्य संचालन में अपने दायित्व को निभाने के बदले ही तो वरिष्ठ अधिकारियों को अधिकार प्रदान किये गये है। नियन्त्रण का लक्ष्य संचालन सहमति से और वरिष्ठ अधिकारियों के लिये विशेष हिदायतें कम अवधि में लक्ष्य पाने की संविदा मंत्री स्तर पर उपलब्धियों की समीक्षा का आधार उपलब्ध कराता है।

अब इस बात पर बल दिया जाता है कि सार्वजनिक सेवा की परम्परागत प्रक्रिया का लालयुक्त इस बात की और स्पष्ट विभाग को हो या मंत्री स्तर के लक्ष्य हो। बोट्सवाना सरकार ने विभिन्न विभागों एवं संस्थाओं में कार्य सुधार दल बनाने के उत्पादकता एवं गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम 1993 में प्रस्तावित किया। इसी प्रकार भारत में शक्ति के विकेन्द्रीयकरण के साथ जनतांत्रिकरण के स्थानीय परिदृश्ये को बदल दिया जैसे कुछ लोग इसे शांति क्रान्ति की संज्ञा देते है।

कई विकासशील देशों में अब सरकारें और अधिक खुला प्रशासन बनाने की और बढ़ती दिखाई देती है। एक सक्रिय सभ्य समाज मीडिया इस सरकारी संगठनों एवं निजी संचार भण्डार या थिक टेंको के उभरने की परछाइयों के साथ जो निर्णय करने तक की पहुंच की मांग करते हुये विशेषकर कामनवेल्थ देशों में सिटीजन चार्टर के माध्यम उदाहरण के लिये भारत में सामायिक है।

2.5 विकासशील देशों में विकास प्रशासन की भूमिका

जैसा की आजकल कहा जाता है कि विकास प्रशासन या विकास प्रबंधन की विकासशील देशों में भूमिका उन प्रशासकों की अन्त: इच्छाशक्ति एवं उत्साह पर निर्भर है जबकि जिनको राजनीतिक इच्छा शक्ति को यथार्थ कार्य संचालन में अनुवादित करने का जिम्मा सौंपा गया। विकास प्रशासन एक लक्ष्य को पाने का माध्यम और विकास प्रयास का एक हिस्सा है। यह विकास नीति का एक आन्तरिक भाग–25 इसके कार्य संचालन लक्ष्य को पूर्ण करने का है। विकासशील देशों में विकास प्रबंधन एक प्रक्रिया समितियां प्रयासों को संगठित करने की ताकि विशेष लक्ष्य जो राजनीति के प्रणाली या और अधिक सफलता सार्वजनिक और निजी भागीदारी के माध्यम चीजों को सम्पन्न कर सके, के विशेष लक्ष्यों को पूरा करना है। अच्छे प्रशासन या गुडगवर्नेश तथा विकास लक्ष्यों को पाने के प्रयास बनने की व्यूहरचना का अर्थ है राज्य के लिये एक बदलती हुई भूमिका और वाद विवाद कि राज्य की उपयुक्त भूमिका का जो जारी है। हमारे जैसे विकासशील देशों में सरकारी की अर्थव्यवस्था के माईक्रो प्रबंधन में अन्वेषण की एक तरफी परम्परा रही है। इस हस्तक्षेपों में वेतन निश्चित करना। इस पर निमन्त्रण विनिमय एवं विदेशी पूंजी नियोजन एवं लाभ पर पाबन्दी आदि समितियां है। सरकार एवं निजी क्षेत्र में जिन भागीदारी का एक नया अयाम है। लेकिन बिना उपयुक्त विकास प्रशासन के काई उपयुक्त विकास प्रशासन के कोई उपयुक्त विकास नहीं हो सकता है। विकास एवं गवर्नेन्स में योगदान करने है हटकर विकास प्रबंधन अपने में बदलाव के लिये एक रोडा रेजिस्न्स हो सकता है। यदि यह रूटिन या बने बनाये तरीके से कार्य करता है तो यह एक बाधा गठित कर सकता है। नौकरशाही– आक्रामकी।

विकास प्रशासन को वास्तव में शक्ति एवं महत्व इस तथ्य से मिलता है कि यह राज्य का एक आवश्यक अंग या आर्जन है। और राज्य ही सर्वप्रथम अर्थव्यवस्था का नियामिक रखने के लिये जिम्मेदार है। इजरायल एक योजना पर्यावरण की संरचना करने में राज्य को दायित्व का वर्णन करते है। वे कहते है कि यह निजीकरण एवं पब्लिक सरकार की गतिविधियों की लचीले में भी आवश्यकता बताता है। जो कि निजीकरण के क्षेत्र में आच्छद प्रतिस्पर्धा करता है। प्रतिस्पर्धा पर अंकुश को खत्म

करना, निमन्त्रण एवं लाइसेंस कार्यो को समाप्त करना और उन कार्यो का संचालन करने वाली सार्वजनिक एजेन्सियों को बन्द करना है। इसी प्रकार स्टीगालिज कहते है के इन सबके पीछे यह दायित्व है कि सरकार को चाहिये कि वह संस्थागत इन्फ्ररस्ट्रक्चर का ढांचा तैयार करें जिनकी बाजार को कुशलता के साथ काम करने में जरूरत है। न्यूनतम राज्य से इस संस्थागत ढांचे में शामिल हो प्रभावपूर्ण कानून और कानून संस्थाऐं जो उन कानूनों का क्रियान्वयन करे। यदि बाजार प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य करे तो ठीक प्रकार से स्थापित एवं स्पष्ट परिभाषाओं सम्पदा अधिकार होने चाहिये जिनको लागू करने की जरूरत है और बाजारों के लिये एक विश्वास होना चाहिये। जिनसे तात्पर्य है कि संविदाऐं क्रियान्वित हो और एन्टीपफाड कानून हो प्रभावपूर्ण तथा विस्तृत रूप से स्वीकृत व्यवहार की आचार संहिता होनी चाहिये।

राज्य एवं इसके क्रियाकलापों की निरन्तरता के लिये प्रशासन की एक प्रमुख तत्व है। यह शक्ति रोजमर्रा का चेहरा ही होता है जिनके साथ नागरिकों को व्यवहार करना होता है। एक निरन्तरता आधार पर साथ ही इसमें समाज की साधारण रूचि भी समाहित है। सार्वजनिक प्रशासन में एक बड़ा परिवर्तन यह है कि राज्य एवं समाज की सार्वजनिक सेवाऐं उपलब्ध कराने का जुड़ाव बढ रहा है। इस सरकार अपनी नीतियों के क्रियान्वयन में स्वायत्तशासी अभिनेता या एकटक नहीं है बल्कि निजी क्षेत्र एवं टराटियरी क्षेत्र पर निर्भर है अपने उद्देश्यों को सम्पन्न करने में सरकार एवं समाज के बीच यह लेकिन या जोड़ सरकार की प्रभावत्यापदकता एवं कानून संभाग में इजाफा कर सकती है। लेकिन यह सरकार को दायित्वों की समस्याओं एवं नियन्त्रण के साथ प्रस्तुत करती है।

इस विस्तार तक फैले विश्वास के नियमित बाजार अर्थव्यवस्था प्रणाली की नियमन की जरूरत को कम नहीं करती लेकिन इसकी जरूरत को बढाती भी है। नियमन निशुल्क महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है क्योंकि यह प्रतिस्पर्धा की विकृतियों को रोकता है और प्रमुखता की। स्थितियों के दुरूपयोग को रोकता है और समाज के कमजोर वर्गो की सुरक्षा करता है। कई उद्योगपति स्वयं राज्य का वित्तीय मदद पाने के लिये आह्वान करते है। राज्य की अग्रणी भूमिका होती है। जैसे कि मानव शक्ति प्रशिक्षण तथ्यों का नवीनीकरण लघु एवं मध्यम उद्योगों को बढ़ावा देने और निर्यात प्रोत्साहन करके जैसे क्षेत्रों में ये तो वे मामले है कि जिनसे राज्य वृद्धि एवं समानता में योगदान बन सकता है। राज्य सामाजिक आर्थिक लक्ष्यों का पीछा करने के अपने अधिकार को नहीं छोड सकते। इस सहित की गरीबी कम करने की प्रतिबद्धता समान अवसर सुनिश्चित करना और सामाजिक सेवाऐं उपलब्ध करवाना। सामाजिक नीति के पूर्ण रूपेण निजीकरण नहीं किया जा सकता। असमानताओं को प्रशासन या गर्वर्नेन्स के राजनीतिक आयामों का पेचीदा पक्ष है और यह राजनीतिक एवं सामाजिक संकटों को सुलझाने के प्रयास परिलक्षित करता है।

वेतन राज्य ही अवसर की समानता की गारन्टी दे सकता है। सामाजिक असमानताओं को दूर करने में भोग दे सकता है तथा स्वास्थ्य शिक्षा एवं आवास के क्षेत्र में कमजोर सुरक्षा एवं संरक्षण कर सकता है। संकट की स्थितियों में यह राज्य ही है जो बेरोजगारी को घटाने के लिये बहुत सीमा तक आवश्यक उपाय कर सकता है और ऐसी विस्फोटक स्थिति को जो आबादी के कुछ ही वर्गो की अपेक्षा करने एवं भारी गरीबी के विकास से उत्पन्न होती है, समाप्त कर सकता है। इसके अलावा यह राज्य की जिम्मेदारी होती है कि लोग अन्तर्राष्ट्रीय स्थानान्तरण पर नियन्त्रण रखे निर्देशियों को राष्ट्रीय समुदाय में एकीकृत रखें। अल्पसंख्यकों की सुरक्षा करें तथा पेचीदा बहुजातीय एवं बहुसंस्कृति समाज

में कानून व्यवस्था बनाये रखेंगे। इसके अतिरिक्त पर्यावरणीय संरक्षण संवर्द्धन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक बिशान्त का संरक्षण तथा शोध भी राज्य के दायित्व हो गये है।

निजीकरण के संदर्भ में राज्य द्वारों आवश्यक हस्तक्षेप सीमित होने चाहिये और यह हमारे समय की अहम समस्याओं में से एक है।

आजकल दो प्रमुख विचारक है। एक यह है कि राज्य की राज्य को नागरिकों की घरेलू आर्थिक गतिविधियों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। दूसरी यह है कि राज्य की भूमिका का वर्चस्व होता है। इन दिनों हर देश में इस बात की आवश्यकता है कि राज्य के मिशन की यह सुनिश्चित करने के लिये वे न तो बहुत अधिक इच्छाओं का एम्बिसियार हो और न ठीक ठाक मोडेस्ट है। समयावधि के साथ समय–समय पर समीक्षा किये जाने की आवश्यकता है।

इन मिशन्स को पूरा करते समय प्रशासन के महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पडती है न केवल स्टाफिज एवं बजहरी पूज निहाय से बल्कि सार्वजनिक नीतियों के जाल एवं क्रियान्वन में भी प्रक्रियाओं के दृष्टिकोण जैसे सार्वजनिक प्रशासन की प्रमुख गतिविधि एवं सम्बन्ध सरकार की कानून एवं नीति के क्रियान्वयन से होता है। लेकिन इन सार्वजनिक संगठनों में अन्य महत्वपूर्ण गतिविधियों की श्रृंखला का भी संचालन किया जाता है। इनमें से एक यह है कि नौकरशाही नीतियां बनाती है। विधायिका द्वारा जो कानून पारित किये जाते है वे बहुधा जनरल या साधारण होते हैं जिनको सुरक्षा विवरण प्रशासकों को देन की जरूरत पड़ती है। नौकरशाही द्वारा तैनात किये गये सैकण्ड्री कानून व केवल कानून के अर्थ को और आर्थिक स्पष्ट करते हैं बल्कि ये इस बात की अनुमति भी देते है कि विशेषता लाग करने के स्थिर प्रशासक आज ले।

सैकण्डरी कानून लिखने के अलावा प्रशासक नील पयों को भी प्रमाणित करते है राजनीतिज्ञों को जो कि कानून एवं नीतियां बनाने का दायित्व रखते है को सलाह देकर।

फिर भी सार्वजनिक प्रशासनिक की भूमिका के घेरे में क्योंकि राजनीतिज्ञों में नौकरशाही के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो गया है और वे अपने राजनीतिज्ञ दृष्टि से प्रतिबद्ध सलाहकारों से सलाह लेना चाहते है। इसलिये सार्वजनिक प्रशासन के महल को कम आंकना गलत होगा। सम्पूर्ण राष्ट्रीय सीमा में राज्य की निरन्तरता एवं इसकी सक्रियता के लिये प्रशासन एक प्रमुख तत्व है। यह हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि लोग सार्वजनिक सेवा के हृदय समान होते है और इसलिये मानव स्रोतों या संसाधनों को प्रबंधक करना सार्वजनिक प्रशासन के केन्द्र में लेना चाहिये।

सबसे ऊपर सार्वजनिक सेवाओं एक संरक्षणकर्ता एवं अनावश्यक सेवाऐं उपलब्ध कराने आलेख के रूप में और कार्यरत सरकार के कामों की प्रतीक होने के रूप में रिकवर करना चाहिये और अपना गौरव बनाये रखना चाहिये। सार्वजनिक सेवा न केवल राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जो परिवर्तन हो रहे है उनका प्रमुख होना चाहिये। बल्कि इसे प्रक्रिया मार्गदर्शन को अग्रिम पंक्ति में होना चाहिये। सहज करने में नवीनीकरण करके और प्रबंध करने के क्षेत्र में भी इसे आगे होना चाहिये।

केल्लर के अनुसार – सार्वजनिक प्रशासन को व्यवस्थित राजनीति में अपनी संवैधानिक भूमिका ग्रहण करनी चाहिये बिना प्रबंधन में अपने विशेषता इन में अन्य संवैधानिक कर्ताओं की जरूरत है।

किसी भी सरकार को ठीक कार्य सम्पादन करके योजना के सम्बन्ध में न केवल विकासशील देशों में बल्कि विकसित देशों की भी चिन्ता होती है। सरकार और इसको सार्वजनिक प्रशासन की समाज की आर्थिक गतिविधियों का सुगमता से संचालन करने सहायता करने में अहम भूमिका होती है। एक

गतिशील सभ्य समाज और एक व्यावसायिक हाई से प्रशिशक्ति तथा समर्पित सिविल सार्वजनिक राजनीतिक हस्तक्षेपों से सुरक्षित वे दो जुड़वा स्तम्भ है।

समसामयिक वैश्वीकरण के दौरे में सार्वजनिक प्रशासन को एक महत्वपूर्ण विशेष स्थान हो गया है। इस लक्ष्य के साथ कि प्रभारी आर्थिक सार्वभौमिकता के प्रयास हो, राष्ट्रीय संसाधनों एवं पर्यावरण पर विलय हो और यह सुनिश्चित करने के लिये यह कि निजी क्षेत्र द्वारा उनका उपयोग राष्ट्रीय लक्ष्यों के साथ समन्वयक बनाये रखते हुये किया जाये। हमारे देश के समग्र जो कि राष्ट्र निर्माण के स्तर पर है गर्वेन्नत का प्राथमिक लक्ष्य सम्पन्न संस्थाओं का आज राष्ट्रीय एकता के लिये एकीकरण हो ताकि राष्ट्रीय एकता को बल दिया जा सके।

2.6 सारांश

विकासशील देशों में विकास राजनीति का केन्द्र–बिन्दु है और लोगो की वर्तमान जरूरतें पूरी करते समय भविष्य के लिये प्रकृति की उत्पादकीय क्षमता का संरक्षण करना ही स्थायित्व वाले विकास के रूप को परिभाषित किया गया है। जिससे अपराधी विश्व समुदाय के सामने सबसे बडी चुनौती है। एक मिलियन से अधिक लोग अपनी गरीबी की इच्छा से जूझ रहे है। स्रोतों का संसाधनों तक पहुंच के अपयुक्त आधार के कारण पीड़ा भुगत रहे है। शिक्षा स्वास्थ्य सेवायें संरचनात्मक सुविधाऐं भूमि के श्रम की आवश्यकता है कि उन्हें बेहतर जीवन का मौका दे सकता है।

बढ़ते आर्थिक समानता राजनीति एवं इनसे भी बढ़कर पर्यावरणीय संकट की चुनौतियों विशेषकर विकासशील देशों के कारण कई सरकारों के सुधारों का दबाव अनुभव किया है और इस प्रकार की व्यूह रचना अख्तियार की है जो राज्य और बाजार में के बीच तथा राजनीति ओर प्रशासन के बीच कार्य संचार मापदंड एवं संसाधनों के डेलीमेशन विभाग के बीच, निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के बीच सम्पन्न प्रबंधन संस्कृति तथा सेवा की गुणवत्ता में सुधार लाने की आवश्यकता के बीच के सम्बन्धों को पुर्नराभाषित कर सकें।

ऐसी किसी भी कोशिश की सफलता या असफलता को सुनिश्चित करने वाला एक प्रमुख कारक सरकार की प्रशासनिक क्षमता है। विकास प्रशासन का तामुक्त सरकार की प्रशासन की क्षमता की प्रकृति में है जो कि विकास नीतियों के गठन में सहायता के लिये आवश्यक और नीतियों की योजना में कार्यक्रमों और परियोजनाओं का राष्ट्र की सामाजिक–आर्थिक प्रगति एवं अन्तर्राष्ट्रीय समन्वयक के लिये क्रियान्वयन में आवश्यक है।

संक्षेप में विकास प्रशासन अब बहुधा विकास प्रबंधन कहा जाने लगा है जो कि एक महत्वपूर्ण प्रयास है विकास की उपलब्धि के लिये। यह विकास प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है तथा इस कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। यह जानती होगी यदि विकास प्रशासन के महत्व को पूर्णतया नहीं पहचाना गया उनके द्वारा जो कि राष्ट्रीय विकास में समग्र है। जैसा कि सार्वजनिक प्रशासन समाज और राजनीति संस्थाओं के विशाल जल का एक हिस्सा है। देश में यह राष्ट्रीय अधिकांश एवं प्रशासकों के लिये अहम है कि वे विकास प्रशासन का विकास करने में इसे एक प्रमुख उपकरण के रूप में देखें चाहे विकास सामाजिक आर्थिक या राजनीतिक हो।

2.7 शब्दावली

विकास :– लोगों के कामकाज में सुधार लाने की विकास एक प्रक्रिया है। यह लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने के बारे में है, उनकी शिक्षा और स्वराज्य में सुधार लाने से संबंधित और यह भी है कि उनके लिये और अधिक समृद्ध एवं विविधता पूर्ण जीवन के लिये समान अफसरों का मार्ग प्रशस्त करने वाला है।

प्रशासनिक क्षमता :– यह बताया गया है कि यह प्रशासन की प्रशासनिक प्रणाली को इकट्ठी कर सके, आवंटित कर सकें और आयाम में जोड़ सके कार्यो को इच्छित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये।

सार्वजनिक नीति :– इसे एक उद्देश्यपूर्ण कार्यात्मक मार्ग बताया गया जो कि अख्तियार किया जाता है या अपनाया जाता है। उनके द्वारा जो पावर में है के लक्ष्यों की और उन्मुख रहते हुये।

2.8 अभ्यास प्रश्न

1. विकास प्रशासन की ऐतिहासिक प्रगति पर प्रकाश डालें
2. विकास प्रशासन के महत्व एवं भूमिका की चर्चा करें।
3. सार्वजनिक प्रशासन पर विकास प्रशासन के कुल विकास के प्रभाव की चर्चा कीजिए।

2.9 संदर्भ ग्रंथ

1. जोग एस जन " रिन्यूविंग दी स्टडी ऑफ कमोरेटीव एडमिनीस्ट्रेशन: सम रिपबल्किशन ऑन दी करन्ट फोर्स ब्लिटीज, पब्लिक एडमिनीस्ट्रेशन रिव्यू वोल्यूम–36 नं 6, 1976।
2. डेवलपमेन्ट एडमिनीस्ट्रेशन पर पहली पुस्तक का सम्पादन दूर्वीत्र स्वेईलो के डेवलपमेन्ट एडमिनीस्ट्रेशन कन्सेप्ट्स एण्ड प्रोब्लमस (साई रेव्न्यु एमवाई: साई रेव्न्यु यूनिवर्सटी प्रेस 1963)
3. मिल्टन प्रो. एसफेन एवं जोहन डी. मोन्टग्राफी सिस्टम एप्रोचेज दू टेक्नीकल ऑपरेशन: वी राल आफ डेवलपमेन्ट एडमिनीस्ट्रेशन। पब्लिक एडमिनीस्ट्रेशन रिव्यू वोल्यू नं– 6, 1969
4. डेवलपमेन्ट एडमिनीस्ट्रेशन करन्ट एप्रोचेज एण्ड टेण्डर इन पब्लिक एडमिनीस्ट्रेशन और नेशनल डेवलपमेन्ट यूनाईटेड नेशनस पब्लिकेशन सेल्स नं. ई–76 II एच
5. जोसेफ लाल में लोम्बला मुडी न्यूकोकिस एण्ड पोलिटिक्स डेवलपमेंट (प्रिन्स्टन, प्रिन्सटन यूनिवर्सटी प्रेस 1963)
6. एझ राफेली इजी रीडिंग इन चेयरेटिव पब्लिक एडमिनीस्ट्रेशन बोस्टन एलविन एण्ड बकेरा 1967. .

इकाई – 3

भारत में ग्रामीण विकास प्रशासन : एक परिदृश्य

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सामुदायिक विकास

3.3 पंचायती राज

3.4 सघन कृषि कार्यक्रम

3.5 विशेष कार्यक्रम

3.6 समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

3.6.1 नवीन प्रयास

3.7 प्रशासनिक संसाधन, जन सहभागिता, प्रशासनिक समस्याएं नीति एवं योजना

3.8 सारांश

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.10 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ्ने के बाद आप जान पायेंगे –

- भारत में सामुदायिक विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।
- भारत में पंचायती राज का उद्भव।
- सामुदायिक विकास से संबंधित विभिन्न कार्यक्रम।
- समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की रूपरेखा के बारे में।

3.1 प्रस्तावना

संविधान की प्रस्तावना ओर उसमें निहित राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की भावना के अनुरूप भारत सरकार' कल्याणकारी राज्य' के विचार को आगे बढाने हेतु कृत संकल्पित है। भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक विकास के समग्र प्रयत्न न्याय के साथ विकास के उद्देश्य से प्रेरित होने चाहिये। इन परिस्थितियों में विकास के समग्र प्रयत्न बहुद्देशीय एवं बहुक्षेत्रीय होने चाहिए ताकि आर्थिक प्रतियोगिता के इस युग में हमारा देश स्वावलम्बी बन सके। न्याय से हमारा तात्पर्य है कि हमारे लोगों के जीवन स्तर में किसी प्रकार की असमानता न रहे और इन्हें बेहतर जीवन के अवसर उपलब्ध हो सकें। भारतीय प्ररिप्रेक्ष्य में विकास के क्षेत्र में इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिये कि हमारी 80 प्रतिशत जनसंख्या 5,75,936 गांवों में निवास करती है। इसलिये भारत में ग्रामीण विकास क्षेत्र में न्याय के साथ विकास के दृष्टिकोण से गरीबी उन्मूलन और ग्रामीण समाज की पुर्नरचना पर ध्यान देना चाहिए।

भारत में ग्रामीण विकास के महत्व को कुछ तथ्यों द्वारा समझा सकता है। 28 वर्षों के नियोजित औद्योगिकरण (जिससे आज हम विश्व की 8 वीं बड़ी शक्ति बन गए हैं) के उपरांत भी 27 करोड़ 40 लाख लोग गरीबी रेखा के नीचे है और ग्रामीण नीचे हैं और ग्रामीण क्षेत्र में ही 2 करोड़ 55 लाख बेरोजगार हैं। इसके अलावा जनसंख्या का 79 प्रतिशत और श्रम शक्ति का 82 प्रतिशत भाग आज भी गांवो में रह रहा है और कार्य कर रहा है। अत: भारत में गरीबी और बेरोजगारी का उत्तर हमें ग्रामीण क्षेत्र में ही ढूंढना होगा।

भारतीय प्ररिप्रेक्ष्य में ग्रामीण विकास के द्वारा कमजोर वर्गो का जीवन स्तर सुधर रहा है। इन स्थितियों को ध्यान में रखते हुए छठे ड्राफ्ट प्लान में कहा गया है 'कृषि और ग्रामीण विकास का लक्ष्य सामाजिक न्याय के लिये विकास होगा, ग्रामीण क्षेत्रों में अगले 10 वर्षा में सम्पूर्ण रोजगार और गरीबी उन्मूलन का लक्ष्य रखा गया है।

ग्रामीण विकास का शहरी विकास का विरोधी नहीं मानकर एक दूसरे के पूरक और एक दूसरे पर निर्भर मानना होगा। बड़े और मध्यम दर्जे के उद्योगों का उत्पादन और साथ ही उच्च शिक्षा एवं अस्पताल जैसी सुविधाऐं शहर के आस–पास के ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकताऐ पूरी करेंगी।

योजना के प्रारंभ (1951–52) से ही ग्रामीण से ही पंचवर्षीय योजनाओं का महत्वपूर्ण एवं अभिन्न अंग रहा है। सभी राजनीतिक दलों एवं सरकारों ने इस पर विशेष ध्यान दिया है। आज भी राष्ट्रीय स्तर पर योजना निर्माण में ग्रामीण विकास को उच्च प्राथमिकता दी जाती है। इन समस्त योजनाओं का अधिकतम लाभ उद्योगपतियों तक पहुंच पाता है। शिक्षा के विस्तार और राजनैतिक जागरूकता के चलते ग्रामीण जन भी अब सार्वजनिक धन में अपना हिस्सा मांगने लगे है। सुनियोजित विकास के लंबे प्रयासों एवं उससे ग्रामीण क्षेत्रों में आये परिवर्तन के चलते ग्रामीण विकास की नीतियों में भी कई परिवर्तन आए है। बदलती हुई नीतियां और कार्यक्रम प्रशासकीय समस्याओं की ओर इशारा करने है और इनके समाधान की योजनाऐं तदनुरूप बनाई जाती है।

3.2 सामुदायिक विकास

ग्रामीण विकास के क्षेत्र में हमारा अनुभव विविधताओं से पूर्ण एवं विकासात्मक रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात और प्रथम पंचवर्षीय योजना के साथ सन् 1952 में ही भारत ने सुदृढ़ ग्रामीण विकास के उद्देश्य से कार्यक्रम प्रारंभ कर दिया। इसी समय बहुउद्देशीय सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) और नेशनल एक्सटेंशन सर्विस (1953) के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक विकास के लिये कदम उठाए।

इस कार्यक्रम के मुख्य बिन्दु इस प्रकार है:–

- एक एजेंसी के माध्यम से ही समस्त विकास योजनाएं चलाना।
- सरकारी अधिकारी स्वेच्छा से किसानों तक स्वयं जायें न कि किसानों का इन्तजार न करे।
- आम लोगों की भागीदारी बढ़ाई जाए क्योंकि वे ही अपनी आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को भली भांति निर्धारित कर सकते है।
- स्थानीय स्रोतों को नियोजित तरीके से उपयोग

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के सघन प्रयासों से ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के प्रति जागरूकता आई इससे समुदाय की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिये जन भागीदारी का महत्व लोगों को समझ में आया और लोगों को ग्रामीण विकास प्रशासन और पूर्व कालिक केन्द्रीय और राजस्व प्रशासन

का अन्तर स्पष्ट हुआ। इस कार्यक्रम में 399 सामुदायिक विकास ब्लॉक जिनका मुखिया ब्लॉक विकास अधिकारी था, बनाये गए। ये ग्रामीण विकास की प्राथमिक इकाई माने गये। आज इन ब्लाकों में उपलब्ध प्रशासकीय ढांचे की मदद से ही क्षेत्र में विकास कार्य हो रहे है।

3.3 पंचायती राज

ग्रामीण विकास में जन भागीदारी हेतु प्रभावी संस्थानिक उपयोग की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के कुछ ही वर्षों में महसूस किया गया कि इसमें जनता की सक्रिय भागीदारी का नितांत अभाव है और इसी कारण अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आ पा रहे है। दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–61) में इस बात पर जोर दिया गया कि प्रत्येक जिले में एक सुसंगठित लोकतांत्रिक प्रशासकीय ढांचा हो जिसमें ग्राम पंचायत में सन् 1957 में एक अध्ययन दल नियुक्त किया गया। इस दल ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम संस्थाऐं ग्राम, ब्लॉक और जिला स्तर पर स्थापित करने की सिफारिश की जिन्हें पंचायती राज संस्थाएं कहा गया। यह भी कहा गया कि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीयकरण की मूलभूत इकाई ब्लॉक समिति स्तर पर हो और जिला परिषद सलाह मशवरा का काम ही करें। इस रिपोर्ट के परिणाम स्वरूप सन् 1959 में विभिन्न राज्यों में अलग–अलग समय पर पंचायती राज की स्थापना की गई।

यद्यपि सामुदायिक विकास और पंचायती राज संस्थाओं ने कृषि के आधुनिकरण के बारे में जागरूकता लाने और ढांचागत विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया किन्तु कुछ समय बाद साठ के दशक में मध्य में अपनी शक्तियां खो दी। वे राजनीति के अखाड़े बन गई और सम्पन्न ग्रामीण हाथों का खिलौना बन गई। इसका प्रभाव यह हुआ कि ग्रामीण विकास के लाभ से वंचित हो गये। ऐसा राज्य स्तर के नेतृत्व की स्थानीय नेतृत्व के प्रति संवेदनहीनता के कारण हुआ। इसके अलावा विभागीय अधिकारियों की विभिन्न दलों के प्रति निष्ठा ने स्थानीय स्तर पर नीति–निर्धारण की व्यवस्था को चौपट कर दिया। कुछ मिलाकर कहा जा सकता है कि स्थानीय नेतृत्व के अतिराजनोतिकरण गुजरात को छोर अन्य राज्यों में अपनी उपयोगिता नष्ट कर दी।

पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली जानने, नियोजन एवं विकास की प्रक्रिया के विकेन्द्रीयकरण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सरकार ने सन् 1977 में श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में पंचायती राज संस्थाओं पर एक कमेटी गठित की। पंचायती राज संस्थाओं के बारे में कमेटी का कहना था - 1. राजनैतिक रूप से इसने भारत भूमि पर लोकतंत्र का बीज बोने का कार्य किया है। इससे आम नागरिक अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुआ है। प्रशासकीय रूप से इसने अफसर शाही और आम जनता के बीच की दूरी को कम किया है। सामाजिक सांस्कृतिक रूप से इसने एक नये युवा के नेतृत्व को जन्म दिया जो आधुनिक और सामाजिक परिवर्तन का पक्षधर है और अन्त में विकास की दृष्टि से इसे ग्रामीण लोगों में विकास की मन स्थिति उत्पन्न की। कमेटी ने चार स्तरीय व्यवस्था जिला परिषद, पंचायत समिति, मंडल पंचायत और ग्राम स्तरीय कमेटियों की सिफारिश की।

यह सोचा गया था कि जिला स्तर पर वे सभी कार्य जिन्हें राज्य सरकार नहीं करती वे जिला परिषद द्वारा किये जायेंगे और विकेन्द्रीयकरण का प्रथम केन्द्र जिला होगा और उससे आगे विकेन्द्रीयकरण हर राज्य की स्थिति पर निर्भर करेगा। मोटे तौर से जिला परिषद राज्य के विकेन्द्रीयकरण कार्यक्रमों को देखेगी और जिला स्तर पर योजना निर्माण करेगी जबकि मंडप पंचायत योजनाओं का क्रियान्वयन करेगी। जिला स्तर पर योजना निर्माण को बहुत महत्वपूर्ण माना गया। यह

सुझाव दिया गया कि पंचायती राज संस्थाऐं विभिन्न स्तरों पर कार्य निर्धारण करेंगी। योजना निर्माण ग्राम स्तर से शुरू होना चाहिए प्रत्येक जिले में एक जिला योजना प्रकोष्ठ होना चाहिए और राज्य शासन के पास प्रत्येक जिले की योजनाओं का अध्ययन करने के लिये संसाधन होने चाहिए।

3.4 सघन कृषि कार्यक्रम

कृषि उत्पादन से सामुदायिक विकास कार्यक्रम में प्राथमिकता दिये जाने के बावजूद पचास के दशक के उतरार्द्ध में खाद्यान्न की बड़ी समस्या उत्पन्न हो गई थी। देश को विदेशों से भारी मात्रा में ऊँची कीमतों पर खाद्यान्नों को आयात करना पड़ा और देश में मांग और आपूर्ति का अन्तर लगातार बढ़ने लगा। इस गंभीर समस्या के निपटने के लिये सरकार ने कृषि उत्पादन बढाने पर विशेष ध्यान देना शुरू किया। प्रारंभ में सिंचित क्षेत्र जिसमें आवश्यक प्राकृतिक संसाधन को, पर ध्यान देते हुए सन् 1960–61 में 15 चयनित जिलों में सघन कृषि जिला योजना प्रारंभ की गई। वह फोर्ड फाउण्डेशन के सौजन्य से गठित कृषि उत्पादन दल की सिफारिशों पर किया गया। सघन कृषि जिला योजना के अनुभव के आधार पर 1964 में सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम शुरू किया गया। इन कार्यक्रमों के मुख्य उद्देश्य थे 1. अधिक उत्पादन देने वाली फसलों पर विशेष ध्यान देना, 2. सिंचित और पर्याप्त वर्षा वाले क्षेत्रों में सघन कार्यक्रमों द्वारा उत्पादन का अधिकतम उपयोग करना, 3. कम समय वाली फसलों को प्रोत्साहित करना, और 4. सिंचाई क्षमता का प्रभावी उपयोग करना। इन कार्यक्रमों ने कृषि उत्पादन बढाने के उन्नत तरीकों को प्रोत्साहित किया, योजनाऐं बनाई और सामायिक और पर्याप्त सहयोग प्रदान किया। कृषि उत्पादन बढ़ाने की भिन्न रणनीतियों के रूप में एक अन्य कार्यक्रम अधिक उत्पादन वाली फसलों का कार्यक्रम भी (HYVP) भी साथ ही शुरू किया गया। परिणामस्वरूप हमने हरित क्रांति के अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। यद्यपि सघन कृषि विकास के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में निश्चय ही वृद्धि हुई इससे सामाजिक न्याय को जरूर आघात पहुंचा और ग्रामीण समाज में तनाव में वृद्धि हुई। इस समृद्धि से ग्रामीण धनवान और ग्रामीण के बीच का अन्तर और बढ गया। भू स्वामित्व के विद्यमान ढांचे में धनवान कृषक नई तकनीकी अपनाकर और धन का निवेश करके कृषि उत्पादन बढ़ाने लगे। जिससे वे और अधिक समृद्ध हुये जबकि छोटे कृषक उतना निवेश नहीं कर पाये और अपना उत्पादन संतोषजनक रूप से नहीं बढ़ा पाये है। विकसित क्षेत्रों में आय में अधिक वृद्धि हुई और लाभ का बड़ा हिस्सा बड़े किसानों तक पहुंचा जबकि छोटे और सीमांत कृषक उन्नति नहीं कर पाये। भूमिहीन श्रमिकों की दशा तो और खराब हो गई। ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक–आर्थिक संरचना के लिये यह घातक सिद्ध हुआ। अच्छे उत्पादन वाले क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देने के फलस्वरूप क्षेत्रीय असमानताऐं दृष्टिगोचर होने लगी।

3.5 विशेष कार्यक्रम

योजना प्रक्रिया में सामाजिक न्याय के साथ विकास के पक्ष में बदलाव के फलस्वरूप बहुत से लक्ष्य केन्द्रित कार्यक्रम क्षेत्र विकास और लक्ष्य समूह विकास आदि व चौथी और पांचवी योजना में कमजोर वर्गो के हित में बनाये गये। क्षेत्र के विकास कार्यक्रम में कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम, सूखा पीड़ित क्षेत्र कार्यक्रम पहाड़ी क्षेत्र विकास प्रोजेक्ट और आदिवासी विकास प्रोजेक्ट शामिल है। इसी प्रकार लक्ष्य समूह कार्यक्रमों में लघु कृषक विकास एजेंसी, सीमांत कृषक और कृषि श्रमिक विकास एजेंसी एवं समेकित आदिवासी विकास एजेंसी शामिल हैं। इन कार्यक्रमों के मुख्य बिन्दु निम्न प्रकार है : –

सूखा पीड़ित क्षेत्र कार्यक्रम

साठ के दशक में सघन कृषि कार्यक्रमों के प्रयास सिंचित क्षेत्रों तक ही सीमित रहे और सूखा पीड़ित क्षेत्रों पर ध्यान नही दिया गया। इस क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने के लिये 1970 – 71 में ग्रामीण कार्य कार्यक्रम प्रारंभ किया गया जिसमें पीड़ित क्षेत्रों को सूखा मुक्ता करने के प्रयास किये गये और यह कार्यक्रम एक क्षेत्र विकास कार्यक्रम एक क्षेत्र विकास कार्यक्रम सूखा पीड़ित क्षेत्र कार्यक्रम बन गया। इनकी संख्या थी और इनका विस्तार कई जिलों में था।

कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम

सिंचित क्षेत्रों में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विभिन्न परियोजनाओं के माध्यम से उपलब्ध जल स्रोतों के उपयोग का आधुनिकरण करने के उद्देश्य से सन् 1974 में यह कार्यक्रम शुरू किया गया। कुल 39 कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम 12 राज्यों के 102 जिलों में 50 सिंचाई परियोजनाओं को संचालित करते हैं।

पहाड़ी क्षेत्र विकास परियोजना

चूंकि प्रथम तीन योजनाओं के विकासात्मक प्रयास दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों के आर्थिक जीवन में कोई विशेष प्रभाव नहीं डाल पाये। चतुर्थ योजना में केन्द्र सरकार ने इन क्षेत्रों की कृषि और जीवन स्तर में समग्र विकास करने का निर्णय लिया और कुछ कदम उठाये। ये परियोजनाऐं पांचवी योजना में भी जारी रही।

समेकित आदिवासी विकास परियोजना

विशेष बहुउद्देशीय आदिवासी बालकों के साथ सन् 1954 में आदिवासी विकास कार्यक्रम शुरू किये गये। ये ब्लॉक बाद में आदिवासी विकास ब्लॉक कहलाये। सन् 1970–71 तक 464 ब्लॉक बन गये। जो लगभग 50 प्रतिशत आदिवासी आबादी में फैले थे। यह महसूस किया गया कि विकास कार्यक्रमों को लागू करने के लिहाज से ब्लॉक काफी छोटी इकाई है। अत: सन् 1971 –72 में विकास के लिये कुछ पायलट आदिवासी विकास एजेसियों को चुना गया। सन् 1975 से समस्त आदिवासी विकास ब्लाकों और आदिवासी विकास एजेंसियों को चुना गया। सन् 1975 से समस्त आदिवासी विकास ब्लॉकों और आदिवासी विकास एजेंसियों में सम्मिलित कर लिया गया। प्रत्येक परियोजना पर पांच वर्ष में 50 करोड़ रूपये खर्च करने का प्रावधान है।

आदिवासी विकार के बारे में छठी योजना की नीति भी पांचवी योजना की नीति की भांति ही है। वर्तमान में 180 समेकित आदिवासी विकास परियोजनाएं चल रही है। जिनका मुख्य उद्देश्य इन क्षेत्रों का संस्थागत विकास करना है।

लघु कृषक विकास एजेन्सी / सीमांत कृषक एवं कृषि श्रमिक विकास एजेन्सी

ऐसे लघु और सीमांत कृषक जिनके पास 1.5 हैक्टयेर से कम सिंचित क्षेत्र और 3 से 5 एकड़ तक असिंचित क्षेत्र है कि अर्थव्यवस्था सुधारने के लिये क्रेडिट रिव्यू कमेटी ने सन् 1969 में SFDA और MFALDA के निर्माण की सिफारिश की। ये दोनों एजेंसियां प्रारंभ में स्वतंत्र रूप से स्थापित की गई किन्तु बाद में पांचवी पंचवर्षीय योजना में दोनों को मिला दिया गया। एक एजेंसी से अपेक्षा थी कि वह चिन्हित लाभार्थियों के 50000 परिवारों को परियोजना अवधि में लाभ पहुंचायेगी। कुल मिलाकर 168 एजेंसियों जो 200 जिलों 1807 ब्लॉकों में फैली हैं वे 1 करोड़ 64 लाख परिवारों से संबंद्ध है और 3 दिसम्बर 1979 तक लगभग 76 लाख परिवार लाभान्वित हो चुके हैं।

3.6 समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

सन् 1976 में हुई 63 वीं विज्ञान कांग्रेस जिसमें ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिये विज्ञान के उपयोग पर जोर दिया गया के फलस्वरूप सरकार ने एक विस्तृत उत्पादन योजना बनाई। सन् 1976–77 में बजट पेश करते समय तत्कालीन वित्त मंत्री सी. सुब्रमण्यम ने आई आर डी योजना घोषित की। इसका उद्देश्य ग्रामीण विकास में तीव्रता लाना और उपलब्धता संसाधनों की मदद से ग्रामीण बेरोजगारी और गरीबी को कम करना था। समेकित ग्रामीण विकास के विचार को मूर्त रूप देने के लिये भारत सरकार ने प्रारंभ में IRD कार्यक्रमों के लिये 20 जिलों का चयन किया। हालांकि तकनीकी के अभाव में यह कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में गति नहीं कर पाया। इन IRD योजनाओं ने सामुदायिक विकास योजनाओं के निर्माण में भूमिका निभाई।

नवीन प्रयास

एक लंबे समय के प्रयोगों और अनुभवों से स्पष्ट हुआ कि केवल परियोजनाएं या कार्यक्रम बनाने मात्र से ही क्षेत्र का समुचित विकास और स्थानीय लोगों में लाभ का समुचित बटवारा संभव नहीं है। बेरोजगारी और गरीबी की मात्रा भिन्न है अत: छठी पंचवर्षीय योजना में विभिन्न योजनाओं के एकीकरण पर बल दिया गया। ताकि उपलब्ध स्थानीय संसाधनों और क्षमताओं का उपयोग करते हुये उचित दर पर पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराया जा सके। जिससे परिवार गरीबी रेखा से उपर उठ सके। इस प्रकार में शुरू की गई IRD अधिक विस्तृत और इसका लक्ष्य है सभी विभागों के आपसी सामजंस्य से एक निश्चित समय सीमा में कृषि और संबंधित क्षेत्रों जैसे पशुपालन, मछली पालन वानिकी आदि को विकारा करना साथ ही ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना ताकि ग्रामीण अर्थव्यवथा में सुधार लाया जा सके। पूर्व के कार्यक्रमों के लक्ष्य केन्द्रित थे ओर उनका लक्ष्य समूह में से निश्चित संख्या में कुछ लोगों तक लाभ पहुंचाया था। कार्यक्रम व्यक्ति तक लाभ पहुंचाने की कोशिश करते थे न कि परिवारों को। IRDP का उद्देश्य था व्यक्ति के साथ–साथ परिवार का आर्थिक स्तर ऊँचा उठाना। इस कार्यक्रम में भूमिहीन श्रमिकों, ग्रामीण हस्तशिल्पियों आदि को भी लाभान्वित करने का प्रावधान है। आईआरडी में निम्न के लिये प्रावधान है – व्यक्ति को लाभ पहुंचाना, आधारभूत सुविधाओं का विकास करना। पहले प्रकार में 20 बिन्दु थे जैसे व्यक्ति का विकास, बडे कार्य करना, कुओं के लिये अनुदान देना, भंडारण की व्यवस्था करना, सुधार पशुओं का उचित बंटवारा, फूलों की खेती, शहद निर्माण, चीनी मिट्टी के बर्तन बनाना, आदि प्रमुख हैं। दूसरे प्रकार की योजना में मिट्टी का संरक्षण, प्रशिक्षण देना IRDP में लचीलापन अधिक रखा गया है ताकि विभिन्न योजनाओं को अधिक उपयोगी तरीके से संचालित किया जा सके।

प्रारंभ में IRDP को 2000 ब्लॉकों में बदलाया गया जिनमें SFDA / DPAP और CAD जैसे एक या एक से अधिक विकास कार्यक्रम प्रारंभ किये गये। इसके बाद क्षेत्रीय योजनाओं और रोजगार को ध्यान में रखते हुये 300 ब्लॉकों में विकास कार्यक्रम प्रारंभ किये गये। लक्ष्य था कि प्रत्येक ब्लॉक में कम से कम 4000 परिवारों तक लाभ पहुंचाया जाये। जिससे उनका आर्थिक स्तर उंचा उठाया जा सके और उन्हें गरीबी रेखा के नीचे से ऊपर पहुंचाया जा सके। इस योजना में प्रतिवर्ष 300 ब्लॉकों का चयन किया जाना था। ताकि पांच वर्षो में 3500 ब्लॉकों तक पहुंचा जा सके। इसके पश्चात एक

निर्णय द्वारा SFDA और IRDP को मिला दिया गया। इसके बाद सन् 1980 में आईआरडीपी देश के कुल 5011 ब्लॉकों में शुरू हो गई। इस प्रकार योजना का लक्ष्य था गरीबी की रेखा के नीचे के परिवारों की पहचान कर उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करना। इसमें एक ब्लॉक में एक वर्ष में 600 परिवारों की मदद करने का लक्ष्य है और इस प्रकार पांच वर्षा में कम से कम 3000 परिवारों को लाभ पहुंचाने का लक्ष्य है।

1. काम के बदले अनाज की योजना :– IRDP पूर्ण बेरोजगारों पर विशेष ध्यान देती है । किसानों की एक बड़ी संख्या वर्ष में कुछ माह ही रोजगार कर पाती है एवं शेष समय बैरोजगार रहती है। सन् 1977 में बड़े पैमाने पर काम के बदले अनाज योजना प्रारंभ की गई। इसका उद्देश्य है 8 करोड़ लोगों के लिये रोजगार की व्यवस्था करना और उनके लिये उत्पादन के साधनों की व्यवस्था करना। यह रोजगार उत्पन्न करने की योजना है और इसमें अतिरिक्त खाद्यानों का पैसे की जगह दिया जा सकता है।
2. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना :– छठी पंचवर्षीय योजना में काम के बदले अनाज योजना पर पुर्नविचार किया गया और उसे एक नया काम राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना दिया गया। बुनियादी उद्वेश्य है:–
    1. अतिरिक्त लाभकारी रोजगार उत्पन्न कराना ताकि बेरोजगारों और अर्द्धबैरोजगारो (महिला व पुरूष दोनों) को रोजगार उपलब्ध कराया जा सके।
    2. ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं का सशक्तिकरण एवं विस्तार करना ताकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तीव्र सुधार हो सके और ग्रामीण गरीबों की आय में वृद्धि हो सके।
    3. ग्रामीणों के पोषण में और जीवन स्तर में सुधार।
3. ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण :– रोजगार के अवसरों में वृद्धि कुटीर उद्योगों, ग्रामीण और हस्तशिल्प उद्योगों को प्रोत्साहन देना आवश्यक है। ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रेरित एवं प्रशिक्षित करने हेतु गस्त 1979 में ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण योजना (ट्रायसोम) शुरू की गई। यह सोचा गया था कि एक वर्ष में दो लाख ग्रामीण युवाओं महिला पुरूष को देश के सभी ब्लाकों से चयनित कर प्रशिक्षित किया जायेगा। प्रत्येक ब्लॉक में लगभग 40 युवाओं को चयनित कर उन्हें स्वरोजगार का प्रशिक्षण दिया जायेगा। ताकि प्रशिक्षण समाप्ति पर वह अपना रोजगार शुरू कर सके। योजना में छात्रवृति प्रशिक्षण के दौरान खर्च और अनुदान के रूप में आर्थिक सहायता का भी प्रावधान है।
4. अन्तयोदय योजना :– अन्य प्रयास अन्तयोदय योजना है जो सन् 1979 में प्रारंभ की गई। इस योजना में गांव में कम से कम अत्यंत गरीब परिवारों का चयन कर उन्हें आर्थिक मदद होकर लाभकारी रोजगार प्रारंभ कराया जाने का प्रयास होता है। परिवार के कम एक व्यक्ति को रोजगार देकर परिवार को गरीबी रेखा से ऊपर लाने का प्रयास किया जाता है।
5. भू–सुधार :– IRDP के कार्यो में एक महत्वपूर्ण कार्य भू–सुधार की रणनीति बनाना था ताकि उसे अमल में लाकर भू संसाधनों का उचित वितरण किया जा सके। चूंकि यह कार्य अभी तक समाप्त नहीं हुआ है अतः छठी योजना में इस विशेष ध्यान दिया जा रहा है। ताकि भू सुधार का कार्य पूर्ण किया जाकर लोगों को लाभान्वित किया जा सके।

3.7 प्रशासनिक संसाधन, जन सहभागिता, प्रशासनिक समस्याऐं नीति एवं योजना

चूकिं IRDP देश के सभी ब्लॉकों तक फैली है एवं इसमें लक्ष्य समूह हजारों परिवारों को चिन्हित करना होता है एवं प्रत्येक ब्लॉक में इन परिवारों को मदद देने के लिये योजनाएं बनानी होती है। योजनाओं पर निगरानी रखनी होती है। योजना के क्रियान्वयन एवं उसकी प्रगति का ध्यान रखना होता है और साथ ही यह सुनिश्चित करना होता है कि लाभार्थियों को त्वरित एवं दीर्घाविधि के लिये लाभ पहुंचे ताकि वे गरीबी की रेखा से ऊपर उठ सके। इन समस्त कार्यो का प्रभावी ढंग से करने के लिये आवश्यक था कि राज्य जिला, ब्लॉक और ग्राम –स्तर पर प्रशासनिक संसाधनों का उचित एवं प्रभावी उपयोग हो सके। इसके लिये प्रस्ताव किया गया कि राज्य स्तर पर आयुक्त के पद का वरिष्ठ अधिकारी इन समस्त IRDP का प्रभारी होगा। जिला स्तर पर जिला कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर चेयरमेन होंगे और ब्लॉक स्तर पर BDO एक्सटेंशन ऑफिसर आदि होंगे।

IRDP की सफलता सक्रिय जन सहभागिता और स्वैच्छिक संगठनों के योगदान पर निर्भर करती है। सरकारी मशीनरी का कार्य योजना निर्माण, क्रियान्वयन, प्रगति का लेखा जोखा रखना और उसका मूल्यांकन करना है।

3.8 सारांश

स्वतंत्रता के बाद से ही पंचवर्षीय योजनाओं एवं विभिन्न कमेटियों और आयोगों ने लोगों की भागीदारी पर विशेष जोर दिया और इसलिये ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में जनसहभागिता का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जानकारी स्वेच्छा और क्षमता जन सहभागिता के लिये आवश्यक है। तीन दशकों की लोकतंत्रीय राजनैतिक व्यवस्था और लोगों के संघर्ष ग्रामीणों में जागृति आई है। पंचायती राज में जनसहभागिता अभिन्न अंग है एवं पंचायती राज की विभिन्न विकास कार्यक्रमों को लागू करने में अपनी भूमिका है।

ग्रामीण विकास के प्रशासन में विभिन्न जटिल समस्याओं का सामना कराना होता है। ये समस्याऐं विभिन्न स्तरों पर जैसे संगठन स्तर पर प्रबंधन के स्तर पर और सामंजस्य के स्तर पर होती है।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. भारत में सामुदायिक विकास की पृष्ठभूमि के बारे में एक लेख लिखिए।
2. पंचायती राज व्यवस्था की समीक्षा कीजिए।
3. विभिन्न सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की समीक्षा कीजिए।
4. समेकित विकास कार्यक्रम की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. देसाई, वसन्त : पंचायती राज, हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1990
2. मिश्रा, बी. एन. : 'रूरल डवलपमेंट', कुरूक्षेत्र, मार्च, 1991

3. हीरवे, इन्द्रा : 'पंचायती राज एट ग्रास रूट ' इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, जुलाई, 1989
4. मेहता, बी. आर. : कमेटी रिपोर्ट ऑन प्लान प्रोजेक्ट, प्लानिंग कमीशन, नई दिल्ली, वो. 1, 1959

इकाई 4

भारत में पंचायती राज और ग्रामीण विकास

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीयकरण की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि
4.3 पंचायती राज संस्थाओं की सीमाएं
4.4 ग्रामीण विकास ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
4.5 पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास
4.6 सारांश
4.7 अभ्यास प्रश्न
4.8 संदर्भ ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पाएंगे –

– लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण के बारे में।
– पंचायती राज संस्थाओं की स्थिति के बारे में।
– विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के बारे में।
– ग्रामीण विकास में पंचायती राज की भूमिका के बारे में।

4.1 प्रस्तावना

भारत में पंचायती राज शुरू करने के पीछे मूलभूत अवधारणा यह थी कि स्थानीय स्तर पर भी लोकतंत्र की स्थापना हो सके जिससे लोग लोकतंत्रीय प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी निभा सकें। अन्यथा लोकतंत्र राज्य स्तर पर विधान सभा एवं राष्ट्रीय स्तर पर संसद के रूप में ही होता और स्थानीय स्तर पर लोकतंत्र नहीं होता और प्रशासक वर्ग ही भाग्य–विधाता होता। यह महसूस किया गया कि यदि लोगों को भागीदारी बनाना है तो उन्हें विभिन्न संस्थाओं और विकास योजनाओं में भी भागीदार बनाना होगा। लोकतन्त्र आम लोगों तक ले जाने का यही एक रास्ता है। वास्तव में सच्चे लोकतंत्र में लोगों का विकास योजनाओं में भागीदारी का अवसर मिलना ही चाहिए। उस समय अवधारणा यही थी की नीति–निर्धारण आम लोगों के करीब हो न कि थोपा हु आ।

पंचायती राज का लक्ष्य निचले स्तर पर लोकतंत्र की स्थापना करना था ताकि लोगों में ग्राम स्तर पर भागीदारी की भावना विकसित हो सके। जैसा कि महात्मा गाँधी ने कहा था ' 'लोकतंत्र में राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का विकेन्द्रीयकरण आवश्यक है क्योंकि गिउने–चुने शक्ति के केन्द्र विशाल जनमानस की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते हैं। यदि भारत को विकास करना है तो शक्तियों और जिम्मेदारियों में सभी की साझेदारी होनी चाहिए।"

हमारे गरीबी हटाने और ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों की असफलता इसी सत्य को उजागर करती है। ये सभी कार्यक्रम उच्च शिखर पर बैठे कुछ व्यक्तियों द्वारा बनाये गये थे और इन्हें निचले स्तर पर लोगों की भागीदारी के बिना ही लागू किया गया था। इस प्रकार ये कार्यक्रम लोगों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को संतुष्ट करने में विफल रहे।

4.2 लोकतंत्रीय विकेन्द्रीयकरण की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

जब महात्मा गांधी को पता चला कि संविधान के पहले मसौदे में पंचायती राज का जिक्र नहीं है तो उन्होंने पुनरीक्षित मसौदे में उसे शामिल करने का प्रस्ताव किया क्योंकि यह उनके सपनों के भारत के निर्माण का आवश्यक घटक था जिसमें आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीयकरण निहित था ताकि हर गांव आर्थिक रूप से स्वावलंबी बन सके। वे चाहते थे कि लोगों की भावनाएं पंचायतों द्वारा अभिव्यक्त हो और इसलिये वे सोचते थे कि पंचायतों को जितने अधिक अधिकार दिये जायेंगे आमजन के लिये उतना ही अच्छा होगा। राज्य के नीति–निदेशक तत्वों में शामिल अनुच्छेद 40 में कहा गया कि ' राज्य गांवो में पंचायतों की स्थापना हेतु कदम उठाएगा और उन्हें ऐसी शक्तियां ओर आधार देगा जो उन्हें स्व–शासन इकाई के रूप में स्थापित करेंगे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सन् 1952 में आम आदमी की भागीदारी सुनिश्चित करते हुये सामुदायिक विकास की योजना प्रारंभ की गई। इसके बारे में माना जाता था कि यह गांवों को सामाजिक व आर्थिक रूप से सुदृढ़ करेगी। किन्तु यह योजना लाभार्थियों एवं उनके प्रतिनिधियों की निर्माण एवं क्रियान्वित में अल्प भागीदारी के चलते सफल नहीं हो पाई। यह महसूस किया गया कि सामुदायिक विकास योजना जब तक लोगों की योजना नहीं बनती तब तक यह अर्थहीन ही रहेगी। यह सोचा गया कि अधिकारी मात्र दिशा–निर्देश देंगे और आवश्यक तकनीकी ज्ञान उपलब्ध कराऐंगे।

जनवरी 1957 में सामुदायिक विकास योजनाओं और राष्ट्रीय एक्सटेंशन सेवा के अध्ययन के लिये बलवंत राय मेहता कमेटी नियुक्त की गई। इस अध्ययन दल ने दो महत्वपूर्ण बाते कहीं (1) विकास योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के लिये प्रशासन का विकेन्द्रीयकरण होना चाहिये। (2) विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक ढांचा चुने हुये प्रतिनिधि या संस्थाओं के अधीन होना चाहिये।

कमेटी ने यह भी महसूस किया कि विकास की जिम्मेदारी और शक्ति के बिना आगे नहीं बढ़ सकता। सामुदायिक विकास तभी संभव है जब समुदाय अपनी समस्याओं को समझे, साथ ही अपनी जिम्मेदारियों को समझकर आवश्यक शक्तियों का उपयोग अपने चुने हुये प्रतिनिधियों के माध्यम से करें। इस उद्देश्य के साथ कमेटी ने संवैधानिक रूप से चुने हुये स्थानीय निकायों की स्थापना कर उन्हें आवश्यक शक्तियां एवं अधिकार देने की सिफारिश की। कमेटी ने पंचायती राज को शासन की विकास योजनाओं में लोगों और उनके प्रतिनिधियों की भागीदारी का माध्यम माना। इस प्रकार 'कमेटी ने पंचायती राज को स्थानीय सहयोग प्राप्त स्थानीय नेतृत्व और सरकार को जोड़ने वाली कड़ी बताया।

मेहता कमेटी द्वारा प्रस्तावित त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली को सर्वप्रथम सन् 1959 में राजस्थान एवं आंध्रप्रदेश में लागू किया गया। इसके बाद लगभग सभी राज्यों ने राज्य के नीति–निदेशक तत्व के रूप में पंचायती राज प्रणाली को अपनाया। विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में विभिन्न नियमों के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं का गठन किया गया।

पंचायती राज प्रणाली की मूल अवधारणा है 'विकास की योजनाओं में लोगो की भागीदारी।' आरंभ में यह सोचा गया था कि वे परिवर्तन और विकास के मार्ग की बाधाऐं दूर करेंगी किन्तु कुछ

समय बाद विभिन्न राज्य स्तरीय कमेटियों एवं अध्ययनों से यह पता चला कि पंचायती राज प्रणाली में कई कमियां है। इसके बाद सन् 1978 में विभिन्न राज्यों में पंचायती राज प्रणाली की कार्यशैली। का अध्ययन करने एवं अपनी सिफारिशें देने के लिये अशोक मेहता कमेटी गठित की गई।

अशोक मेहता कमेटी ने अनुभव किया कि पंचायती राज प्रणाली मात्र शक्तियों के विकेन्द्रीयकरण और जन–भागीदारी के लिये नहीं बल्कि ग्रामीण विकास एवं सूक्ष्म स्तर पर योजन निर्माण के लिये भी है। इसलिये कमेटी चाहती थी कि पंचायती राज संस्थाऐं कृषि, वानिकी, गृह उद्योग, कल्याणकारी गतिविधियों आदि जैसे विकास कार्यो में भी अपनी भागीदारी सुनिश्चित करें।

विभिन्न गरीबी–हटाओ योजनाओं और District Rural Development Agencies (DRDAs) और निचले स्तर पर अन्य संस्थाओं की स्थापना के साथ ही पंचायती राज प्रणाली और विकास योजनाओं एवं प्रशासन के बीच सामंजस्य की आवश्यकता महसूस की गई।

ग्रामोण विकास एवं गरीबी उन्मूलन के लिये प्रशासनिक व्यवस्थाओं पर पुनर्विचार हेतु गठित जी.वीके राव कमेटी (1985) ने एवं जिला योजना पर विचार हेतु गठित हनुमंत राव कमेटी (1963) ने भी अपनी सिफारिशें भेजी। उदाहरण के लिये जी.वी.के. राव कमेटी ने जिला परिषद एवं जिला स्तरीय योजनाओं को सुदृढ़ करने के लिये सिफारिशें दी और साथ ही निचले स्तर पर एवं ब्लॉक स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं के साथ मिलकर योजनाऐं बनाने के लिये सिफारिश की सन् 1986–87 में सिंघवी कमेटी ने पंचायती राज की परिकल्पना एवं विचारधारा प्रस्तुत की। इस कमेटी ने पंचायतों को ग्रामीण विकास योजनाओं के क्रियान्वयन की और अधिक जिम्मेदारी देने की सिफारिश की। कमेटी ने यह सिफारिश भी कि थी कि छोटे ग्राम–समूहों की पंचायतो को और अधिक प्रभावी बनाया जाना चाहिये। कमेटी ने जी.वी.के. राव कमेटी की इस सिफारिश का भी समर्थन किया कि प्रशासकीय ढांचे को पंचायती राज संस्थाओं की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना चाहिये। सिंघवी कमेटी और अशोक मेहता कमेटी ने इस हेतु संविधान में बदलाव करने का भी सुझाव दिया।

4.3 पंचायती राज संस्थाओं की सीमाएं

वास्तव में पंचायती राज के विचार में इतने वर्षो में कुछ परिवर्तन जरूर आये हैं। यद्यपि शुरूआत में इसे एक संकीर्ण विचार माना गया किन्तु इसका विस्तार ग्रामीण विकास से लेकर आर्थिक योजना निर्माण तक पहुंच गया है। किन्तु इसकी भी कुछ सीमाएं है :-

1. वर्तमान व्यवस्था में इसे विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाओं के लिये योजना निर्माण एवं क्रियान्वयन हेतु गठित संस्था के रूप में नहीं जाना जाता
2. कमजोर वर्गो को पंचायती राज संस्थाओं में किस प्रकार की भागीदारी दी जाये यह भी स्पष्ट नहीं है।
3. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों, विशेषकर गरीबी उन्नमूलन कार्यक्रम, में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका स्पष्ट नहीं है।
4. साथ ही यह ग्रामीण क्षेत्रों के प्रशासन, ढांचागत विकास और सामाजिक–आर्थिक कल्याण में भी समर्थ नहीं है।

5. शक्ति के विकेन्द्रीयकरण का कार्य भी स्पष्ट नहीं है। हाल के वर्षो में यद्यपि शक्ति के विकेन्द्रीयकरण, पंचायती राज संस्थाओं को शक्ति सम्पन्न बनाने की बातें तो बहुत होती है, किन्तु हम देखते हैं कि केन्द्रीय योजनाओं की संख्या और आकार दोनों लगातार बढ़ रहे हैं।

विगत अनुभव

पंचायती राज संस्थाओं का पिछला अनुभव आर्थिक विपन्नता एवं ध्यान दिया जाना ही रहा है। पिछले चार दशकों से अस्तित्व में होने के बावजूद भी पंचायती राज संस्थाओ को स्वशासन की इकाई के रूप में मान्यता नहीं मिल पाई है। पंचायती राज संस्थाओं के धीमे विकास के कुछ कारण है :–

निश्चित अवधि में नियमित चुनाव का अभाव, लंबे समय से ही समझा जाना, विभिन्न राज्यों में ढांचागत, शक्तिगत एवं कार्यगत भिन्नताऐं, कमजोर वर्गो, विशेषकर अ.जा., अ.ज.जा. पिछड़े वर्गो एवं महिलाओं की अपर्याप्त भागीदारी, शक्तियों का अभाव, आर्थिक स्रोतों की कमी और राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी। चूंकि पंचायती राज संस्थाऐं जनशक्ति का बड़ा केन्द्र बन सकती है अब अफसरशाहों और नेताओं ने इससे खतरा महसूस किया और उन्होंने पंचायती राज संस्थाओं को कम से कम अधिकार देना श्रेयस्कर समझा।

4.4 ग्रामीण विकास कार्यक्रम : ऐतिहासिक पृप्रेक्ष्य:

स्वतंत्र भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत अक्दूबर सन् 1952 में हुई। इस छोटी शुरूआत के लक्ष्य बड़े ही महत्वकांक्षी थे। इस कार्यक्रम की शुरूआत लोगों की सोच को परिवर्तित करने, उनमें स्वावलम्बन की भावना का विकास करने और सार्वजनिक संस्थाओं के साथ सहयोग की भावना का विकास करने के उद्देश्य से हुई। नेशनल एक्सटेंशन सर्विस (NES) अक्दूबर 1953 में पूरे देश में विकास योजनाओं में मदद करने के उद्देश्य से लागू की गई थी । कई आलोचनाओं के बावजूद सामुदायिक विकास कार्यक्रमों ने ग्रामीण भारत के आर्थिक और सामाजिक विकास में अपना अल्प किन्तु महत्वपूर्ण योगदान दिया।

विस्तृत कार्यक्षेत्र :–

ग्रामीण विकास के तीन सोपान है। ग्रामीण विकास के प्रथम सोपान में कॉपरेटिव ग्रामीण प्रबंधक, सामुदायिक विकास, बिचौलियो का उन्मूलन, भू–सुधार, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण, कृषि में निवेश को बढ़ावा, सिंचाई उद्योग आदि सम्मिलित हैं। इन विकास गतिविधियों से उम्मीद की जाती थी कि ये ग्रामीण परिदृश्य को परिवर्तित करेंगी और लोगों को कृषि के अलावा अन्य व्यवसायों की और प्रेरित करेंगी ताकि कृषि पर जनसंख्या का भार कम हो सके। किन्तु इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ। जबकि समग्र अर्थव्यवस्था में जरूर कुछ सुधार हुआ।

द्वितीय सोपान में कृषि में नई तकनीकी का समावेश किया गया। इससे उत्पादन जरूर बड़ा किन्तु ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। चतुर्थ योजना (1969–74) की शुरूआत से ही लघु कृषक विकास एजेन्सी (SEDA), सीमांत कृषक और कृषि श्रमिक एजेन्सी (MEAL) और सूखा प्रभावित क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP) आदि के माध्यम से गरीबी उन्नमूलन के प्रयास शुरू किये गये। पांचवी योजना 1974–79 में अल्पतम आवश्यकता कार्यक्रम द्वारा गरीबों के जीवन स्तर में सुधारने की कोशिश की गई।

चूंकि इन सबसे ग्रामीण क्षेत्रों में कोई महत्वपूर्ण सुधार नहीं हुआ, छठी योजना व 980–65 में कई महत्वपूर्ण गरीबी उन्नमूलन कार्यक्रम शामिल किये गये जो कि सातवीं योजना 1985–90 के दौरान भी जारी रहे। इन कार्यक्रमों के महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार है :–

1. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी योजना के माध्यम से ब्लॉक स्तर पर रोजगार की योजनाऐं बनाना।
2. समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम द्वारा लघु कृषक विकास एजेन्सी, सीमांत कृषक श्रमिक एजेन्सी आदि का आकार और कार्यक्षेत्र बढाया गया। इनका लक्ष्य था विभिन्न कार्यक्रमों में वास्तविक सामंजस्य स्थापित करना।
3. अल्पमत आवश्यकता कार्यक्रम का पुनरीक्षण किया गया।
4. पहाड़ी और जंगली क्षेत्रों एवं अन्य पिछड़े क्षेत्रों हेतु विशेष कार्यक्रम बनाये गये।
5. भूमि–सुधार के क्षेत्र में कार्य किया गया एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली को और प्रभावी बनाया गया।

एक अन्य ग्रामीण विकास की योजना जिसने सभी का ध्यान आकर्षित किया है। वह जवाहर रोजगार योजना है। इसका उद्देश्य था ग्रामीण क्षेत्रों में बैरोजगार एवं अर्ध बैरोजगार लोगों को लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना। इस योजना का प्रयास है कि गरीबी रेखा के नीचे प्रत्येक परिवार में कम से कम एक व्यक्ति को संपूर्ण रोजगार उपलब्ध कराना।

अक्ट्रबर 1993 में रोजगार आश्वासन योजना (EAS) के माध्यम से 261 जिलों 2470 ग्रामीण गरीब ब्लाकों के लोगों को रोजगार का आश्वासन दिया गया। इस योजना का उद्देश्य था कि कृषि कमजोर होने पर कम से कम 100 दिन का रोजगार मिल सके। इस योजना का 40.30 लाख लोगों ने लाभ उठाया और 481 करोड़ मानव–दिवस उत्पन्न किये गए।

पढ़े लिखे युवकों के लिये ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में प्रधानमंत्री रोजगार योजना लागू की गई। इसका उद्देश्य है कि पढ़े लिखे बेराजगार लोग स्वयं का कोई लघु उद्योग शुरू कर सकें।

किन्तु दुर्भाग्य से ग्रामीण विकास के कार्यक्रम लोगों को योजना निर्माण एवं क्रियान्वयन में भागीदारी नहीं बना पाए। यह अनुभव किया गया कि जन–योजनाऐं होने के बावजूद सामुदायिक विकास योजना एवं अन्य कार्यक्रम शासन के कार्यक्रम ही बनकर रह गये जिनमें अलग–अलग मात्रा में जन भागीदारी शामिल थी। पंचायती जन संस्थाऐं भी इन कार्यक्रमों के लिये जन समर्थन एवं सहयोग जुटा पाने में कमजोर एवं अप्रभावी सिद्ध हुई है।

विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाओं का अनुभव बताता है कि मात्र प्रोजेक्ट बनाने से किसी क्षेत्र का समग्र विकास संभव नहीं है और यह लोगों तक विशेषकर समाज के कमजोर वर्गो तक लाभ पहुंचाने में सक्षम नहीं है। बेराजगारी और गरीबी तथा कृषि क्रिास की स्थिति विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न हैं। देश में विभिन्न क्षेत्र विकास के विभिन्न स्तरों पर हैं और उनकी विकास करने की क्षमता भी भिन्न–भिन्न है। अब विभिन्न क्षेत्रों के लिए विभिन्न कार्यक्रम बनाए जाने की भी आवश्यकता है और विकास, सामाजिक रोजगार के लिये स्थानीय क्षमताओं का उपयोग भी किया जाना चाहिये। इसलिये अब विभिन्न कार्यक्रमों में सामजस्य की आवश्यकता है ताकि योजना के उद्देश्यों स्थानीय आवश्यकताओं और पर्यावरणीय संतुलन के अनुसार क्षमताओं का उचित उपयोग किया जा सके।

यद्यपि विकास हुआ है लेकिन उसका लाभ अभी भी ग्रामीण भारत के प्रत्येक परिवार तक नहीं पहुंचा है। अभी भी एक बड़ी संख्या ग्रामीण गरीबों एवं भूमिहीन श्रमिकों की है जिनके लिये रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने एवं आय के स्रोत उत्पन्न करने की महत्ती आवश्यकता है ताकि वे गरीबी रेखा से ऊपर उठ सके। यद्यपि विगत वर्षा में शासन ने उपलब्ध संसाधनों की मदद से इस विशाल समस्या को हल करने की कोशिश की है किन्तु अभी भी ग्रामीण गरीबी को हटाने के लिये अधिक प्रभावी और कारगर ग्रामीण सेवाओं की आवश्यकता है।

इसके अलावा अनुभव बताता है कि सरकार के प्रयासों से ग्रामीण गरीबी कुछ कम हुई है। किन्तु जन भागीदारी ओर पर्याप्त सुसंगठित सांस्थानिक सहयोग के अभाव से विभिन्न कार्यक्रमों के अच्छे परिणाम सामने नहीं आ पाये है। इसलिये ऐसे प्रयास किये गये कि इन विशेष योजनाओं का लाभ वास्तविक गरीबों तक पहुंच सके। उदाहरण के लिये कमजोर वर्गो के लोगों को विकास के प्रयासों में प्राथमिकता दी गई ताकि समाज के कमजोर वर्गो तक योजनाबद्ध निवेश का लाभ पहुंच सके।

4.5 पंचायती राज और ग्रामीण विकास

पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास का महत्वपूर्ण कार्य दिया गया है। उनका हमारे लोकतंत्र में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। नयी पंचायती राज प्रणाली के दो मुख्य उद्देश्य है: पहला है सबसे निचले स्तर पर लोकतंत्रीय ढांचे का विकास, और दूसरा है ग्रामीणों का सामाजिक आर्थिक उत्थान। मुख्य उद्देश्य है ग्रामीणों का सामाजिक आर्थिक विकास और उनकी भागीदारी द्वारा उनका जीवन स्तर ऊँचा उठाने का प्रयास। हमने देखा है कि भूतकाल में पंचायती राज संस्थाओं की उपलब्धियां किसी 'प्रकार प्रभावी एवं संतोषजनक नहीं रही हैं।

संविधान के 73 वें संविधान 1992 में एक नई बात सामने आई है – पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के सशक्त माध्यम के रूप में सफल होना चाहिये।

आठवीं योजना के द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से आर्थिक विकास किया जाना है। इस योजना में ग्रामीण विकास को बहुत महत्व दिया गया है। और इसे पंचायतीराज संस्थाओ को पर्याप्त धन और शक्तियां देकर निचले स्तर की संस्थाओं एवं आम लोगों की योजना निर्माण एवं क्रियान्वयन में भागीदारी के साथ सफल बनाने की अपेक्षा की गई है। चूंकि पंचायती राज संस्थाऐं प्रभावी क्रियान्वयन के लिये योग्य हैं अत: क्रियान्वयन का स्तर भी सुधरने की आशा है।

निचले स्तर पर लोगों की भागीदारी को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। ताकि उनके माध्यम से लोगों की आशानुरूप आर्थिक विकास दिया जा सके। यह भी सुनिश्चित किया जा सके कि लाभ वास्तव में सबसे निचले स्तर तक पहुंचे।

संविधान की ग्यारवीं अनुसूची में 29 ऐसे विषय है जिनकी योजना निर्माण और क्रियान्व्यन का कार्य पंचायती राज संस्थाओं को दिया जाना चाहिये। ये सभी कार्य स्थानीय महत्व के है। जैसे पेयजल, कृषि, भूमि एवं जल संरक्षण, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, परिवार कल्याण, पुस्तकालय, सांस्कृतिक गतिविधियां आदि।

4.6 सारांश

संविधान के 73वें संशोधन द्वारा पूरे देश में एक नयी पंचायती राज प्रणाली लागू की गई है। इसका प्राथमिक उद्देश्य है विकेन्द्रीयकरण को बढ़ावा एवं शक्तियों का पुनर्विभाजन। इसका लक्ष्य

है त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं को जिम्मेदारियां देकर उन्हें स्थानीय समर्थन के साथ वास्तविक निर्णय का केन्द्र बनाना।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि पंचायती राज संस्थाऐं वे प्राथमिक संस्थाऐं है जिनके माध्यम से गांव, ब्लॉक, और जिले के लोग लोकतंत्र में सक्रिय भागीदारी निभा सके। शक्तियों का विभाजन यहां से प्रारंभ होना चाहिए क्योंकि यहीं से लोग विकास की मुख्यधारा से जुड़ सकते है। पंचायती राज संस्थाऐ, विशेषकर ग्राम सभा प्रत्यक्ष लोकतंत्र की नींव है। ग्राम सभा एक ऐसा साधन है जहां, विकास पर चर्चा हो सकती है, विकास कार्यक्रम प्रारंभ किये जा सकते है, और विकास की योजनाओं के लाभार्थियों का चयन किया जा सकता है। आर्थिक उदारीकरण के चलते पंचायती राज संस्थाओं की उपयोगिता और बढ़ जाती है। वास्तव में वे योजना क्रियान्वयन और रोजगार उत्पन्न करने संबंधी योजनाओं पर नियंत्रण रख सकेंगी। इस प्रकार पंचायती राज संस्थाऐ ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक–आर्थिक विकास की दर को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाऐगी।

ऐसी आशा की जाती है कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण एवं स्वशासन के त्रिस्तरीय ढांचे की मदद से ग्रामीण विकास और कल्याणकारी योजनाऐं आगे बढ़ेगी जैसा कि 73 वें संविधान संशोधन की मंशा है। पंचायती राज संस्थाओं को और अधिक शक्तियां देने के लिये केन्द्र सरकार राज्य सरकारों के साथ लगातार प्रयास कर रहा है। इसके साथ ही ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिये केन्द्रीय मदद में भी लगातार वृद्धि हो रही है। सातवीं योजना में यह राशि 11000 करोड़ रूपये थी जबकि आठवीं योजना में यह राशि बढाकर 30000 करोड़ रूपये कर दी गई है।

4.7 अभ्यास प्रश्न

1. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमी की विवेचना कीजिए।
2. पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली का उल्लेख कीजिए।
3. विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की समीक्षा कीजिए।

4.8 संदर्भ ग्रंथ

1. देसाई, वसन्त : पंचायती राज, हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1990
2. मिश्रा, बी. एन. : 'रूरल डवलपमेंट', कुरूक्षेत्र, मार्च, 1991
3. हीरवे, इन्द्रा : 'पंचायती राज एट ग्रास रूट', इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, जुलाई, 1989
4. मेहता, बी. आर. : कमेटी रिपोर्ट ऑन प्लान प्रोजेक्ट, प्लानिंग कमीशन, नई दिल्ली, वो. 1, 1959

इकाई – 5

विकास प्रबंधन में नागरिक सहभागिता

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भारत के विकास का दर्शन

5.2.1 प्रतिभागी विकास के लिये भारतीय कार्यप्रणाली: संस्थानिक नवाचार

5.2.2 गांधी आन्दोलन

5.2.3 सामुदायिक विकास कार्यक्रम

5.3 पंचायती राज संस्थाएं

5.4 73 वां संविधान संशोधन अधिनियम 1993

5.5 नई माँगें गैर सरकारी कार्यक्रम सहभागी विकास के सक्रिय कार्यकर्त्ता

5.6 सारांश

5.7 अभ्यास प्रश्न

5.8 संदर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे

– भारत में विकास के प्रति दृष्टिकोण।

– पंचायत राज की विकास में भूमिका।

– 73 वां संविधान संशोधन द्वारा विकास का प्रवाह

– गैर सरकारी संगठनों की विकास में भूमिका।

5.1 प्रस्तावना

विकास की प्रक्रिया में सामुदायिक सहभागिता स्वाभाविक है। यद्यपि 1950 व 1960 के दशकों में अनेक विकासशील देशों ने विकास की केन्द्रस्थ अवधारणा को अपनाया तथापि यह केन्द्रस्थ नीतियां असफल रही। विकास योजनाओं का लाभ न पहुंचने के कारण विकास की केन्द्रस्थ प्रणाली के कारण की गई। 1970 के दशक में अनेक विकासशील देशों में विकास में जन सहभागिता बढ़ाने के लिये अनेक संस्थानिक उपायों के साथ–साथ विभिन्न, राजनीतिक, प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण कार्यक्रम चलाये गये।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत के संविधान निर्माताओं ने जो राजनीतिक व्यूह रचना बनाई वो हालांकि संघीय प्रकृति की थी किन्तु उसका झुकाव केन्द्रीयकरण की ओर ही था। उस समय की अलगाववादी ताकतों से निपटने के लिये यह आवश्यक था ताकि आर्थिक विकास का एक समान स्वरूप बनाया जा सके। किन्तु यह जानते हुये कि देश के सम्पूर्ण विकास के लिये समान नीतियां बनाने से लाभ नहीं है संविधान निर्माताओं ने नीति नियामक सिद्धान्तों के जरिये, ग्राम, पंचायत व्यवस्था लागू

करने का प्रयास किया ताकि निर्णय लेने की प्रक्रिया में जमीन से जुड़े लोगों को भी शामिल किया जा सके।

इस इकाई में विकास में नागरिक सहभागिता के सिद्धान्तों व विशेषताओं की चर्चा की जायेगी। साथ ही संस्थानिक नवाचारों की भी चर्चा की जायेगी। साथ ही इसी उद्देश्य के लिये भारत में अपनाये गये संस्थानिक नवाचारों की भी चर्चा की जायेगी। आशा है भारत के अनुभव विकास की प्रक्रिया में नागरिक सहभागिता की व्यूहरचना विकसित होगी जिसे विभिन्न विकासशील देशों में लागू किया जा सकेगा।

5.2 भारत में विकास का दर्शन

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के प्रभाव में विकसित विकास के दर्शन में सहभागिता को विशेष महत्व दिया गया। वास्तव में स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख नेताओं ने इसके स्वाभाविक मूल्यों तथा निमित्त नियमों को पहचाना। (जोशी 1988) सहभागिता दर्शन के मूलभूत पक्ष को महात्मा गांधी ने इस प्रकार समझाया ' रचना कार्य में मानव सबसे अद्भुत मशीन है तथा तकनीकी मानव की सेवा करे न कि उसका मालिक बनें। " (जोशी 1988 में उद्दत) सहभागिता दृष्टिकोण के पक्ष में गांधी का सर्वश्रेष्ठ वक्तव्य यह है कि लोग जुड़े है और राज्य फल। नीचे के पायदानों पर स्थित आम जनता को कुचलने वाले ऊपर वाले वर्ग अपना स्थान छोड़े तथा केन्द्र पर बैठे 20 आदमियों से वास्तविक प्रजातंत्र कार्य नहीं कर सकता। यह तो नीचे के स्तर पर प्रत्येक गांव के लोगों द्वारा ही कार्य कर सकेगी।

उपनिवेशकाल से प्राप्त भारत की शासकीय व्यवस्था विकेन्द्रीयकरण ही थी। बाद में केन्द्र तथा राज्यों में प्रजातांत्रिक रूप से चुनी हुई सरकारें राज्यों से संतुलन केन्द्रीयकरण की ओर ही झुक गया। किन्तु दशकों का अनुभव यह साबित करता है कि केन्द्रीकृत योजना सफल नहीं है इस दौरान जन राजनीतिकरण से यह मांग उठने लगी है कि सरकार व योजना में विकेन्द्रीयकरण होना चाहिये।

5.2.1 प्रतिभागी विकास के लिये भारतीय कार्यप्रणाली: संस्थानिक नवाचार

भारत में विकास व राष्ट्र निर्माण में नागरिक सहभागिता से कई समस्याऐं उत्पन्न हो गई है। अब विभिन्न स्तरों पर प्रशासन तथा नागरिकों के बीच कई संस्थाऐं बनानी पड़ गई हैं। विकास में नागरिक सहभागिता के लिये बेहतर जनसंचार सुविधाओं की आवश्यकता है। तभी विकास के लिये उत्तरदायी सरकारी अभिकरण आम जनता तक पहुंच सकता है और विभिन्न क्षेत्रों में ग्रामीण शहरी विकास के बारे में उनके विचार जान सकता है।

1959 में भारत में शहरी विकास कार्यक्रम शुरू किया। इसका उद्देश्य ग्रामीण शहरी झोपड़–पट्टी वासियों का जीवन सामाजिक–आर्थिक रूप से सुधारना था। इसे जन कार्यक्रम की संज्ञा दी गई और इसमें स्थानीय अधिकारियों के साथ लोगों की सहभागिता भी थी। (जेनग्रड 1 985: 31–53)

पता चलता है कि सरकारी कार्यक्रम में भी नागरिक सहभागिता सफल हो सकती है। यदि इसमें शामिल लोग सामाजिक और राजनीतिक कार्यो के लिये प्रतिबद्ध हो। ये अध्ययन मानते है कि शहरी विकास के गरीब लोग ही सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक व आर्थिक संसाधन है। भौतिक सुधार, समाज सेवाऐं तथा जनसहभागिता के बीच व्यवस्था सम्बन्ध बनाने की दिशा में शहरी समुदाय विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

चूंकि स्वतंत्रता के समय भारत प्रमुखत: कृषि समाज था, विकास का अर्थ ग्रामीण समाज या ग्रामीण भारत का विकास था। यद्यपि शहरी तथा औद्योगिक संसाधनों के विकास की भी आवश्यकता थी। अत: भारत में विकास में नागरिक सहभागिता पर चर्चा शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित अधिक है। स्वतंत्रता के बाद से ही प्रतिभागी विकास के विभिन्न अनुभव भारत में लिये गये है। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाओं का ढांचा खड़ा किया गया है। इसको अतिरिक्त विकास कार्यो में सहयोग के लिये सरकारी निकायों, सरकार द्वारा प्रायोजित विकास अभिकरण तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रोत्साहन के लिये भी संसाधन उपलब्ध है।

5.2.2 गांधी आन्दोलन

स्वतंत्रता से पूर्व महात्मा गांधी ने पहले ही लोगों के स्वैच्छिक प्रयासों से ग्रामीण विकास के रचनात्मक कार्य शुरू कर दिये थे। उन्होंने आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के प्रयोग किये। उनकी दृष्टि में ऐसा समाज स्व–प्रेरित व अहिंसक होगा। तथा समुदाय का हिस्सा होते हुये भी व्यक्तिगत को अधिकतम स्वतंत्रता उपलब्ध होगी। छोटा समुदाय बडे समुदाय से जुड़ा होगा और अन्ततः सभी वृहद् समुदाय का हिस्सा होंगे। (ग्रेनग्रेड, 1990:11)।

ग्रामीण विकास के संबंध में गांधी मानते थे कि सामाजिक व राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण होना चाहिये। उनका विश्वास था कि सरकार की मूलभूत व प्रभावशाली इकाई के रूप में पंचायती राज कार्य करेगा और इस प्रकार शहरी व ग्रामीण शक्ति असंतुलन दूर हो सकेगा। गांधी जी स्वयं सेवकों की मदद से ग्रामीण समाज का पूर्ण आदर्श पुन निर्माण चाहते थे। राजनीतिक शक्ति के विकेन्द्रीकण के गांधी मॉडल को पंचायती राज संस्थाओं ने अपनाया। इन संस्थाओं को द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–61) से शुरू किया गया था।

5.2.3 सामुदायिक विकास कार्यक्रम

ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक परिवर्तन लाने के उद्देश्यों से 1952 में देशभर में वृहद सामुदायिक विकास के कार्यक्रम शुरू किये गये। यह कार्यक्रम 1948 में उत्तर प्रदेश में एलर्ट मेअरज इटावा परियोजना तथा 1950 में तत्कालीन पंजाब अब हरियाणा में एस के डेयज नीलोखेरी परियोजना में किये गये प्रयासों से प्रेरित था।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम देशभर में 1952 में शुरू हुआ। प्रारंभ में इसमें 55 परियोजनाओं थी। जिसका 27,388 गांवों के 64 लाख लोगों को फायदा हुआ। किन्तु शीघ्र ही यह महसूस किया गया कि यह कार्यक्रम पूरे देश में लागू किया जाना चाहिये। अत: 2 अक्टूबर 1933 को राष्ट्रीय विस्तार सेवा नामक एक सघन कार्यक्रम शुरू किया गया। इन कार्यक्रमों की इस प्रकार व्याख्या की गई ये समग्र ग्रामीण विकास कार्यक्रम है जिनका उद्देश्य सरकार द्वारा प्रदत्त मूलभूत संसाधन सुविधाओं के माध्यम से ग्रामीण लोगों को बेहतर जीवन जीने को प्रोत्साहित करना तथा भौतिक विकास करना है।

विश्वास था, कि जैसे ही यह कार्यक्रम आगे बढ़ेगा और ग्रामीण लोग इसे स्वीकार करने लगेंगे, यह सरकार प्रेरित कार्यक्रम से स्वयं प्रेरित कार्यक्रम बन जायेगा। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के लक्ष्य इस प्रकार के थे

1. बागवानी, पशुपालन, मत्स्य पालन आदि कृषि कार्यो में वैज्ञानिक तरीके लागू करके रोजगार व उत्पादन बढ़ाना।

2. आत्मनिर्भरता व परस्पर सहयोग की भावना प्रबल करना।
3. गांव, देहात में उपलब्ध अपार अनुपयोगी समय व ऊर्जा समुदाय के लाभार्थ उपयोग करना।

यह माना गया कि मूलभूत संसाधन सुविधायें तथा तकनीकी ज्ञान के उपलब्ध कराये में सक्षम प्रशासनिक तन्त्र के माध्यम से गांवों में वांछित परिवर्तन लाये जा सकेंगे। इससे ग्रामीण समाज की उत्पादन क्षमता बढ़ेगी, आर्थिक समृद्धि आयेगी तथा गरीबी व सामाजिक–आर्थिक असमानताऐं कम होंगी। यह उम्मीदें पूरी न हो सकीं क्योंकि इस लक्ष्य की उपेक्षा की गई कि जातियों में बंटे, ऊँच–नीच संस्कारों से भरे समाज में प्रजातन्त्र धर्मनिरपेक्षता ओर समाजवाद के मूल्यों पर आधारित एक नई सामाजिक व्यवस्था इतनी आसानी से नहीं लाई जा सकती। पहले लोगों की युगों पुरानी मान्यताओं को हटाना होगा और समाज के सामाजिक आर्थिक ढांचे को पुन: व्यवस्थित करना होगा।

वास्तव में एक तरफ केन्द्रीकृत योजना दूसरी तरफ संसदीय शासन व्यवस्था होने से भारतीय राजनीतिक परिवेश में परस्पर विरोधी स्थितियां उत्पन्न हो गई थी। केन्द्रीकृत योजना व जनसहभागिता दोनों एक साथ नहीं चल सकते। यदि विकास के लक्ष्य केन्द्रीकृत योजना द्वारा पूर्व में कर लिये जाते हैं तो संगठन आधारित राजनीतिक दल के अभाव में नौकरशाही की भूमिका केवल यह रह जाती है कि वह लोगो को लामबंद करें। सहभागिता तो मात्र एक छलावा बनकर रह जाती है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इसे पूर्णत: प्रशासनिक कार्य समझा गया। अफसरों का कार्य मात्र लक्ष्य प्राप्त करना रह गया। आर्थिक कार्यक्रमों से उत्पन्न सामाजिक प्रक्रिया के प्रति वे जरा भी संवेदनशील नहीं रहते। नागरिक सहभागिता की जगह नौकरशाही लामबंदी ने ले ली जिसका एक मात्र उद्देश्य विकास के लक्ष्यों को हासिल करना हैं। लोगों की आवश्यकताओं से इसका कोई सरोकार नहीं रहा। इसके अतिरिक्त लक्ष्यों के आकार को देखते हुये मानव तथा भौत्क्रि संसाधन भी अपर्याप्त थे। सामुदायिक विकास में भौतिक संसाधनों के लिये सरकार पर निर्भरता था।

इन कमियों के बावजूद सामुदायिक विकास कार्यक्रम ने कुछ हद तक ग्रामीण समाज को सजग तो किया है। पहली बार लोग सरकार के नजदीक लोग कृषि विकास के क्षेत्र में भी कई विचारों व तकनीकी से परिचित हुये। साथ ही यह जागरूकता भी आई कि सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जा रही सुविधायें सबके हित में काम में ली जा सकती है। यदि सबकी उन तक पहुंच हो।

5.3 पंचायती राज संस्थाएँ

दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–61) के दौरान राष्ट्रीय विकास परिषद ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम व राष्ट्रीय विस्तार सेवा की समीक्षा करने के लिये योजना–परियोजनाओ पर एक समिति का गठन किया। (बलवन्त राय मेहता समिति) समिति की सिफारिशें विकास में जनसहभागिता के प्रायोगिक दौर की शुरूआत की और इशारा करती है। इसे प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया कहा गया।

बलवन्तराय मेहता समिति की प्रमुख सिफारिश स्थानीय विकास के लिये उत्तरदायी ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की त्रिस्तरीय व्यवस्था की स्थापना की। भारत में 2 अक्टूबर 1959 को पंचायती राज व्यवस्था लागू करने वाला देश का प्रथम राज्य था। बाद में आध्रप्रदेश, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात व मध्यप्रदेश ने भी इसका अनुसरण किया। पंचायती राज दो अलग–अलग मॉडल के थे। या तो समितियों ग्राम समूह को अधिक अधिकार दिये गये या जिला परिषद को। 1970 तक लगभग देश के सभी हिस्सों में पंचायती राज लागू कर दिया गया था। यह एक प्रयोग था जिसमें राष्ट्र पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में शामिल हो सकता था।

भारत के लगभग सभी राज्यों में लगभग चार दशकों से पंचायती राज संस्थाऐं कार्य कर रही है। किन्तु सभी में ढांचागत विभिन्नताऐं हैं। कहीं निर्णय लेने के स्तर पर, कहीं संसाधन आवंटन क्रियान्वयन के स्तर पर, कहीं कर्मचारी भर्ती, प्रशिक्षण या स्वायत्तता के स्तर पर अन्तर है। इस व्यवस्था की कार्यप्रणाली पर अनेक सर्वे व अनुसंधान हुए है। इनका निष्कर्ष वहीं है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में जनसाधारण की सहभागिता सीमित ही है। सरकारी अफसरों व गैर सरकारी कार्यकर्ताओं के बीच वैचारिक आदान–प्रदान सुगम नहीं है। सभ्रान्त वर्ग के प्रभुत्व की समस्या है, राजनीतिक दबाव है तथा विकास लक्ष्य प्राप्त न हो सके।

गुजरात, महाराष्ट्र व कर्नाटक जैसे राज्यों में जो पंचायत राज संस्थाओं ने मजबूती से कार्य किया है जबकि अन्य राज्यों में विभिन्न कारणों से ये संस्थाऐं अधिक प्रभाव नहीं डाल सकी। इसके प्रमुख कारण है चुनाव स्थगित होना, अपर्याप्त भौतिक व मानव संसाधन, सरकारी अधिकारियों व राजनीतिक नेताओं के बीच तनाव, और विकास कार्यक्रमों में जन सहभागिता का अभाव जो इस व्यवस्था की मूल आवश्यकता है।

1977 में सत्ता आई जनता सरकार में अशोक मेहता समिति का गठन किया। पंचायती राज संस्थाओं की विभिन्न स्तरों पर समीक्षा करते हुये समिति ने पाया कि यह व्यवस्था तीनों पक्षों से गुजर चुकी है– आरोही पक्ष (1959–64) स्थिर पक्ष (1965–69 और पतन पक्ष (1969–77)। पंचायती राज अवधारणा में जान फूंकने के लिये समिति ने कुछ ढांचागत परिवर्तन सुझाये। किन्तु 1980 में जनता सरकार के पतन के बाद इन सुझावों को ठण्डे बस्ते में डाल दिया गया। किन्तु इस बात में संशय है कि अशोक मेहता समिति द्वारा प्रस्तावित संशोधनों से राज्य तथा नागरिक समाज के बीच संबंधो में कुछ प्रभाव पड़ता। इस बात का एहसास जरूरी है कि शक्ति के विकेन्द्रीकरण का अर्थ है. पंचायती राज संस्थाओं का सांगठनिक व प्रबंधकीय क्षमता मात्र नहीं है। इसमें शहरी सांस्कृतिक समस्याओं का हल पहले आवश्यक है। 1980 से 1989 तक राजीव गांधी सरकार द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देकर उनमें जान डालना प्रस्तावित किया गया थ। किन्तु उससे पहले पंचायती राज संस्थाऐ अधर झूल में ही थी।

मई 1989 में राजीव गांधी सरकार ने 64 वां संविधान संशोधन विधेयक संसद में प्रस्तुत किया। इसमें गांवों में चुने गए स्थानीय निकायों को संवैधानिक दर्जा दिया गया।

मध्यवर्ती तथा जिला स्तर पर यह विधेयक लोकसभा में तो पारित हो गया किन्तु अक्टूबर 1989 में दो तिहाई बहुमत प्राप्त नहीं कर सका। केवल दो वोटों की कमी रह गई। विरोध करने वालों का कहना था कि इस विधयेक के अनुसार अभी भी केन्द्र सरकार पंचायती राज संस्थाओं पर हावी है। जबकि स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार पंचायती राज व्यवस्था में राज्य सरकारों को भी स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिये।

5.4 73वां, संविधान संशोधन अधिनियम 1993

पंचायती राज संस्थाओं में सहभागिता बढाने तथा विकास सम्बन्धी निर्णय लेने में विकेन्द्रीकरण सुनिश्चित करने के लिये नरसिम्हा राव सरकार ने 73 वां व 74 वां संविधान संशोधन अधिनियम दिसम्बर 1992 में पारित किया जो 24 अप्रैल 1993 से प्रभावी हुआ। इन अधिकारियों के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं तथा शहरी स्थानीय निकायों को संवैधानिक दर्जा दिया गया और गांव, मध्यवर्ती

व जिला स्तर पर बनाना अनिवार्य किया गया। इसके बाद राज्य विधानसभाओं से अपेक्षा थी कि वे आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय के लिये योजना बनायें व अधिकार आवंटित करें। अधिकांश राज्यों ने नई पंचायती राज संस्थाऐं गठित करने सम्बन्धी कानून पारित करवा लिये है। उन्होंने चुनी हुई पंचायती राज संस्थाओं की अवधि पांच वर्ष सुनिश्चित करते हुये उनमें अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति व महिलाओं के लिये आरक्षण का प्रावधान भी रखा है। चुनाव पर नियन्त्रण अधिकार राज्य निर्वाचन आयोग को दिया है तथा अंकेक्षण के अधिकार महालेखाकार व नियन्त्रक को दिये है। इसके साथ ही प्रत्येक पांच वर्ष के लिये राज्य वित्त आयोग के गठन का भी प्रावधान रखा गया है जो पंचायतों के हित की समीक्षा करेंगे और पंचायती राज संस्थाओं को कर–आवंटन के सिद्धांतों की सिफारिश भी करेगा।

पंचायती राज अधिनियम के परिणामस्वरूप सीधे चुने गये प्रतिनिधियों वाली स्थानीय स्व–शासन संस्थाओं की संख्या जिला स्तर पर 500, ब्लॉक स्तर पर 5000 व ग्राम स्तर पर 22500 तक पहुंच गई।

जिला स्तरीय पंचायत के अन्तर्गत लगभग 10–20 लाख की जनसंख्या आती है। मध्यवर्ती स्तर पर यह संख्या लगभग 80–200000 होती है तथा ग्राम पंचायत में लगभग 1500–8000 की जनसंख्या हो सकती है। प्रत्येक राज्य में यह स्थिति थोड़ी भिन्न–भिन्न हो सकती है।

अधिनियम के अनुसार 2 करोड़ से अधिक की जनसंख्या वाले राज्यों के लिये त्रिस्तरीय स्थानीय स्वशासन संस्थाओं का गठन अनिवार्य होगा। छोटे राज्यों के पास यह विकल्प होगा कि वे मध्यवर्ती पंचायत का प्रावधान न रखें। अधिनियम के अनुसार सभी स्तरों पर पंचायत सदस्यों के सीधे चुनाव होंगे। मध्यवर्ती तथा जिला स्तर पर पंचायत अध्यक्ष का चुनाव चुने हुये प्रतिनिधियों द्वारा परोक्ष रूप से किया जायेगा।

73 वें संविधान संशोधन अधिनियम के परिणामस्वरूप भारत के लगभग सभी राज्यों ने ग्रामीण भारत में विकास प्रबन्धन में नागरिक सहभागिता के लिये प्राथमिक संस्थागत ढांचे के रूप में पंचायती राज संस्थाओं के नये स्वरूप को ग्रहण कर लिया है। विभिन्न राज्यों में ऐसे कानून बनने के बाद निचले स्तर पर नागरिक सहभागिता विशेषत: महिलाओं की बढ़ी है। राज्य द्वारा किये जा रहे विकास कार्यो के प्रति जागरूकता बढ़ी है।

1970 के दशक के शुरू में सरकार द्वारा अनेक ग्रामीण विकास कार्यक्रम शुरू किये गये ताकि एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई आर डी पी) तथा गरीबी उन्मूलन योजना के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों के विभिन्न योजना के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों के विभिन्न लक्ष्य के समूहों की मांगो को पूरा किया जा सके। इन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :-

1. वृत खण्ड कार्यक्रम
2. रोजगारोन्मुखी कार्यक्रम
3. क्षेत्रीय कार्यक्रम
4. लक्ष्य समूहोन्मुखी कार्यक्रम

वृतखण्ड कार्यक्रम किसानोन्मुखी कार्यक्रम थे जिनका लक्ष्य बेहतर तकनीकी के माध्यम से सघन कृषि विकास था। रोजगारोन्मुखी कार्यक्रमों को दो वर्गो में बांटा जा सकता था– लक्ष्य समूहोन्मुखी योजनाये जैसे :– लघु किसान विकास अभिकरण (एस एफ डी ए) सीमान्त किसान व कृषि मजदूर (एम

एफ ए एल), जनजातीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (टी ए डी पी), पहाड़ी क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम (एच एडी पी), मरू विकास कार्यक्रम (डीडीपी) व महिला विकास कार्यक्रम (डब्लू डीपी)। इसके अतिरिक्त कुछ सतत् रोजगार आम योजनाऐं है जैसे :– ग्रामीण श्रम कार्यक्रम, क्रेश योजनाऐं, अग्रगामी सघन ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, रोजगार गारंटी योजना, काम के बदले अनाज योजना तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम। बाद में शहरी क्षेत्रों में स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराने व ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक परिवार में कम से कम एक सदस्य को लाभकारी रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से ग्रामीण भूमिहीन रोजगार कार्यक्रम (आरएलई जीपी) तथा शिक्षित बेरोजगार युवाओं को स्वरोजगार कार्यक्रम (एसएलईईयूवाई) शुरू किये गये।

स्वरोजगार के लिये ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण (ट्राईसम) कार्यक्रम भी प्रत्येक वर्ष लगभग 2,00,000 युवाओं को स्वरोजगार के लिये तैयार करता है। किन्तु अधिकांश ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम लघु अवधि के होते है और गरीबी या बेरोजगारी से स्थायी निजात नहीं देते है तथा मजदूरी भी कम ही मिलती है। अत: ये सभी अनुदान आधारित योजनायें काम चालऊ हैं।

पिछड़ा क्षेत्र विकास कार्यक्रम, कमांड एरिया विकास कार्यक्रम, पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम, मरू विकास कार्यक्रम जनजातीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम जैसे कार्यक्रम क्षेत्रीय कार्यक्रमों में शामिल है। जबकि एसएफडीए, एमएफएएल व ईआरआरजी (ग्रामीण गरीब का पुर्नवास) ये सभी लक्ष्य समूहोन्मुखी कार्यक्रमों में शामिल है। सएफडीए, एमएफएएल के अन्तर्गत लक्ष्य समूहों को नगद ऋण दिये गये जबकि न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम तथा ईआरआरपी में गरीबों को मूलभूत आवश्यकताऐ तथा रोटी, कपडा, आश्रय, स्वास्थ्य, शिक्षा, जल तथा स्वच्छता प्रबंध उपलब्ध कराये गये। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम संसाधनों की समस्या के कारण कम प्रभावी रहे है। अन्त्योदय / ईआरआरपी प्रत्येक ब्लाक में सबसे गरीब परिवारों की पहचान करके उन्हें सस्ती ब्याज दरों पर आम बैंकिंग योजनाओं से लाभ पहुंचाता है। किन्तु सभी कार्यक्रमों की मुख्य समस्या यह है कि उपर्युक्त पात्रों की सही पहचान नहीं हो पाती।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के एक गहन समीक्षात्मक अध्ययन ने बताया है कि इनमें से कोई भी कार्यक्रम न तो गरीबी दूर कर सका है और न ही ग्रामीण असमानता। इन लक्ष्यों के लिये अपनाये गये तरीके ही दोषपूर्ण है तथा प्रतिनिधि अपनाये गये तरीके ही दोषपूर्ण है तथा प्रतिनिधि निकाय भी औपनिवेशिक मानसिकता से प्रशासनिक कार्य करती है। लोगों का स्थान राज्य नौकरशाही ने ले लिया है। जिसके विकास व प्रजातन्त्र पर गंभीर परिणाम होंगे।

सहकारिता आर्थिक सहभागिता के लिये संस्थागत प्रवर्तन

यद्यपि भारत में सहकारिता आंदोलन 20 वीं सदी के प्रारंभिक काल में शुरू हुआ तथापि प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951 –56) में माना गया कि, सभी कृषक परिवार बहुउद्देशीय ग्राम सहकारी के सदस्य बने जायेंगे। तीसरी पंचवर्षीय योजना के बाद 1961 –66 सहकारी 1982 व 1963 क्रमश: राष्ट्रीय सहकारी विकास 1965 तक सहकारी ने भूमि विकास, सिंचाई, कुंओं व पम्पसेट के लिये एक तिहाई लघु मध्यम व दीर्घावधि ऋण दिये। 1972 में अनेक बहुउद्देश्य कृषक सेवा संघ ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्गो के सहयोगाचाय अस्तित्व में आये जिन्हें कृषि व ग्रामीण विकास के राष्ट्रीय बैंक का समर्थन था। किन्तु व्यवहारिक स्तर पर इन संघो से कमजोर वर्गो, छोटे व सीमान्त किसानों या कृषि मजदूरों को लाभ नहीं मिला। केवल महाराष्ट्र व गुजरात के कुछ क्षेत्रों में सहकारिता आंदोलन विकास प्रक्रिया में जनसहभागिता बढ़ाने में सफल हुआ। माना जाता था कि पंचायते राजनीतिक सहभागिता प्रतिनिधि

समस्याएें है जबकि सहकारी समितियां आर्थिक सहभागिता के लिये सहयोग संस्थाएें है। किन्तु अब सहकारी समितियों का स्थान लगभग सभी क्षेत्रों में निगमों ने ले लिया है जो एक और प्रशासनिक निकाय है। उदाहरणार्थ हैण्डलूम, दुग्ध, क्रेडिट, मार्केटिंग, अनुसूचित जाति, महिला विकास।

5.5 नई मांगे गैर सरकारी कार्यकर्ता : सहभागी विकास के सक्रिय कार्यकर्ता

सहभागी निकाय के महत्व को समझते हुये छठी पंचवर्षीय योजना (1980–85) औपचारिक व अनौपचारिक गैर संगठनों के महत्व को माना गया । इनके द्वारा ही विशेष सामान्य विकास के लिये उत्प्रेरित व लामबंद किया जा सकता है, जो बढ़ती विकास गतिविधियों की अपेक्षाओं को पूरा कर सके। उन नये क्षेत्रों की पहचान की गई जहां सफलता के लिये जागरूक सहभागिता आवश्यक है। ये क्षेत्र इस प्रकार है :–

1. ब्लॉक स्तर पर पुन: चक्रीय ऊर्जा संघो के गठन के माध्यम से पुन: चक्रीय ऊर्जा के स्रोतों का विकास व अधिकतम उपयोग।
2. परिवार कल्याण, स्वारथ्य व पोषण शिक्षा तथा इस क्षेत्र से संबंधित सामुदायिक कार्यक्रम।
3. सबके लिये स्वास्थ्य कार्यक्रम।
4. जल प्रबंध व मृदा कार्यक्रम
5. कमजोर वर्गो के लिये समाज कल्याण कार्यक्रम
6. न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का क्रियान्वन
7. आपदा प्रबंध (बाढ, तूफान आदि)
8. जनजातीय विकास
9. पर्यावरण संरक्षण व शिक्षा

इन कार्यो से जो नये कार्यकर्ता जुड़े वो इस प्रकार है:–

1. विभिन्न स्तरों पर युवा व महिला संगठन विशेषत: पर्यावरण संरक्षण व विकास के लिये।
2. संबंधित समूहों के लाभार्थ स्वैच्छिक संगठन जैसे स्वरोजगार कर रही महिलायें या किसान या आम आर्थिक हित वाले लोग जैसे मार्केटिंग आदि।
3. किसी क्षेत्र विशेष में संलग्न स्वैच्छिक संगठन।
4. सिंचाई परियोजनाओं पहाड़ी इलाकों में जलपोषक क्षेत्रों व असिमीत क्षेत्रों में जलवितरण क्षेत्रों के माध्यम से भूमि सुधार व जल प्रबंधन के लिये कृषक संगठन।
5. धार्मिक सामाजिक या सांस्कृतिक संगठन या क्लब (रोटरी, जैसी लायन्स आदि) जो चुनिंदा क्षेत्रों में विकास गतिविधियां हाथ में लेते हैं।
6. व्यवसायिक संगठन या शैक्षणिक संस्थायें जो अपनी व्यवसायिक या सामाजिक प्रतिबद्धताओं के रूप में जो अध्ययन अनुसंधान व सामाजिक कार्यक्रम हाथ में लेते हैं।

भारत में ग्रामीण विकास के क्षेत्र में पिछले दो दशकों में राष्ट्रीय स्तर पर अनेक स्वैच्छिक संगठन अस्तित्व हैं। इन्हें तीन वर्गो में बांटा जा सकता है :–

1. तकनीकी प्रबंधकीय स्वैच्छिक अभिकरण – ये मानते है कि आधुनिक प्रबंधकीय तकनीकी से ग्रामीण विकास को गति दी जा सकती है।
2. सुधारवादी स्वैच्छिक अभिकरण – ये वर्तमान आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन सामाजिक व आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन की बात करते हैं।
3. उग्र स्वैच्छिक अभिकरण– ये वर्तमान राजनीतिक कायवाहो के आर्थिक, स्वास्थ्य या शैक्षिक कार्यक्रमों के जरिये लोगों को लामबंद करके शोषितों को शोषकों के विरूद्ध संगठित करती है। इनमें सुन्दर लाल बहुगुणा का चिपको आन्दोलन नर्मदा घाटी का सुरक्षा आन्दोलन शामिल हैं जो पर्यावरण संरक्षण हेतु चलाये जा रहे है। पर्यावरण सम्बन्धी मामलों में राज्य में तो कल्पनाशीलता व लचीलेपन का अभाव रहता है किन्तु स्वैच्छिक संगठनों का अधिक व्यवहारिक व जन आधारित दृष्टिकोण होता है । अत: स्वैच्छिक संगठनों के दृष्टिकोण को राज्य की आंख समझा जाना चाहिए। भारत में निम्नलिखित राष्ट्रीय स्तर के स्वैच्छिक अभिकरण प्रमुख हैं– कृषि व सहयोगी क्षेत्रों में :– भारत कृषक समाज नई दिल्ली, युवा किसान संघ नई दिल्ली, खाद्य उत्पादन हेतु कार्यवाही (एफ प्रो) नई दिल्ली, उचित तकनीकी विकास संघ, लखनऊ, कापार्ट नई दिल्ली गुनो ग्रामीण तकनीकी विकास के नवाचार की दिशा में जन जागृति लाने वाली स्वैच्छिक संगठन है।
4. भोजन व पोषण क्षेत्रों में – कैथोलिक रिलीफ सेवा कल्याण नई दिल्ली, केरिटस इंडिया तथा पाडी नई दिल्ली।
5. बाल क्षेत्र में – इण्डियन काउंसिल आफ, चाइल्ड, वेलफेयर, नई दिल्ली, बालाकांजी बाड़ी, मुम्बई, तथा फोवसी, नई दिल्ली।
6. हरिजन कल्याण क्षेत्र में – हरिजन सेवक संघ, नई दिल्ली
7. जनजातीय कल्याण क्षेत्र में – भारतीय आदिम जाति सेवक संघ नई दिल्ली तथा निसवास भुवनेश्वर
8. सामान्य ग्रामीण विकास व समन्वय कार्यक्षेत्र में :– भारत सेवक समाज कासा नई दिल्ली, ग्रामीण विकास की एशियाई संस्था बैंगलौर, कोर्ट गाजियाबाद की एशियाई संस्था भारत की राष्ट्रीय ईसाई परिषद नागपुर अवार्ड, नई दिल्ली, रामकृष्ण मिशन, बेलूरमठ, कोलकाता, गांधी शांति पीठ नई दिल्ली, समाज कल्याण के लिये भारतीय परिषद मुम्बई व कैरिटास नई दिल्ली।

सप्तम् पंचवर्षीय योजना (1985–91) में यह माना गया कि समुदायों को यथा संभव आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में स्वयं सेवी संस्थाऐं अधिक सक्रिय भूमिका निभा सकती है। उनसे अपेक्षा की गई कि वे यह दिखाये कि किस प्रकार ग्रामीण व स्थानीय ज्ञान स्वयं के विकास में उपयोगी सिद्ध हो सकते है। साथ ही वे ग्रामीण गरीबों के लिये तकनीकी को अधिक सरल बनायें, आम मजदूरों को प्रशिक्षित करें, गरीबों को संगठित करें, श्रेष्ठ सेवाओं की मांग उत्पन्न करें और ग्राम–स्तरीय सरकारी कर्मियों के कार्यो पर उत्तरदायित्व की सामुदायिक व्यवस्था लागू करें। कुछ समय से स्वयं सेवी संस्थाओं के प्रति भारतीय सरकार का दृष्टिकोण काफी बदला है। पहला यह समन्वय संरक्षक व अधीनस्थ का था जिसमें राज्य अनुदान देता था स्वयं सेवी संस्था की भूमिका व कार्यक्षेत्र निर्धारित करता था तथा लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये व्यय–प्रक्रिया भी निर्धारित करता था। अब यह माना गया है कि यह शर्तें

इतनी अव्यवहारिक है कि लोग यह समूह सरकारी सहायता लेने से कतराने लगे हैं। किन्तु यह भी परिवर्तन अभी भी नीचे के स्तर तक नहीं पहुंच सके हैं जहां सरकारी व गैस्-सरकारी लोगों के बीच परस्पर सहयोग की भावना पनप नहीं सकी और इसके बिना विकास लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

विकास प्रक्रिया में स्वयं सेवी संस्थाओं की भूमिका उनको दी जाने वाली सहायता के स्वरूप के बारे में दानदाता अभिकरणों के प्रति दृष्टिकोण में नागरिक समाज संवाद के संदर्भ में परिवर्तन आया है। उदाहरणार्थ यूरोपीय आयोग ने अपने बजट में विकेन्द्रीकृत सहयोग की बात करते हुये निर्धनतम लोगों की सेवा के लिये स्वयंसेवी संस्थाओं को प्रमुख माना है।

दानदाता अभिकरणों ने भारत की स्वयंसेवी संस्थाओं को संसाधन आवंटित करने के साथ ही इन संस्थाओं की गतिविधियों का मूल्यांकन के महत्व को भी प्रतिपादित किया है। ओवरसीज डेवलपमेन्ट इन्हीट्यूट की तरफ से मार्क ए. रोबिन्सन ने अन्तर्राष्ट्रीय अनुदान प्राप्त स्वयं सेवी संस्था परियोजनाओं के चार विस्तृत मूल्यांकन करते हुये ग्रामीण गरीबी दूर करने की दिशा में स्वयं सेवी संस्थाओं की भूमिका व प्रभाव पर इस प्रकार निष्कर्ष निकाला है –

स्वयं सेवी संस्थाऐं समुदायों को अपनी विकास प्राथमिकताऐं निर्धारित करने व नये विचारों के आधार पर प्रयोग करने के लिये तत्पर बनाने में उत्पेरक की भूमिका निभाते हैं किन्तु वे सरकारी कार्यो को समूहित ही करते है और कभी–कभी तो उपलब्ध सेवाओं व कार्यक्रमों का दोहरीकरण भी कर देते है। यद्यपि उनकी भूमिका सरकार की भूमिका से बेहतर है तथापि गरीबी दूर करने में उनकी उपलब्धि असमान है। नकारात्मक पक्ष यह है कि स्वयंसेवी संस्थाऐं सतत् रूप से कार्य नहीं करती है। अलग–अलग संस्थाओं का आपस में कोई तालमेल नहीं है और उनके प्रयास बिखर जाते हैं। प्रबंधकीय योग्यता व तकनीकी कौशल भी कमजोर होता है। जिससे उनका प्रभाव कम हो जाता है। किन्तु प्रमाण यही कहते है कि भारत में गाँवों की गरीबी दूर करने में स्वयंसेवी संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

भारत में स्वंयसेवी संस्थाओं के विकास कार्यो में इतन वैविहय है कि एक सामान्य आकलन असम्भव है। किन्तु यह बात समझना जरूरी है कि भारत में सामाजिक कार्य व विकास के क्षेत्र में निजी प्रयास का महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऐसे प्रयासों को प्रचार भी अधिक मिलता है। राष्ट्रीय पत्रिका इंडिया टुडे ने 15 जनवरी 1996 के अंक के मुख्य पृष्ठ शीर्षक को समर्पित करते हुये लिखा है– 'सहयोगी हाथ हमारे देश के उन अज्ञात महिला पुरूषों का व्यक्तिगत विवरण जो हमारे जीवन में असाधारण परिवर्तन लाये है। ' इस लेख में इन परिवर्तनों के देवदूतों का विस्तृत विवरण है और इन देशभर में विकास की दिशा में किये गये निजि प्रयासों के बारे में विवरण है। (इंडिया टूडे, 1996)

1993 में पंचायती राज सुधारों की भारतीय स्वयंसेवी संस्थाओं पर दो प्रमुख परिणाम हुये है। प्रथम सुधारों के कारण स्वयंसेवी संस्थाओं को यह अवसर मिला है कि वे नव निर्वाचित प्रतिनिधियों विशेषत: महिलाओं के प्रशिक्षण परियोजनाएं हाथ में लें। मनोहर गोपेल्वर के अनुसार स्वयंसेवी संस्थाआ ने पंचायती राज सुधारों के क्रियान्वयन में विशेष रूचि दिखाई है।

देश में पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत करने में स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका के बारे में ग्रामीण विकास कार्यो में संलग्न स्वयं सेवी संस्थाओं प्रशिक्षण संस्थान, समुदाय आधारित समूह व अन्य जमीन से जुड़े संगठन संबंधित अधिकारियों से गंभीर संवाद कर रहे है। (गोपेल्वर, 1995:203)

दूसरे स्थानीय राजनीति मजबूत होने से ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका को चुनौती भी मिल सकती है। पंचायतों के वरिष्ठ निर्वाचित सदस्य बरसों से स्थापित स्वयं सेवी संस्था व संबंधित समुदाय के पुराने संबंधों को नये सिरे से परिभाषित करने की बात कर सकते हैं।

1993 के पंचायती राज सुधारों ने इस चर्चा को आगे बढ़ाया है कि क्या स्वयं सेवी संस्थाऐं राजनीति में अधिक सक्रिय भूमिका निभाये अथवा पहले की तरह गैर राजनीति हो रहे।

5.8 सारांश

प्रतिभागी प्रजातंत्र के साथ भारतीय प्रयोगों का उपयुक्त विश्लेषण विकास के लिये लोगों का लामबंद करने की भूमिका निभाने में सामाजिक कार्यकर्ताओं और संस्थाओं के महत्व को उजागर करता है। कई बार यह कार्यकर्ता व संस्थाऐं एक ही प्रतीत होते है। भारत में स्वतंत्रता के बाद से विकास में नागरिक सहभागिता सामाजिक आर्थिक रही है। भारत के अनुभवों से स्पष्ट है कि यहां राज्य न तो तकनीकी या सामाजिक विकास शुरू कर सकता है और न ही अपने परिवर्तन की प्रक्रियाओं को स्वीकारने के लिये लोगों को लामबद ही कर सकता है।

पूर्वी यूरोपीय देशों की हालिया घटनाओं ने लोगों को लामबंद करने में नवीन सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका को और मजबूत किया है। यदि राज्य किसी तरह केन्द्रीकृत योजना नौकरशाही के माध्यम से क्रियारचयन करके मूलभूत आवश्यकताओं भौतिक रूप से वितरित भी कर देता है तो भी संभावना कम ही है कि लोग आवश्यक क्षमता व गुणवत्ता हासिल कर सके। व्यक्ति या समूह के रूप में लोगों की विवेकपूर्ण गतिविधियों के लिये तकनीकी सिर्फ एक सहायक है विकल्प नही। विकास के मूलभूत लक्ष्यों की प्राप्त करने के लिये ग्राम स्तर से ऊपर के स्तर पर राज्य सत्ता गत ढांचे को पुन: व्यवस्थित करना आवश्यक है ताकि आमजन की राजनीतिक सहभागिता एक प्रथा बन सके, नीति निर्धारण निर्णय लेने, आर्थिक सौदेबाजी राजनीतिक व आर्थिक प्रबंध में उनकी भूमिका हो। लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आये, आत्म निर्भरता की भावना आये, सहयोग की आदत बने ताकि स्थिति और मजबूत हो ये सभी लक्ष्य प्राप्त करते है। समग्र अर्थ में सहभागिता का अर्थ है। सम्मान्य तथा प्रभुत्व वर्ग व निम्न पिछड़े लोगों आमलोगों के बीच संवाद व सहचर्य हो ताकि एक नई सामाजिक आर्थिक व्यवस्था स्थापित हो सके। राज्य तथा गैर सरकारी कार्यकर्ताओं व संस्थाओं के बीच तनाव दूर हो तथा विकास के लिये प्रयास हो व समाज तथा राज्य के बीच एक दीर्घविधि संतुलन बने। प्रजातंत्र की सफलता, मानव अस्मिता व सामाजिक समानता के लिये यह संतुलन बेहद आवश्यक है।

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. भारत में विकास के प्रति दृष्टिकोण पर एक लेख लिखिये।
2. विकास प्रबन्ध में नागरिक सहभागिता की विवेचना कीजिये।
3. 73वें संविधान संशोधन की समीक्षा कीजिये।
4. सहभागी विकास में गैर सरकारी कार्यकर्त्ताओं की भूमिकाओं की समीक्षा कीजिये।

5.10 संदर्भ ग्रंथ

1. जोशी, आर. पी. एवं नरवानी जी. एस. : पंचायती राज इन इंडिया इमरजिंग ट्रेंड अक्रोस दि स्टेट्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2005

2. वर्धन, प्रनब एवं मुकर्जी, दिलिप : डिसेन्ट्रलाइजेशन एण्ड लोकल गर्वनेंस इन डवलपिंग कंट्रीज़, ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली, 2007
3. कुमार, गिरीश : लोकल डेमोक्रेसी इन इंडिया, सेज, नई दिल्ली, 2006

इकाई – 6

विकास प्रशासन और सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 विकास प्रशासन और सामाजिक एवं सास्कृतिक व्यवस्था

6.2.1 पर्यावरण तथा लोक प्रशासन

6.2.2 प्रशासन का सामाजिक पर्यावरण

6.2.3 प्रशासन का सांस्कृतिक पर्यावरण

6.3 विकसित तथा विकासशील देशों में प्रशासन

6.4 विकसित देशों में विकास प्रशासन

6.5 विकासशील राष्ट्रों में विकास प्रशासन

6.6 विकास तथा नौकरशाही

6.7 सांराश

6.8 अभ्यास प्रश्न

6.9 संदर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

विकास प्रशासन की अवधारणा का मुख्य उद्देश्य यह अध्ययन करना है कि:–

1. लोक प्रशासन सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भिन्न–भिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक परिस्थितियों में किस प्रकार कार्य करते है।
2. इसके माध्यम से विकसित व विकासशील राष्ट्रों में विकासात्मक कार्यकलापो में प्रशासन के समक्ष आने वाली समस्याओं को आसानी से जाना जा सकता है।
3. इसके अध्ययन द्वारा यह जानने का प्रयास किया जाता है कि भिन्न–भिन्न सामाजिक परिवेश व संस्कृतियाँ प्रशासनिक कार्यो को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

6.1 प्रस्तावना

प्रशासन किसी भी राज्य की सरकार का एक कार्यकारी अंग होता है। प्रशासन न केवल सरकार की नीतियों तथा योजनाओं को क्रियांवित करता है बल्कि ये सरकार के कार्यो का दर्पण भी होता है। किसी भी राज्य के सर्वागिण विकास उन्नति के लिए चुस्त– दुरूस्त प्रशासन का होना नितान्त आवश्यक है। आज के इस लोक कल्याणकारी राज्य के युग में सामान्य जनता के कल्याण तथा विकास के लिए सरकार पर महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। प्रशासन का चरित्र भी इसी के अनुरूप विकास तथा कल्याणकारी प्रशासन का है।

विकास प्रशासन की अवधारणा की उत्पत्ति अत्यन्त आधुनिक और नवीन है। दुनिया के विकासशील देशों के संदर्भ में इसका महत्व आंका जा सकता है। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अविकसित और अर्द्धविकसित देशों में वस्तुत: एक भिन्न लोक प्रशासन की रूपरेखा उभरती है। इन देशों में विकास की सम्भावनाएं अपार है, परन्तु इनकी स्थिति पिछड़ी हुई है। यहां के लोग अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित तथा गरीबी के शिकार है। विकास प्रशासन की अवधारणा का विकास इन देशों की दशा सुधारने के लिए तथा इन्हें प्रगति पथ पर निरन्तर आगे बढ़ाने के लिए एक उपचार के रूप में हुआ है।

विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा आधुनिक तथा नवस्थिति की ओर अग्रसर होने का प्रयत्न किया जा सकता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की परिस्थितियों में लोक प्रशासन के परम्परागत सिद्धान्तो की अपर्याप्तता को देख कर एडवर्ड वाइडनर ने विकास प्रशासन की अवधारणा का प्रतिपादन किया। यद्यपि सर्वप्रथम विकास प्रशासन' शब्द का प्रयोग 1955 में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की पत्रिका आई. जे. पी. ए. में यू एल गोस्वामी ने किया था, किन्तु इस उपागम को विकसित करने का श्रेय एडवर्ड वाइडनर को ही जाता है क्योंकि 1902 में उन्होंने ही इस उपागम की मूल विशेषताएं प्रतिपादित की थीं। तत्पश्चात रिग्स, जोसेफ ला पालोम्बरा तथा अलर्ट वार्टसन ने इसे लोकप्रिय बनाया। इसके अन्तर्गत ये जानने का प्रयास किया जाता है कि लोक प्रशासन सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति में भिन्न– भिन्न सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश में कैसे कार्य करता है व किस प्रकार परिवर्तित होता है? एडवर्ड वाइडनर के अनुसार, ऐसा प्रशासन जो परिवर्तन उन्मुखी तथा लक्ष्य उन्मुखी हो वह विकास प्रशासन कहलाता हैं। विकास प्रशासन परम्परागत प्रशासन की भांति परम्परावादी जड़ व स्थायित्व प्राप्त नहीं करता है, अपितु उसमें समय और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन आते रहते है। विकास प्रशासन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील तथा तत्पर रहता है। यह प्रशासन मानव जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता, जैसे – सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एंव आर्थिक।

स्वाधीनता के बाद भारत के संदर्भ में भी लोक प्रशासन 'विकास प्रशासन' बन गया जिसका मुख्य लक्ष्य राष्ट्र का निर्माण तथा सामाजिक–आर्थिक प्रगति है। विकास के लिए भारत में आर्थिक नियोजन तथा सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की शुरूआत की गयी। विकास प्रशासन जनता की समस्याओं तथा समाधान के लिए निरन्तर कार्य करता है। उसका उद्देश्य समाज का बहुमुखी और नियोजित ढंग से विकास एक ऐजेन्ट के रूप में करना है। पिछड़े एवं विकासशील देशों में लोक प्रशासन के इस नये आयाम को बड़ी तेज गति से स्वीकार किया जा रहा है।

विकास प्रशासन परिवर्तनशील प्रशासन है। परिवर्तन का तात्पर्य है – एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर गतिमान होना या गतिशील होना। विकास प्रशासन का अपना स्वयं का दर्शन है तथा मूल्य बदलते रहते हैं। ये परिवर्तन विकास के लिए आवश्यक प्रशासनिक तंत्र के लिए अपने बाह्य पर्यावरण का सामना करने की क्षमता बढ़ाने की एक कार्यनीति है। विकास प्रशासन लक्ष्योन्मुखी है, जिसमें अन्याय, गरीबी, असमान वितरण, असंतुलित कृषि उत्पादन, अल्पविकसित उद्योग जैसी अनेक समस्याएं इन विकासशील राष्ट्रों के सम्मुख उपस्थित है। इन विस्तृत समस्याओं का निराकरण व्यवस्थित ढंग से तथा उद्देश्यों का प्राथमिकता के आधार पर निर्धारण करके किया जा सकता है। सामाजिक न्याय, औद्योगिकरण एंव आर्थिक प्रगति के लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रशासन में नवाचार के गुण पाये जाते है, ये उन प्रक्रियाओ, संरचनाओं, योजनाओं तथा नीतियों को लागू करने

एंव समझने पर जोर देता है, जो विकासशील उद्देश्यों को अधिकतम सरलता से प्राप्त करने में सहायक हो। प्रयोग तथा स्वीकार करना विकास प्रशासन का मुख्य लक्षण है। विकास प्रशासन का प्रशासनिक तंत्र उन लोगों को अपनी सेवायें और उत्पादन उपलब्ध करवाता है जिनके लिए लक्ष्य निर्धारित करके संगठन का निर्माण किया गया है। विकास प्रशासन लोक केन्द्रित प्रशासन है। विकास के लिए प्रशासन संचालन में अनुकूलता तथा लचीलापन जैसे तत्व आवश्यक है। जिससे प्रशासनिक संस्थाओं में परिस्थितियों के अनुसार लक्ष्य निर्धारित किये जा सकते है तथा निर्धारित लक्ष्यों के आधार पर संरचनाओं का निर्धारण किया जा सकता है।

विकास प्रशासन की प्रकृति–

1. विकास प्रशासन की प्रकृति, परिवर्तन के अनुकूल स्वयं को ढालने एवं स्वयं के प्रयासों से सामाजिक आार्थिक पर्यावरण में परिवर्तन लाने की होती है। समाज की समस्याओं, आवश्यकताओं एंव मांगो के अनुसार एक निश्चित दिशा की ओर प्रयत्न करके परिवर्तन लाना विकास प्रशासन की एक विशेषता है। विकास प्रशासन स्थिरता एंव परम्पराओं की अंधभक्ति में विश्वास नहीं करता है।
2. इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकरण में अनुकूलता उसी स्थिति में हो सकती, जब कठोरता के स्थान पर पर्याप्त लचीलापन हो। विकास प्रशासन का कार्यक्षेत्र जनता के विकास कार्यो से जुड़ा हुआ होता है, अत: विकास प्रशासन से सम्बद्ध प्रशासनिक तंत्र में लचीलापन होना आवश्यक है। ग्राहकोन्मुखी एंव परिवर्तनोन्मुखी विशेषताओं वाले विकास प्रशासन के लिए यह आवश्यक है कि बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार वह अपनी नीतियों में आवश्यक सुधार और संशोधन कर ले।
3. विकास प्रशासन की प्रकृति लक्ष्यों की प्राप्ति पर केन्द्रित होती है। किसी क्षेत्र के लिए निर्धारित लक्ष्य तथा उसके अनुसार उद्देश्य का निर्धारण कर एक निश्चित समय सीमा में उसको प्राप्त करना विकास प्रशासन की आधारभूत प्रकृति होती है।
4. विकास प्रशासन की अवधारणा का मूल ही परम्परागत प्रशासनिक मान्यताओं के प्रति पैदा हुआ आक्रोश है जो तुलनात्मक अध्ययन की महत्ता एंव विकासशील राष्ट्रों की आवश्यकता रही है, अत: विकास प्रशासन सदैव श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर की ओर बढने की प्रकृति को समाहित किए हुए है।

6.2 विकास प्रशासन और सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था

आधुनिक राज्यों में लोक कल्याणकारी कार्यो का विशेष महत्व है। विकासशील राष्ट्रों में लोक कल्याण के लिए, अनेक प्रकार की योजनाएं एवं कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इन कार्यो को सम्पन्न करने वाले 'प्रशासनिक कार्य' तथा उनकी अवधारणा विकास प्रशासन कहलाती है। यद्‌यपि प्रशासन का विकासशील रूप सदैव ही रहा है, किन्तु द्‌वितीय विश्व युद्ध के बाद नव स्वतन्त्र राष्ट्रों ने विकास को सभ्यता का मुख्य बिन्दु घोषित किया है। उपनिवेशवाद में प्रशासन की प्रकृति सामान्यतया शान्ति और व्यवस्था कायम रखने तक सीमित थी, जबकि वर्तमान में विकास कार्य करवाना प्रशासन का मुख्य कार्य माना जाता है। परन्तु वर्तमान समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता, भ्रष्टाचार, निरक्षरता, गरीबी विकास

कार्यो के प्रति उदासीनता, परिवर्तन के प्रति सामाजिक विद्रोह इत्यादि प्रशासन के समक्ष अनेक समस्याए उत्पन्न कर रहा है।

6.2.1 पर्यावरण तथा लोक प्रशासन–

लोक प्रशासन में पर्यावरण या परिवेश अथवा परिस्थिति के अध्ययन का विचार वस्तुत वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। जिस प्रकार एक पौधे के लिए उपयुक्त जलवायु, प्रकाश तथा बाह्य वातावरण आवश्यक होता है, उसी प्रकार एक सामाजिक संस्था के विकास और प्रशासन के लिए विशेष वातावरण आवश्यक है। मार्क्स के समय से ही यह माना जाता है कि व्यक्ति, समाज एंव प्रशासन के समस्त क्रियाकलापों का स्वरूप उसकी बाह्य परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होता है। डी. आर. के. दुबे ने इस संबंध में सही कहा है कि लोक प्रशासन के आधुनिक विचारकों की मान्यता है कि किसी भी प्रशासनिक समस्या की सम्पूर्ण जानकारी हेतु सम्बन्धित प्रशासन के बाह्य पर्यावरण का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। जो प्रशासनिक संस्थाएं किसी एक देश में सफलतापूर्वक कार्य करती हैं उन्हें दूसरे देशों में अपनाने के प्रयास किये जाते है, लेकिन उस प्रशासनिक व्यवस्था को दूसरे देश में अपनाये जाने के पूर्व दोनों के पर्यावरण का सूक्ष्म अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो जाता है। पर्यावरण सम्बन्धी तत्व न केवल समाज में प्रभावशाली परिवर्तन लाते है बल्कि पर्यावरण सम्बन्धी तत्व प्रशासन और उसके कार्यक्रमों को भी व्यापक रूप से प्रभावित करते है। आज पर्यावरण का महत्व अपेक्षाकृत बढ़ गया है और लोग इसके प्रति अधिक जागरूक हो गये है। यह सर्वविदित है कि किसी भी देश के अर्न्तगत मौजूद सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक पर्यावरण प्रशासन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है।

सन् 1961 में एफ.डी. रिग्स की पुस्तक The Ecology of Public Administration प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में लोक प्रशासन तथा पर्यावरण के बीच परस्पर क्रिया को तुलनात्मक ढंग से समझने का प्रयास किया था। रिग्स के अतिरिक्त जॉन.एम. ग्रास, राबर्ट डहाल, रास्को, मार्टिन आदि विद्वानों ने लोक प्रशासन में पर्यावरण के अध्ययन को व्यापक, विस्तृत एंव समृद्ध बनाया है। आज जब राज्य का स्वरूप प्रशासनिक हो गया है तो किसी भी संस्था या संगठन के विस्तृत विवेचन हेतु पर्यावरण का अध्ययन एंव विवेचन आवश्यक हो गया है। यह निर्विवाद सत्य है कि लोक प्रशासन कई तत्वों से प्रभावित होता है, जैसे–पर्यावरण, संस्कृति, राजनीति, आर्थिक एंव सामाजिक परिवेश।

6.2.2 प्रशासन का सामाजिक पर्यावरण –

एफ. डब्लू रिग्ज ने अपनी पुस्तक में कहा है कि किसी समुदाय का सामाजिक परिवेश उसके संस्थानों, संस्थागत नमूनो, वर्ग, जाति–सम्बन्धों, ऐतिहासिक वसीयत, परम्पराओं, धर्म, मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास आदर्श आदि पर आधारित होता है। ये समस्त तत्व प्रशासन पर गहरा प्रभाव डालते है। लोक प्रशासन में मानवीय तत्व का विशेष प्रभाव होता है, इसलिए लोक प्रशासन का मानवीय तत्व समाज विशेष की उपज होता है। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाएं और संस्थाएं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती है। भारत में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदि आधारों पर अनेक वर्ग बन जाते है। समाज के इन वर्गो को पहचानना तथा उनमें जो वर्ग या जाति पिछड़ी और कमजोर है उसे विशेष सुविधा देकर ऊपर उठाना प्रशासन का महत्वपूर्ण दायित्व बन जाता है। प्रशासन को केवल कानूनी न्याय

के द्वारा ही नहीं चलाया जा सकता, बल्कि प्रशासन के संचालन के लिए आज सामाजिक न्याय अधिक आवश्यक बन गया है। इसके साथ ही सामाजिक संस्थाओं का नौकरशाही से घनिष्ट सम्बन्ध रहता है।

सामाजिक संस्थाओं का प्रशासन पर निरन्तर दबाव रहता है। इस सामाजिक दबाव के कारण प्रशासन सर्तक व उत्तरदायी बना रहता है। दूसरी और सामाजिक जागरूकता भी प्रशासनिक व्यवहार को जनोपयोगी बनाने में सहायता करती है। इससे स्पष्ट है कि प्रशासन को सामाजिक पर्यावरण के अनुसार संचालित करना पड़ता है। समाज प्रशासन के अनुसार नहीं बल्कि प्रशासन समाज के अनुसार संचालित होता है। भारतीय समाज बहु लवादी समाज है, जिसमें विविध सम्प्रदायों के अनुयायी हैं, जिनकी विभिन्न भाषा, जाति–धर्म, रहन–सहन व वेशभूषा की अपनी पद्धतियां है। यहाँ भारतीय समाज के कुछ विशिष्ट मुद्दों पर प्रकाश डाला जा रहा है –

6.2.2.1 जाति –

भारतीय समाज की संरचना के आधार जाति और उपजाति है। प्रत्येक भाषायी क्षेत्र में 200 से 300 तक जातियाँ है। इस व्यवस्था का हानिकारक पक्ष समाज में विद्यमान पिछड़ी जाति के प्रति छुआछुत का व्यवहार है। प्रारम्भ से ही भारतीय समाज में जाति प्रधान रहा है और देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात समस्त राजनीतिक गतिविधियाँ, चुनाव, नियुक्तियाँ, दलों आदि में जाति का प्रभाव बढ़ा है और यह वर्तमान में प्रजातांत्रिक व्यवस्था में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

लोकतंत्र में प्रभुसत्ता जनता में निहित होती है। किन्तु ग्रामीण क्षेत्र में इसका सामाजिक आधार सामन्ति जातिवादी और साम्प्रदायिक है। प्रो. जैन ने लिखा है, 'जनजातीय, भाषायी, धार्मिक, क्षेत्रीय और जातिगत निष्ठा भारतीय समाज की आधार रचना की मूल विशेषता है। इसने यहां की राजनीतिक एंव प्रशासनिक प्रणाली पर गहरी छाप डाली है और विकास की प्रक्रियाओं को भी प्रभावित किया है। भारत में जाति प्रथा जिस रूप में उभर कर सामने आयी, उसने समाज को सामाजिक दृष्टि से ऊँचे–नीचे स्तरों में बांट दिया, राजनीतिक दृष्टि से भ्रष्ट कर दिया और आर्थिक दृष्टि से कमजोर बना दिया। स्वाधीनता के बाद जाति प्रथा का राजनीतिकरण प्रारम्भ हु आ। दलित वर्गो की स्थिति में सुधार के लिए सरकार ने उनके लिए आरक्षण व्यवस्था शुरू की। आरक्षण से पिछड़ी जाति के विकास में सहायता मिली है और सामाजिक परिवर्तन भी आया है, परन्तु साथ ही इससे नित नये तनाव भी उत्पन्न होते रहे है। इस सामाजिक तनाव का प्रशासनिक ढ़ाचे पर प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

आज विकास प्रशासन को अपनी विकास योजनाओं को क्रियावित करने से पूर्व बहु लवादी समाज के सभी वर्णो का ध्यान रखना पड़ता है साथ ही समय समय पर जातिगत रोष का भी सामना करना पडता है। ये जातिगत हिंसा प्रशासनिक कार्यो को बाधित भी करते है। विकास प्रशासन सामाजिक क्रियाओं तथा मानव समाज के व्यवहार से जुड़ा है अत: इसमें मानव समाज की आवश्यकताओं तथा समस्याओं के हिसाब से काम करने क्षमता होनी चाहिए।

6.2.2.2 धर्म एवं साम्प्रदायिकता –

उन राष्ट्रों में जहां विभिन्न धर्मो व सम्प्रदायों के लोग निवास करते हैं वहां प्रशासन को सभी वर्गो की धार्मिक भावनाओं को ध्यान में रखकर अपनी योजनाएं निरूपित करनी पडती है, और क्रियान्वयन में भी इन समस्त वर्गो की धार्मिक भावनाओं का पूर्णरूप से ध्यान रखना पड़ता है। भारत

में आठ प्रमुख धार्मिक समुदाय है – हिन्दू मुस्लिम, सिख, बौद्ध, ईसाई, जैन, पारसी और यहुदी। समाज में हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष की जड़े बहुत गहरी है इन संघर्षो से समाज न केवल दूषित हुआ है, बल्कि समाज में तनाव भी बढ़ा है। साम्प्रदायिक दंगों में लोगों के प्राण तो जाते ही है, साथ ही सम्पति की भी व्यापक हानि होती है और आर्थिक गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन साम्प्रदायिक दंगो का प्रभाव प्रशासन पर भी पडता है।

6.2.2.3 हिंसा –

भारतीय समाज बहुलवादी समाज है जिसमें जातिय विभाजन, विभिन्न धार्मिक विश्वास, हिंसा की बढ़ी हुई घटनाएं प्रमुख चुनौतियां है। विकास प्रशासन को इसी सामाजिक परिवेश में सामाजिक परिवर्तन के उपकरण के रूप में कार्य करना पडता है।

6.2.3 प्रशासन का सांस्कृतिक पर्यावरण –

'संस्कृति' शब्द का सम्बन्ध संस्कार जिसका अर्थ है–संशोधित करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। संस्कार व्यक्ति के भी होते है और जाति के भी। जातिय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं। जलवायु के अनुकूल रहन–सहन की विधियों और विचार परम्पराओं के, जाति के लोगो में दृढ़मूल हो जाने से जाति के संस्कार बन जाते है। इनको प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी प्रकृति के अनुकूल न्यनाधिक मात्रा में पैतृक सम्पति के रूप में प्राप्त करता है। ये संस्कार व्यक्ति के घरेलू जीवन तथा सामाजिक जीवन में परिलक्षित होते हैं। मनुष्य अकेला रहने पर भी इनसे छुटकारा नही पा सकता। संस्कृति देश विदेश की उपज होती है, उसका संबंध देश के भौतिक वातावरण और उसमें पालित, पोषित और परिवर्द्धित विचारों से होता है। एक समाज की संस्कृति अपने नागरिकों को अनेक आदर्शात्मक मूल्य प्रदान करती है। इन मूल्यों से लोक प्रशासन का संगठन एवं व्यवहार भी अछुता नहीं रहता। प्रशासन के संगठन में विभिन्न कर्मचारियो के आपसी संबंध, उच्च अधिकारियों के प्रति निम्न अधिकारियों का दृष्टिकोण आदि पर समाज विशेष की संस्कृति और मूल्यों का विशेष प्रभाव पडता है। संस्कार, संस्कृति और मान्यताओं को ध्यान में रखकर ही प्रशासनिक एवं संवैधानिक कानूनों का निर्माण किया जाता है। जी. ई. ग्लैडन ने अपनी पुस्तक Dynamics of public administration में लोक प्रशासन और सांस्कृतिक पर्यावरण के सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि 'यदि प्रशासन संस्कृति रूपान्तरण के कारण हुई प्रगति से सामंजस्य स्थापित नहीं करती, तो सामाजिक असन्तोष और हिंसा से सामाजिक ढांचा अन्ततः ध्वस्त हो जायेगा'।

यहां भारतीय संस्कृति के कुछ विशिष्ट तत्वों पर प्रकाश डाला जा रहा है जो प्रशासनिक व्यवहार को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप प्रभावित करते है।

1. धर्म एवं साम्प्रदायिक आस्थाएं
2. भाषा एवं बोली,
3. लिपि तथा संचार के साधन
4. पहनावा तथा रीति रिवाज
5. त्यौंहार तथा परम्पराएं
6. शिक्षा तथा मूल्य,

7. मनोरंजन के साधन,
8. सांकृतिक परिवर्तन,
9. ऐतिहासिक प्रभाव।

व्यक्ति के व्यवहार तथा प्रशासन के कार्यकारण को प्रभावित करने में सम्बन्धित समाज की सांस्कृतिक विशेषताएं अत्यधिक प्रभाव दिखती है। ऐसा माना जाता है कि ईसाई एवं बौद्ध धर्मो के अनुयायी तुलनात्मक रूप से अधिक कर्मयोगी एवं निष्ठावान सिद्ध होते है। भारत वह देश है जहां विश्व की बहुत सी संस्कृतियो का जन्म हुआ है। वर्तमान भारतीय प्रशासन के समक्ष उपस्थित आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, भाषावाद तथा भ्रष्टाचार की समस्याएं मूल्यों के पतन का परिणाम हैं। विगत एक दशक से भारतीय समाज में उत्पन्न हुई छदम् आस्तिकता ने कई विकट प्रश्न खडे कर दिये हैं। दिन–रात भ्रष्टाचार, अकर्मण्यता तथा स्वार्थ से अभिभूत महानुभाव माता का जागरण, सवामणी कीर्तन तथा अखण्ड रामायण पाठ करवा कर ईश्वरीय भक्ति का जो घिनौना रूप प्रस्तुत कर रहे है उसने सम्पूर्ण समाज तथा प्रशासन की उपादेयता को सन्देह के घेरे में ला दिया है। भारतीय अस्पतालो के वार्डो में टंगी देवी देवताओ की मूर्तियां तथा जयपुर के उद्योग भवन में स्थित 'रिको' के मुख्यालय में भगवान विश्वकर्मा की प्रतिमा प्रशासन के सांस्कृतिक परिवेश को ही स्पष्ट करता है।

परम्पराओं के पालन तथा इतिहास में जीने की विशिष्ट पहचान रखने वाले भारतीयों के लिए सुधार कठिन कार्य है। कुछ वर्ष पूर्व जब दिल्ली पुलिस की महिला कंस्टेबलो को पेण्ट पहनना अनिवार्य किया गया तो कुछ नारीवादी संगठनो ने इसका विरोध किया था क्योंकि उनकी दृष्टि में भारतीय नारी और साड़ी एक – दूसरे के पर्याय है। इसी प्रकार भाषा तथा लोक प्रशासन का गहरा रिश्ता है। प्रशासन में कागजी कार्यवाही तथा लिखित अक्षर ही सत्य कहलाता है। यद्यपि देश की एक प्रतिशत जनसंख्या भी अंग्रेजी नहीं समझती लेकिन प्रशासन का 90 प्रतिशत कार्य अंग्रजी में होता हैं। दूसरी ओर भारतीय राजस्व, न्याय एवं पुलिस प्रशासन में आज भी फारसी भाषा का प्रयोग होता है जो पढ़े–लिखे व्यक्तियों के भी समझ में नही आता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रशासन को सांस्कृतिक पर्यावरण किस हद तक प्रभावित करता है। जिन देशों में एक राजभाषा होती है वहां प्रशासनिक संचार शीघ्रता से होता है। विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम (भाषा) यदि विवादग्रस्त हो तो वह प्रशासन असफल सिद्ध होगा। भारतीय प्रशासन के साथ त्रासदी ही कही जाएगी कि यहां प्रशासन की भाषा, अधिकारियों का पहनावा एवं बोली तथा उनकी मानसिकता उन लोगों के रहन–सहन, भाषा तथा पहनावे से मेल नहीं खाती जिनके लिए प्रशासन बना है।

प्रशासनिक व्यवहार को भलीभांति समझने एवं उसका आर्थिक विश्लेषण करने के लिए प्रशासन के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक पर्यावरण को समझना आवश्यक है। गाई पीटर्स तथा माइकल क्रोजियर ने लोक प्रशासन की आंतरिक संस्कृति या प्रशासनिक संस्कृति के अध्ययन की भी आवश्यकता महसूस की है। प्रशासनिक संस्कृति वे पारस्परिक तरीके या ढंग है जिसमें कार्मिक सोचते और कार्य करते है। प्रत्येक देश के लोक प्रशासन की आन्तरिक संस्कृति भिन्न होती है। निसंदेह वह संस्कृति बाहय कारकों से प्रभावित रहती है। भारत में बाबूराज, फाइलराज, स्पीड मनी (कार्य शीघ्र करने के लिए पैसा देना), नेता संस्कृति तथा नियमों के चक्रव्यूह प्रशासनिक संस्कृति के पर्याय है।

6.3 विकसित तथा विकासशील देशों में प्रसाशन

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात विश्व का सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिदृश्य शीघ्रता से परिवर्तित हुआ है। वर्तमान राज्यों को उनके विकास के आधार पर दो मुख्य श्रेणियों में बाटा जाता है– 'विकसित' तथा विकासशील'। विकसित राष्ट्रो में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तनो की एक सुव्यवस्थित दिशा है। विकास परिवर्तन तथा आधुनिकीकरण इनकी मुख्य विशेषताएं है। विकसित राष्ट्रो की श्रेणी में पाश्चात्य देशों को सम्मिलित किया जाता है जैसे–अमेरिका, इजरायल, जापान, रूस, न्यूज़ीलैंड, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली आदि। विकासशील राष्ट्रों को तीसरी दुनिया या अल्प विकसित राष्ट्र संज्ञाओं से भी संबोधित किया जाता है। वस्तुतः यह राष्ट्र विदेशी शासकों के आधिपत्य में रहे। दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात यह स्वतंत्र हुए तथा इसके बाद ये राष्ट्र विकास की ओर बढ़ने लगे। इन राष्ट्र की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के सम्मुख सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विकास की प्रबल चुनौतियां उपस्थित हुई। इन राष्ट्रों में कई प्रकार की सामाजिक समस्यायें एवं चुनौतिया उभरकर सामने आने लगी। तीसरी दुनिया में एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के वे देश सम्मिलित है जो उपनिवेश काल से स्वतंत्र होकर विकास की राह पर चल रहे हैं। यह देश आर्थिक रूप से पिछड़ हुऐ, सामाजिक रूप से विषमताग्रस्त तथा उपनिवेश काल की विरासत को ढोने वाले माने जाते है। लेकिन यह व्याख्या भी पूर्ण नहीं है क्योंकि नेपाल तथा थाइलैण्ड उपनिवेश नही रहे एवं कुवैत जैसे धनी देश विकासशील नहीं कहला सकते हैं फिर भी विकासशील या तीसरी दुनिया के देशों की अपनी कुछ विशिष्ट समस्याएं एवं लक्षण हैं। कम से कम आधुनिकता का तो यहां अभाव है ही।

6.4 विकसित देशों में विकास प्रशासन

विकसित राष्ट्रों में आधुनिकता का आशय भौतिकवाद से नहीं बल्कि विचारों की उत्कृष्टता से लिया गया है। इन राष्ट्रों की राजनीतिक संस्थाएं अत्यन्त परिपक्व, विकसित तथा प्रतिबद्ध प्रकृति की है अतः लोक प्रशासन का स्वरूप भी विकसित हो चुका है।

विकसित देशो की प्रशासनिक विशेषताएं निम्न प्रकार है–

1. यहां बड़े उच्च दर्जे का कार्य विशेषीकरण होता है। यहां बडी संख्या में विशिष्ट प्रशासनिक ढांचे होते है जिनमें से प्रत्येक किसी एक का निश्चित उद्देश्य के लिए विशेषीकरण होता है, जैसे–कृषि, यातायात, संचालन, प्रतिरक्षा, बजट सम्बन्धी, कार्मिक, जन–सम्पर्क, नियोजन आदि। इसके अतिरिक्त एक अलग प्रकार के राजनीतिक ढांचे – राजनीतिक दल, चुनाव, संसद, कार्यकारी अध्यक्ष, मंत्रिमंडल, नियमों का निर्माण करने और लक्ष्य या निशानों को निर्धारित करने के लिए स्थापित किये जाते हैं जिनको 'तदुपरान्त' प्रशासनिक ढांचे पर लागू करते है।
2. कार्यो तथा भूमिकाओं का बंटवारा पारिवारिक स्थिति अथवा सामाजिक वर्ग के आधार पर न करके व्यक्तियों तथा व्यक्तिगत उपलब्धियों के आधार पर किया जाता है।
3. विकसित राजनीतिक व्यवस्था में औपचारिक राजनीतिक ढांचे होते है जिनमें पहले से निर्धारित किये गये नमूने अथवा नियम के अनुकूल नियंत्रण रखा जाता है। राजनीतिक निर्णय करना राजनीतिज्ञों का कर्तव्य बन जाता है और प्रशासनिक निर्णय करना प्रशासकों का कर्तव्य होता है।

4. सरकार की क्रिया अथवा कार्यों का क्षेत्र सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत मामलों के बहु त बड़े दायरे तक फैला होता है।
5. सार्वजनिक कार्यो में जनता की रूचि तथा उलझाव बहु त अधिक होता है। राजनीतिक चेतना बहु त उच्च मात्रा तक पहुँच चुकी होती है। अत निर्णय करने और उनको लागू करने की प्रक्रियाओं में सक्रिय. भाग लेने के लिए जनता का संघटन किया जाता है।
6. जो व्यक्ति राजनीति अथवा सरकारी नेतृत्व के पदों पर कार्य करते हैं, उनके सम्बन्ध में आम धारण यह होती है कि वे उन पदों के उचित अधिकारी हैं। इस नेतृत्व में किसी प्रकार का परिवर्तन निश्चित तथा व्यवस्थित कार्य विधियों के अनुकूल ही किया जाता है।
7. विकसित देशों में प्रशासनिक व्यवस्थाओं का मुख्य लक्षण परिवर्तनशीलता एवं गतिशीलता है।
8. विकसित समाजों के प्रशासन में अभिजात्य वर्ग का बहु मत होता है अर्थात प्रशासन के उच्च पदों पर कुलीन वर्ग के लोग होते है।
9. लोक सेवा में प्रतिभाशाली युवक प्रतियोगी परीक्षा द्वारा चयनित होते हैं। लोक सेवाएं देश के राजनीतिक नेतृत्व द्वारा निर्णयों और कार्यक्रमों को क्रियान्वित करते हैं।
10. विकसित राष्ट्रों की आर्थिक एंव वित्तीय व्यवस्था सुदृढ़ है अत: प्रशासनिक व्यय को सरलता से वहन किया जा सकता है। राज्य द्वारा प्रवर्तित सामाजिक सेवाएं कल्याणकारी कार्यक्रम सफलतापूर्वक निष्पादित होते हैं क्योंकि आधुनिक प्रशासन तथा इसके कार्य पूर्णतया वित्त पर आधारित है। चूंकि विकसित राष्ट्रों में प्रति व्यक्ति आय अत्यधिक है ' अत: प्रत्येक व्यक्ति के पास जीवन की न्यूनतम या मूलभूत आवश्यकताओं की समस्या नहीं है। ऐसी परिस्थितियो में प्रशासन अपना ध्यान रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं पर केंन्द्रित नहीं करता है बल्कि मानव जीवन को सुखी बनाने के अन्य बिन्दुओं पर चिन्तन एंव नवाचार कर सकता है।

6.5 प्रशासन राष्ट्रों में विकास प्रशासन

विकसित देशों की अपेक्षा इन देशों की प्रशासनिक उपव्यवस्थाओ में भिन्नताये अधिक है। इसका कारण है इन देशों की अधिक जनसंख्या, विभिन्न संस्कृतियां (जो लगभग विश्वभर की राजनीतिक संस्कृतियों को प्रतिबिम्बित करती है) और उनके अपने ऐतिहासिक अनुभव होते हैं। इनमें से अधिकांश राज्य भिन्न समयो तक किसी न किसी विदेशी साम्राज्य के शासनाधीन रहे है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जब यह उपनिवेशवाद से मुक्त हु ए तब तक शेष विश्व इनसे काफी आगे निकल चुका था। जनाधिक्य, सामाजिक शोषण, गरीबी, बेरोजगारी, परम्परागत समाज तथा अन्धविश्वास से ग्रस्त ये देश उपनिवेशवाद के दोरान मिली प्रशासनिक व्यवस्था को विरासत में लेकर आगे बढें। लेकिन मूल समस्या संसाधनो की कमी या इनके समुचित दोहन की थी। यद्यपि विकासशील राष्ट्रों की राजनीतिक परिस्थितियां परिवर्तित हो गयी थी किन्तु इनका प्रशासन तंत्र पूर्व की भांति निष्ठुर, असंवेदनशील, तथा कठोर बना रहा। परिणामस्वरूप न तो विकास के लक्ष्य प्राप्त किये जा सके और न ही लोककल्याणकारी राज्य तथा लोकतंत्र के स्वप्न सिद्ध हो सके।

विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताएं निम्न प्रकार है–

1. विकासशील राष्ट्रों का लोक प्रशासन विकसित राष्ट्रों का अनुकरण करने वाला है वस्तुत: विकासशील राष्ट्र जिन देशों के उपनिवेश रहे थे उन्ही की शासन व्यवस्था का अनुकरण करते है। निष्कर्षत: यह हुआ कि विकसित एंव विकासशील राष्ट्रों का सामाजिक–आर्थिक पर्यावरण भिन्न थे अत: इसके हानिकारक परिणाम निकले।
2. विकासशील राष्ट्रों के प्रशासन में सामान्यज्ञो का वर्चस्व रहता है लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में सरकारी कार्यो की प्रकृति में परिवर्तन होता जा रहा है। प्रशासनिक अधिकारियों का अधिकाधिक विशेषज्ञ, वैज्ञानिक तथा तकनीकी जानकार होना वांछनीय है।
3. इन विकासशील देशों के समाजो में अनेक प्रकार के कार्यो को करने के लिये ढांचो का पृथक–पृथक विभेदीकरण केवल एक सीमित स्तर तक ही हुआ है। सामन्ती समाज की भांति अधिकारियों अथवा कर्मचारियो का एक ही समूह बिना किसी विभेदीकरण के सैनिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, धार्मिक तथा आर्थिक सभी प्रकार के कार्यो को करता चला जाता है।
4. विकासशील राष्ट्रों की नौकरशाही संगठन के लक्ष्यों की अपेक्षा अपने स्वहित की पूर्ति को अधिक महत्व देती है ।
5. इन राष्ट्रों का राजनीतिक पक्ष दुर्बल व अस्थिरता रहती है। इसलिए नौकरशाही का झुकाव स्वायत्तता तथा शक्ति प्राप्त करने की और होता है।
6. विकासशील देशों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से नित्य नई चुनौतियां उत्पन्न होती रहती है। इन प्रशासन का सामना करना प्रशासन का दायित्व माना जाता है। अधिकांश विकासशील देशो में प्राकृतिक, वित्तीय, मानवीय तथा तकनीकी संसाधनो का स्तर शोचनीय पाया जाता है। इन देशों में प्राकृतिक आपदाओं जैसे – बाढ़, सुखा, महामारी, तूफान, भूंकम्प तथा आगजनी इत्यादि के साथ–साथ सामाजिक रूढ़ियो के कारण नित्य नई समस्याएं उत्पन्न होती रहती है।

विकासशील देशों का प्रशासन तंत्र कमजोर अर्थव्यवस्था, भ्रष्टाचार, गरीबी, मानवाधिकारों का हनन, सामाजिक असमानता, व्यापार घाटे तथा बेरोजगारी जैसी परम्परागत चुनौतियों या समस्याओं के साथ–साथ अब आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, प्रदूषण तथा नशीली दवाओं के व्यापार एंव हथियारों की होड़ जैसी विषम समस्याओं से जुल रहा है।

6.6 विकास तथा नौकरशाही

समाज को इसकी अपेक्षाकृत कम विकसित सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अवस्था से एक सुविकसित राजनीतिक व्यवस्था में लाने के लिए परिवर्तन का नियोजित किया जाना जरूरी है जिसमें सरकार मुख्य नियोजक, प्रोत्साहक, शक्तिदायक तथा बढ़े हुए विकास–प्रयन्तों की संचालक होगी। सरकारी संगठनों को ही सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन प्रदान करना होता है, सामाजिक व्यवस्था में जो गम्भीर रूकावटें आ जाति है, उनको दूर करना पड़ता है और जो असंतुलन उत्पन्न हो जाते है, उनको ठीक करना होता है। चूंकि विकास की प्रक्रिया अनिश्चितता के वातावरण में आगे बढती है और कभी कभी तो राजनीतिक और सामाजिक वातावरण भी अस्थिर होता है। अत: संस्थात्मक, सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन में एजेंट की भूमिका प्रशासन निभाता है, उसको समझना जरूरी है।

विकास के संदर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि नौकरशाही व्यवस्थित संगठित, विधि मूल्य व उपलब्धि केन्द्रित कार्य हो। नौकरशाही संगठन के लिए आवश्यक है अत: इससे तात्पर्य यह है कि नौकरशाही संगठन में परिणाम देने वाली तथा कार्य मार्ग को दिखाने वाली तथा क्रियान्वयन व उपलयब्धि व परिणाम पर ध्यान केन्द्रित करने वाली होनी चाहिए। वर्तमान आधुनिक युग में नौकरशाही प्रशासन का अनिवार्य एंव अभिन्न अंग बन गया हैं। प्रशासन का कोई भी रूप हो यह आवश्यक है। विधायिनी और न्यायिक कार्यो की प्रकृति अस्थायी होती है लेकिन नौकरशाही स्थायी रहती है।

पुरातन मान्यताओं और प्रक्रियाओं के अनुसार नौकरशाही कार्य नही कर सकती उसे आज के परिवर्तनशील व विकास के काल के साथ–साथ अपने को बनाये रखने की जरूरत है। अब हमें शीघ्र निर्णय तथा उनका प्रभावशाली क्रियान्वयन करने वाले प्रबन्धक और नीति निर्माताओं की आवश्यकता है। विशिष्टीकरण से युक्त स्टाफ की आवश्यकता है तथा आज अधिकतम सत्ता प्रत्यायोजन करने की आवश्यकता है। जो तत्व विकास के लिए हानिकारक है उन्हें आज नौकरशाही से विलग किया जा रहा है जो अविश्वास की भावना, अविकेन्द्रिकरण इत्यादि है। अत: दूसरों पर विश्वास व उन्हें उत्तरदायित्व प्रदान किये जाये। विकेन्द्रिकरण आवश्यक है क्योंकि विकास कार्यो क्रियान्वयन के लिए जनसहभागिता आवश्यक है। अत: नौकरशाही को विकास कार्यो की सफलता के लिये मानवीय तत्वों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अत: प्रशासन व जनता के सम्बन्ध अच्छे होने आवश्यक है। इसके अतिरिक्त विकास कार्यो के लिए प्रशिक्षित नौकरशाही के साथ नवीन सोच यथा संगठन में परिवर्तन, कार्य करने के तरीके, सेवी वर्ग के चरित्र में सुधार आदि तत्वों में भी परिवर्तन आवश्यक है।

6.7 सारांश

विकास प्रशासन सामाजिक क्रियाओं तथा मानव समाज के व्यवहार से जुड़ा हुआहै अत: इसमें समाज की आवश्यकताओं तथा समस्याओं के अनुसार कार्य करने की क्षमता होनी चाहिए। इसमें समाज के विभिन्न पक्षों में परिवर्तन लाने, निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने, उत्तरदायित्वों के प्रति सजग रहने, जनसाधारण या उपभोक्ता के प्रति संवेदनशील बनने एवं परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को तत्काल ढाल लेने की क्षमताएं अवश्य होनी चाहिए। परम्परागत नौकरशाही के कठोर नियम, लालफीताशाही, अहंभाव तथा जनता से पृथकता विकास प्रशासन की राह में बहुत बड़ी बाधाएं है। इस प्रकार विकास का आधुनिक युग में विशेषकर विकासशील राष्ट्रों के सामाजिक–आर्थिक विज में महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यह न केवल समय की मांग के अनुरूप प्रशासनिक तंत्र है बल्कि इसका कोई अन्य सार्थक एंव प्रभावी विकल्प भी दिखाई नही देता है।

6.8 अभ्यास प्रश्न

1. विकास प्रशासन की मूल मान्यता कैसी हो, विवेचन कीजिए।
2. विकासशील देशों के प्रशासन की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. विकासशील प्रशासन के विभिन्न आयामों की व्याख्या कीजिए।

6.9 संदर्भ ग्रंथ

1. अवस्थी एंव अवस्थी, **भारतीय प्रशासन,** लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2005
2. त्रिलोकनाथ चतुर्वेदी, **तुलनात्मक लोक प्रशासन,** रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर, 1989

3. पद्‌या रामचन्द्रन, **भारत में लोक प्रशासन,** नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, 2006
4. अवस्थी एंव महेश्वरी, **लोक प्रशासन,** लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2006
5. एम. पी. शर्मा और बी. एल. सडाना, **लोक प्रशासन सिद्धान्त और व्यवहार,** किताब महल, इलाहबाद, 2004
6. सुरेन्द्र कटारिया, **तुलनात्मक लोक प्रशासन,** आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स जयपुर, 2007
7. आर. के दुबे, **आधुनिक लोक प्रशासन,** लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1992
8. रोमिला थापर, **भारत का इतिहास,** राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2007
9. आचार्य एवं वर्मा, **लोक प्रशासन कोष,** जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, 2003

इकाई – 7

विकास प्रबन्ध व आर्थिक व्यवस्थायें

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 आर्थिक व्यवस्थायें व विकास प्रबन्ध के प्रकार

7.3 सामंती अर्थव्यवस्था

7.4 पूँजीवादी अर्थव्यवस्था

7.4.1 पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के लाभ

7.4.2 पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दोष

7.5 समाजवादी अर्थव्यवस्था

7.6 मिश्रित अर्थव्यवस्था

7.7 सारांश

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.9 संदर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पायेंगे कि –

- विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में विकास प्रबन्धन की प्रक्रति।
- विभिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं की प्रकृति एवं कार्यप्रणाली।
- विभिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं की सांदर्भिकता।

7.1 प्रस्तावना

वैचारिक तथा क्रियान्वयन दोनों स्तरों पर विकास विचारणीय बिन्दु रहा है। अनेक उदारवादी गाँधीवादी और मार्क्सवादी समाजशास्त्रियों ने समाज के विभिन्न मामलों ये संदर्भ में विकास की अवधारणा को परिभाषित किया है। विकास के बारे में विश्व विकास रिपोर्ट (1991) कहती है 'जीवनस्तर' को सुधारना विकास की सबसे 'बड़ी चुनौती है। विशेषत: गरीब देशों में बेहतर जीवन का अर्थ केवल अधिक आय ही नहीं है। इसमें बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य व पोषण के उच्च मानक, कम गरीबी, साफ–सुथरा पर्यावरण, समान अवसर, अधिक वैयक्तिक स्वतंत्रता और समृद्ध सांस्कृतिक जीवन शामिल है। आज के समय माना जाता है कि विकास सम्पूर्ण अधिक व सामाजिक संरचना का गठन रूपान्तरण है। किसी भी आर्थिक व्यवस्था में विकास प्रशासन सही लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

7.2 अधिक अव्यवस्थाओ व विकास प्रबन्ध के प्रकार

मार्क्स के अनुसार प्रत्येक समाज को छ: ऐतिहासिक अवस्थाओं, आर्थिक व्यवस्थाओं से गुजरना पड़ता है – आद्य (जनजातीय) साम्यवाद, दासता, सामन्तवाद, पूँजीवाद, समाजवाद व साम्यवाद। आद्य साम्यवाद, समाजवाद तथा साम्यवाद के अन्तर्गत उत्पादन के साधन साझा होते हैं और समाज वर्गो में विभक्त नही होता, परिणामस्वरूप उसमें शोषण नहीं होता। बीच की तीनों अवस्थाओं – दासता, सामंतवाद व पूँजीवाद में उत्पादन के साधनों पर समाज के एक छोटे हिस्से का नियंत्रण होता है। यह शोषक वर्ग होता है जिसके लाभ के लिये शेष समस्त मेहनत करता है। यद्यपि विश्व के विभिन्न हिस्सों में सभी अवस्थाओं की विशेषतायें आज भी विद्यमान हैं तथापि अनेक देशों में सामंतवादी, पूँजीवादी व मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं का प्रभुत्व है। इन सभी देशों में लोगों के सामाजिक–आर्थिक विकास में राज्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी आर्थिक व्यवस्था में विकास प्रबन्ध का सारोकार विकास मामलों, दृष्टिकोणों, कार्यक्रमों, नौकरशाही व संगठनों से होता है और यह समाज में परिवर्तन लाता है। चूँकि विभिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं के इन पक्षों पर चर्चा मुश्किल है अत: इस इकाई में हम विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में विकास नौकरशाही, योजनातंत्र, सार्वजनिक उद्यम और विकास परियोजनाओं के कुछ पक्षों की चर्चा करेंगे।

7.3 सामन्ती अर्थव्यवस्था

विश्व की अनेक महान सभ्यतायें अपने इतिहास में सामन्ती काल से गुजरी है तथा सामन्तवाद, पूँजीवाद व समाजवाद का क्रम आर्थिक क व सामाजिक विकास के मार्क्सवादी सिद्धान्त का एक विशेष सूत्र है। यद्यपि सामन्तवाद का उदय 7वीं व 8वीं शताब्दियों में हु आ था तथापि आज भी कई समाजों में इसकी विशेषतायें पाई जाती है। सामान्यतया कृषि व अविकसित समाज सामन्ती अर्थव्यवस्था वाले समझे जाते हैं।

सामन्तवाद के प्रारंभिक काल में स्कूल अनाथालय व अस्पताल खोल कर चर्च गरबों, जरूरतमंदों व बीमारों की सेवा किया करता था। कुछ मिलाकर सामन्ती व्यवस्था में चर्च एक प्रगतिशील तत्व था। चर्च अपनी जागीरों का बेहतर प्रबंध करता था और सामन्तों की अपेक्षा अपनी जागीरों से अधिक लाभ प्राप्त करता था। सामाजिक शक्ति के रूप में पश्चिमी समाजों में 12वीं शताब्दी से सामन्तवाद का पतन शुरू हो गया । बुरी ताकतों ने सामन्तवाद पर आक्रमण किया। केन्द्रीकृत राज्य के उदय से सामन्तवाद मरणासन्न हो गया।

आर्थिक वसूली और बढ़ती जनसंख्या के प्रभाव में शासक व शासित दोनों का समान हित नजर आया। ये परिवर्तन भू–सम्पत्ति में क्रान्ति के सूचक थे। सामन्ती अनुदानों या अनाधिकृत कब्जों, विक्रय–पत्रों का सम्भावित पट्टों के माध्यम से राजा, चर्च तथा सामन्तों की बड़ी–बड़ी जायदादें टूटने लगी और मध्यमवर्गीय भूस्वामियों के बीच बँटने लगी। समाज के सभी स्तरों पर नई शक्तियों का उदय होने लगा। स्वतंत्र कृषक मध्यम वर्ग और भूस्वामी जो कृषि उद्योग या व्यापार में लगे थे। ये नई महत्वाकांक्षी अर्थव्यवस्थायें स्थापित सामन्तवाद के विरूद्ध उठ खड़ी हुई और गाँव तथा कस्बों में संगठित संघ बन गये।

18 वीं तथा 19 वीं शताब्दियों में राज्य तथा प्रशासनिक तंत्रों का सामन्तीकरण हो गया। सामन्ती सरकार एक प्रकार की विकेन्द्रीकृत सरकार थी क्योंकि सरकारी अधिकार स्थानीय शासकों को दे दिये गये। यूरोप तथा अन्य देशों के अनेक महान् शासकों ने इसमें सकारात्मकता का तत्व देखा जिसका उपयोग वे अपने राज्यों में एकता लाने के लिये कर सकते थे। शासकों ने चतुराई से अपने नियंत्रण से बाहर जा चुके सीमान्त प्रदेशों को केन्द्रीकृत किया व उन्हें पुन: अपने नियंत्रण में किया। ये तथ्य इस बात का प्रमाण है कि यह व्यवस्था अराजकता फैलाने वाली नहीं थी अपितु यह तो एक जोड़ने वाली व्यवस्था थी।

सामन्तवाद से सैन्य संरचना में भी मूलभूत परिवर्तन हुए। पुराने प्रजारक्षक दलों का स्थान व्यावसायिक सामंती दलों ने ले लिया। यह बहुत ही प्रभावशाली साबित हुआ । ऐसे वातावरण में चर्च भी काफी हद तक सामन्तीकृत हो गया। बिशप व ऐबट (चर्च प्रमुख) जैसे धार्मिक पदों व चर्च की सम्पत्ति के बदले में बिशप व ऐबट राजा को सैन्य सेवा के साथ–साथ विभिन्न सेवायें उपलब्ध कराते थे। अनेक गिरजाघर व्यक्तिगत स्वामित्व वाले थे तथा बड़ी–बड़ी जागीरों का हिस्सा थे। चर्च के प्रमुख पदाधिकारी वास्तव में राजा के सामन्ती सलाहकार थे। उनकी नियुक्ति राजा के क्षेत्राधिकार में थी।

सामन्तवाद काफी लम्बे समय तक चला और प्रशासनिक तंत्र समाज को नियंत्रित करने तक ही सीमित रहा और लोकहित को कम प्राथमिकता मिली। सामन्ती शक्तियों के प्रति जनविरोध के कारण 20वीं शताब्दी में विश्व के कई हिस्सों में अर्थव्यवस्थायें पूँजीवादी व्यवस्था की ओर मुड़ गई।

7.4 पूंजीवादी अर्थवयवस्था

पूंजीवादी व्यवस्था में सभी खेत, कारखाने व अन्य उत्पादन के साधनों का स्वामित्व निजी हाथों में या फार्मों के पास होता है। वे चाहें तो उनका उपयोग लाभ कमाने के लिये करें अथवा न करें। सम्पति के मुक्त उपयोग के साथ ही वह उत्पादन की कोई भी प्रक्रिया अपनाने के लिये स्वतंत्र है तथा लाभ के लिये वह किसी से भी अनुबन्ध कर सकता है।

यद्यपि सभी आधुनिक राज्य आम जनता के हित में आर्थिक स्वतंत्रता पर कुछ न कुछ प्रतिबन्ध अवश्य लगाते हैं तथापि इन प्रतिबन्धों में इतनी उदारता तो रहती है कि धनिक वर्ग अपनी सम्पति का इच्छानुसार उपयोग कर सकें। वे कोई भी लाभ का व्यवसाय शुरू कर सकते हैं या अपने हित में कोई भी अनुबन्ध कर सकते हैं।

उत्पादन क्या हो, कैसे हो व किसे लिये हो – अर्थव्यवस्थाओं की यह केन्द्रीय 'समस्यायें मांग और पूर्ति की मुक्त शक्तियों से निर्धारित होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका व यूनाइटेड किंगडम (यू.के) तथा पश्चिमी यूरोपीय देशों में आर्थिक विकास पूँजीवाद के अन्तर्गत ही हुआ है। प्रो. लुक्स के शब्दों में पूँजीवाद आर्थिक संगठन की एक व्यवस्था है और निजी स्वामित्व तथा मानव निर्मित या प्रकृति निर्मित पूँजी के उपयोग से निजी लाभ इसकी विशेषता है।

लैव्स द्वारा दी गई पूँजीवाद की परिभाषा इस व्यवस्था की आवश्यक बातों को रेखांकित करती है। वे कहते हैं ' 'पूँजीवाद या पूँजीवादी व्यवस्था या पूँजीवादी सभ्यता से हमारा अर्थ उद्योग व वैधानिक संस्थाओं के विकास की उस अवस्था से है जिसमें मजदूरों का एक बड़ा समूह उत्पादन के साधनों का स्वामित्व इस प्रकार खो देता है कि वह केवल अपने काम की मजदूरी पाता है और अपने गुजारे, सुरक्षा व व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिये मालिकों के छोटे वर्ग पर निर्भर हो जाता है। मालिक के पास वैधानिक

स्वामित्व है, भूमि मशीनरी व श्रमशक्ति पर नियंत्रण है और याh सब वे अपने निजी लाभ के लिये करते हैं।"

7.4.1 पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के लाभ

पूँजीवाद सदियों से चल रहा है और अभी भी मजबूत स्थिति में है। इससे यह तो आभास होता ही है कि इसमें कुछ स्वाभाविक लाभ है। ये इस प्रकार है –

(1) अर्थव्यवस्था में किसी प्रकार का संकट आने पर मूल्य परिवर्तन व्यवस्था के अनुसार यह स्वत: ही संचालित होती है।

(2) इसमें प्राकृतिक व मानव संसाधनों का अधिकतम उपयोग होता है और यह व्यवस्था मेहनत करने के लिये उत्प्रेरित करती है।

(3) इसमें पूँजी निर्माण उच्च गति से होता है।

(4) इसमें माल व सेवाओं की विपुलता होती है।

(5) लोगों के जीवन स्तर में सुधार आता है।

(6) योग्यतम को अच्छा प्रतिफल मिलता है।

(7) उपभोक्ता की पसंद को प्राथमिकता मिलती है।

(8) बदलती आर्थिक स्थितियों के साथ शीघ्र ही अनुकूलन हो जाता है।

इन सभी मामलों में राज्य तथा इसका प्रशासनिक ढाँचा केवल सुविधायें उपलब्ध कराता है। विकास नौकरशाही योजना आयोग, तथा सार्वजनिक उद्यम की भूमिका केवल समाज को बदलने तक सीमित होती है। विकास परियोजनायें तथा जनहित के लिये स्वास्थ्य व शिक्षा कार्यक्रम सार्वजनिक अथवा निजी या सार्वजनिक निजी साझेदारी द्वारा संचालित होते हैं।

7.4.2 पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दोष

पूँजीवादी व्यवस्था पर आज चारों तरफ से आक्रमण हो रहे हैं। पूँजीवादी व्यवस्था की मुख्य समस्यायें इस प्रकार हैं –

(1) प्रतिस्पर्द्धा इस व्यवस्था की विशेषता है जिसके परिणामस्वरूप विशेषत: अविकसित अर्थव्यवस्थाओं गे अमीर व गरीब तथा समृद्ध तथा पिछड़े इलाकों की बीच खाई गहरी हो जाती है।

(2) पूँजी बढ़ने से उत्पादन तो बढ़ता है पर बिना किसी योजना के जबकि उपभोक्ता निरंतर दरिद्र होते जा रहे हैं।

(3) आर्थिक अस्थिरता व बेरोजगारी बढ़ना।

(4) वर्ग–संघर्ष बढ़ना।

(5) सामाजिक अन्याय व आर्थिक असमानता बढ़ना।

(6) एकाधिकार का आविर्भाव व आर्थिक शक्ति सीमित हाथों में एकत्रित होना।

(7) दुराचरण व भ्रष्टाचार बढ़ना, आदि।

इन सभी कारणों से पिछले कुछ समय से पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं सरकारों को आर्थिक असमानता जैसी गम्भीर समस्याओं से निपटने के लिये कड़े कदम उठाने पड़े हैं। हितकारी राज्य के रूप में यथोचित वित्तीय व आर्थिक तथा सामाजिक सुरक्षा की नीतियाँ बनाई हैं। अमेरिका तथा यूके.

जैसी पूँजीवादी अर्थव्यवस्थायें भी लोगों का जीवनस्तर सुधारने के लिये हितकारी उपाय कर रही हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्थायें मिश्रित अर्थव्यवस्था की रणनीति भी अपना रही है जिसमें निजी तथा सार्वजनिक दोनों स्वामित्व व संस्थायें होती हैं। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में विकास प्रबंधक का कार्य हितकारी कार्यक्रम लाग करना तथा सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना होता है।

7.5 समाजवादी अर्थव्यवस्था

समाजवाद एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है जिसमें सर्वाधिक उत्पादक सकल सम्पति सार्वजनिक होती है जिसका स्वामी राज्य अथवा उसका कोई विभाग होता है। इसमें केन्द्रीय स्तर पर अर्थव्यवस्था के लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं, एक केन्द्रीय योजना बनाई जाती है जिसके अनुसार उत्पादन तथा वितरण नियंत्रित होते हैं। डिकिन्सन के अनुसार समाजवाद समाज की आर्थिक व्यवस्था है जिसमें सम्पूर्ण समुदाय उत्पादन के साधनों का स्वामी होता है, समुदाय के प्रतिनिधि अंग उन्हें संचालित करते हैं। ये अंग एक सामान्य योजना के अनुसार समुदाय के प्रति जिम्मेदार होते हैं। समान अधिकारों पर आधारित ऐसे समाजवादी योग्यतानुसार उत्पादन का लाभ समुदाय के सभी सदस्यों को मिलता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था एक आंदोलन है जिसमें सभी प्रकृति जनित व मानव निर्मित माल का स्वामित्व व प्रबन्ध व्यक्ति के स्थान पर समाज के हाथों में होता है। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय आय को बढ़ाना होता है ताकि व्यक्ति की आर्थिक उत्पेरणा या उसकी व्यावसायिक और उपभोग की स्वतंत्रता को नष्ट किये बिना राष्ट्रीय आय समान रूप से वितरित की जा सके। समाजवादी अर्थव्यवस्था की विशेषता यही है कि सभी बड़े उद्‌योग व भूमि पर सभी का स्वामित्व होता है और इनका संचालन इस प्रकार किया जाता है कि इनका लाभ सभी को मिले न कि किसी व्यक्ति विशेष को।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में विकास प्रबंधन के प्रमुख कार्य इस प्रकार होते हैं – आर्थिक योजना बनाना, समान अवसर उपलब्ध कराना, सामाजिक हित व सामाजिक सुरक्षा के लिये कार्य करना, आर्थिक असमानता कम करना और उन्नत समाज को वर्गहीन समाज में परिवर्तित करना।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के आलोचकों का दावा है कि नौकरशाही संस्थाओं के संचालन में अक्षम पाई जाती है। नौकरशाह किसी निजी संस्था के कर्मचारियों की तरह निष्ठा भाव से कार्य नहीं करते हैं। समाजवादी व्यवस्था की सबसे बड़ी समस्या यह है कि राज्य के हाथों में कुछ ज्यादा ही शक्ति दे दी जाती है। राज्य केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु आर्थिक क्षेत्र में भी असीमित अधिकार रखता है। लोगों के जीवनस्तर को सुधारने में विकास प्रबंधन की भूमिका सीमित होती है। वह पूर्णत: राज्य व राजनीतिक नेतृत्व के दिशा–निर्देशों के अनुरूप कार्य करता है।

7.6 मिश्रित अर्थव्यवस्था

मिश्रित अर्थव्यवस्था न तो पूर्ण रूप से पूँजीवादी और न ही पूर्ण रूप से समाजवादी है अपितु इन दोनों का मिश्रण है। आधुनिक युग में मिश्रित अर्थव्यवस्था ही प्राय: पाई जाती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था का अर्थ है कि इसे निजी उद्‌यम तथा सार्वजनिक उद्‌यम दोनों संचालित करते हैं। ये दो प्रकार की होती है।

प्रथम, उत्पादन के साधन निजी उद्‌यमियों के स्वामित्व में होते हैं। सरकार अपनी वित्तीय व आर्थिक नीतियों के माध्यम से अर्थव्यवस्था को सीधे संचालित करती है। उदाहरणार्थ मूल्य, नियंत्रण, लाइसेंस व्यवस्था, आयात नियंत्रण, विनिमय नियंत्रण, पूँजी संबंधी मामलों पर नियंत्रण आदि सरकार

उत्पादन के साधनों को अपने हाथ में नहीं लेती है। यदि यह उत्पादन हाथ में लेती भी है तो भी यह निजी उद्यमियों की तुलना में बहु त कम ही होता है।इसलिये इसे मिश्रित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था कहते हैं। यह प्रमुखत: पूँजीवादी ही होती है जिस पर सरकार वित्तीय व आर्थिक नीतियों से उसके कार्य को प्रभावित करती है। यह निजी उद्यम पर नियंत्रण करती है ताकि मुक्त निजी उद्यम व मूल्य व्यवस्थाओं की बुराईयों को दूर किया जा सके और उसके पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

ऐसी मिश्रित उद्यम व्यवस्था में सरकार केवल सुरक्षा, हथियार निर्माण तथा पानी, गैस, बिजली जैसी जनउपयोगी सेवाओं तथा यातायात सुविधाओं के उत्पादन तक ही सीमित रहती है। ऐसी मिश्रित अर्थव्यवस्था को मिश्रित पूँजीवाद या 'नियंत्रित पूँजीवाद' भी कहा जाता है।

दूसरे प्रकार की मिश्रित अर्थव्यवस्था वह है जिसमें सरकार न केवल वित्तीय व आर्थिक नीतियों के माध्यम से निजी उद्यम व्यवस्था को नियंत्रित करती है अपितु वास्तविक उत्पादन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ऐसी मिश्रित अर्थव्यवस्था में अनेक मूलभूत व सामरिक महत्व के उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व होता है तथा उनका संचालन व प्रबंधन सरकार द्वारा किया जाता है। शेष उद्योग निजी उद्यमियो के होते हैं और वे स्वयं ही इसका संचालन व प्रबंधन करते हैं। किन्तु सरकार का निजी क्षेत्र पर सीधे तथा वित्तीय व आर्थिक नीतियों के माध्यम से नियंत्रण रहता है।

इस प्रकार की मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषता यह है कि इसमें सरकार का उत्पादन के साधनों पर अत्यधिक नियंत्रण होता है तथा वह स्वयं उत्पादन भी हाथ में लेती है। पूर्व में वर्णित मिश्रित अर्थव्यवस्था का झुकाव पूँजीवाद की तरफ अधिक होता है। जबकि दूसरे प्रकार की मिश्रित अर्थव्यवस्था का झुकाव समाजवाद की तरफ होता है। भारतीय अर्थव्यवस्था दूसरे प्रकार की मिश्रित अर्थव्यवस्था का उदाहरण है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक तथा निजी दोनों क्षेत्र कार्य करते हैं। भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की नींव औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 के द्वारा डाली गई जिसे बाद में औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 द्वारा संशोधित किया गया। इन प्रस्तावों के अनुसार विभिन्न उद्योग दो क्षेत्रों में बाँटे गये – निजी व सार्वजनिक। अनेक मूलभूत, भारी व सामरिक महत्व के उद्योगों के विकास की ज़िम्मेदारी राज्य को सौंपी गई और शेष उद्योगों के विकास की जिम्मेदारी राज्य को सौंपी गई और शेष उद्योगों के विकास का उत्तरदायित्व निजी क्षेत्र को सौंपा गया। निजी क्षेत्र पर भी भारत सरकार का सीधा तथा वित्तीय व आर्थिक नीतियों के माध्यम से नियंत्रण रहता है। किन्तु उल्लेखनीय है कि उत्तर–आर्थिक युग में भारत सरकार ने सार्वजनिक संगठनों व सेवाओं के निजीकरण को प्राथमिकता दी और जनउपयोगी सेवायें उपलब्ध कराने के लिये सार्वजनिक निजी सहभागिता को बढ़ावा दिया।

7.7 सारांश

चर्चा से स्पष्ट है कि प्रत्येक समाज अर्थव्यवस्थाओं के विभिन्न चरणों से गुजरता है। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अनेक देशों ने या तो समाजवाद अपनाया (कुछ ने तो मजबूरन) या मिश्रित अर्थव्यवस्था चुनी। अर्थशास्त्रियों का मत है कि पूर्ण रूप से पूँजीवादी या पूर्णरूप से समाजवादी अर्थव्यवस्था कोई नहीं होती। सभी कुछ हद तक मिश्रित अर्थव्यवस्था का ही रूप होती है।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था ने मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया और उत्तरोत्तर व अस्सीवें दशक के प्रारम्भ में एक मजबूत अर्थव्यवस्था के रूप में उभरी। किन्तु 1991 के आर्थिक सुधारों में नियमों का उदारीकरण हु आ तथा अर्थव्यवस्था वैश्विक(भूमण्डलीकृत) हो गई। विश्व व्यापार

संगठन (डब्लू.टी.ओ.) जो 1995 में अस्तित्व में आया, ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा को ही गिरा दिया। सुधारों के कारण बहुराष्ट्रीय निगमों का हमारी अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा अध्ययन–मात्र का विषय रह गया है और सभी अर्थव्यवस्थाओं में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का प्रभुत्व है। किन्तु पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था स्वाभाविक तरीके से काम करती है तथा सरकार व विकास अभिकरण निजी क्षेत्र के आर्थिक लाभ के लिये सहयोगी की भूमिका निभाते हैं। किन्तु आम आदमी का हित बाजार की शक्तियों पर छोड़ दिया जाता है जहाँ गरीबों से ज्यादा अमीरों को लाभ होता है। अमीरों व गरीबों के बीच की खाई बढती जाती है। यह स्थिति अर्थव्यवस्था के लिये बहुत खतरनाक है। अत: विकास प्रबंधन से अपेक्षा है कि समाज में व्याप्त असमानता को कम करे और लोगों की विशेषतः: निम्नतम आर्थिक समूहों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति सुधारे।

7.8 अभ्यास प्रश्न

1. विकास क्या है? लोगों की सामाजिक आर्थिक स्थिति सुधारने में विकास प्रबंधन की भूमिका पर प्रकाश डालें।
2. सामंतवाद की प्रमुख विशेषतायें बतायें।
3. पूँजीवाद के लाभ तथा हानि बतायें।
4. समाजवाद के भविष्य' विषय का समीक्षात्मक विश्लेषण करें।
5. मिश्रित अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं? भारत की स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में इसके गुण व दोष बतायें।

7.9 संदर्भ ग्रंथ

1. सारंग धर्म, पी. (1985) : "इकोनोमिक सिस्टमस" हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।
2. ग्रेगरी ग्रोसमन (1967) : "इकोनोमिक सिस्टमस" फाऊण्डेशन ऑफ मॉडर्न इकनोमिक सीरीज, प्रैंटिस हॉल, न्यूजर्सी।
3. के.के. डेविट आदि : 'मॉडर्न इकनोमिक थियरी', श्यामलाल चेरिटेबल ट्रस्ट, नई दिल्ली।

इकाई – 8

योजना प्रतिपादन एवं कार्यन्वयन

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 नियोजन का अर्थ

8.3 भारत में नियोजन का संगठन

8.3.1 योजना आयोग का संगठन

8.3.2 राष्ट्रीय विकास परिषद का संगठन

8.4 नियोजन प्रक्रिया

8.5 योजना क्रियान्वन

8.6 सारांश

8.7 अभ्यास प्रश्न

8.8 संदर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पायेंगे कि –

- नियोजन के बारे में।
- भारत में नियोजन संगठन की रूपरेखा।
- नियोजन प्रक्रिया।
- नियोजन क्रियान्वयन।

8.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था सोवियत प्रतिरूप व नियोजन की नेहरूवियन अवधारणा पर आधारित, प्रसिद्ध नियोजित अर्थ व्यवस्था है। भारत का आर्थिक नियोजन वार्षिक एवं पंचवर्षीय योजनाओं पर आधारित है। वृद्धिमूलक आर्थिक विकास इसका उद्देश्य है। सभी योजनाएं वार्षिक बजट व 'योजना प्रलेख में अभिकल्पित की जाती हैं। बजट व प्रलेखों में राजनीतिक चुनावों की छाया देखी जा सकती है। यद्यपि उदारीकरण, निजीकरण, एवं वैश्वीकरण के उदय ने नियोजन व्यवस्था को प्रभावित किया है परन्तु इनके द्वारा अर्थव्यवस्था का मूल अभिप्लवन एवं इसके अन्त : क्षेत्र अधिक प्रभावित नहीं हु ए हैं। तथापि, देश की नियोजन व्यवस्था उभरती हु ई वैश्विक प्रवृत्तियों व प्रभावों के अनुकूल होने का प्रयास कर रही है। भारत में आर्थिक नियोजन का अध्ययन करते समय हमें राजनीतिक परिवर्तनों, दबावों, द्विविधाओ के साथ–साथ क्षेत्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक आर्थिक व्यवस्थाओं को ध्यान में रखना पड़ेगा जिनका भारतीय अर्थव्यवस्था पर अनेक तरीकों से, परोक्ष प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, संसाधनों में कमी आना, प्रौद्योगिकी, प्राकृतिक स्थितियां एवं स्थानीय समस्याएं भी राष्ट्रीय व राज्यस्तरीय नियोजन

व्यवस्था को प्रभावित करती है। इस क्रम में अंतिम परन्तु महत्वपूर्ण हैं संस्थानिक व्यवस्थाएं, जैसे राष्ट्रीय विकास परिषद, योजना आयोग, एवं केन्द्र सरकार के मंत्रालय भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं जो नियोजन प्रक्रिया एवं इसके क्रियान्वन को प्रभावित करते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो, नियोजन प्रक्रिया एवं इसका क्रियान्वन (व्यवहार में) अत्यन्त जटिल व कठिन है। इस इकाई में हम नियोजन, इसका प्रतिपादन –एवं क्रियान्वयन का अध्ययन करेंगे।

8.2 नियोजन का अर्थ

निश्चित समयावधि में एवं देश के संसाधनों का अधिकतम उपयोग करते हुए संवैधानिक व आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए नियोजन को आवश्यक माना जाता है। मॉशर ने नियोजन को उन विशिष्ट तरीके से परभिाषित किया है। वह मानता है कि नियोजन के अन्तर्गत उद्देश्यों की पहचान कर उनको प्राप्त करने हेतु वैकल्पिक कार्यप्रणालियो का विकास करना, आता है। इसके अतिरिक्त उसके अनुसार नियोजन का अर्थ है अधिक सुस्पष्ट ध्येयों के लिए विकल्पों को कम करना। भारत जैसे विकासशील देशों में विकासमूलक उद्देश्यों के लिए नियोजन एक अत्यधिक जटिल कार्य है, वैसे भी विकास योजनाओं के लिए वैकल्पिक अभिगमों व कार्यो की आवश्यकता होती है। इस कारण से नीतिगत उद्देश्यों को विकास कार्यक्रमों में रूपान्तरित करने के लिए नियोजन की अवधारणा को अधिक तर्कशास्त्रीय एवं संघटित रूप में अपनाया गया। उदाहरणस्वरूप, पंचवर्षीय योजनाओं का मूल्यांकन व पुनर्मूल्यांकन करने हेतु वार्षिक योजनाओं का प्रतिपादन किया गया है। इस मूल्यांकन का उद्देश्य सामाजिक–आर्थिक स्थितियों के दृष्टिकोण से योजनाओं में परिवर्तन व समायोजन करना है। वैसे भी, नियोजन दीर्घ, मध्यम व लघु कालिक विकास योजनाओं की एक सतत प्रक्रिया है। नियोजन में देश के दीर्घकालिक विकास व दीर्घकालिक आर्थिक प्रगति को लक्षित करने की क्षमता होना अपेक्षित है।

8.3 भारत में नियोजन का संगठन

नियोजन हेतु संगठन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

1. देश के भौतिक, पूंजीगत, एवं तकनीकी कर्मचारियों सहित समस्त मानव संसाधनों का मूल्यांकन करना और राष्ट्र की आवश्यकताओं के संदर्भ में अपूर्ण रहने वाले संसाधनों की वृद्धि की संभावनाओं को की खोज करना।
2. देश के संसाधनों का सर्वाधिक प्रभावी व संतुलित उपयोग करने की योजना तैयार करना।
3. प्राथमिकताओं को निर्धारित कर योजना के क्रियान्वन की अवस्थाओं को परिभाषित करना एवं प्रत्येक अवस्था के पूरे होने के लिए संसाधनों के विनिधान हेतु सुझाव देना।
4. उन कारकों को इंगित करना जो आर्थिक विकास में बाधा डालने की प्रवृत्ति रखते हैं और वर्तमान सामाजिक व राजनीतिक परिस्थतियों के परिप्रेक्ष्य में उन स्थितियों को सुनिश्चित करना जिनको योजना के सफल कार्यान्वयन के लिए स्थापित किया जाना चाहिए।
5. योजना की प्रत्येक अवस्था के सफल कार्यान्वयन को सुनिश्चित करना।
6. समय समय पर योजना की प्रत्येक अवस्था के कार्यान्वयन में हुई प्रगति का मूल्यांकन करना और ऐसे मूल्यांकन द्वारा इंगित किए गए आवश्यक नीतिगत समन्वयन व उपायों की अनुशंसा करना।

7. ऐसी अंतरिम व अनुषांगिक अनुशंसा करना जो प्रचलित आर्थिक स्थितियों वर्तमान नीतियों, उपायों, एवं विकास कार्यक्रमों का विचार करते हुए उपयुक्त हों अथवा ऐसी विशिष्ट समस्याओं का परीक्षण करना जो केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा इसके लिए नियत कर्तव्यों के निर्वहन को सुसाध्य बनाने के उद्देश्य से इसके पास सलाह हेतु भेजी गई हों।

8. भारत में विकसित की गई नियोजन प्रक्रिया में योजना आयोग की दोहरी भूमिका है (1) विकास की नीतियो को प्रारंभ करना (2) देश की अन्य एजेंसियों द्वारा आर्थिक विकास के लक्ष्य से प्रतिपादित विचारों व कार्यक्रमों को समन्वयित सम्पूर्णता में संघटित करना। योजना आयोग तत्वतः एक गैर राजनीतिक सलाहकारी संस्था है जो सरकार को अनुशंसा प्रेषित करती है। इसकी अपनी कोई अनुशासित नहीं होती। इस बात का ध्यान रखा गया है कि इसका संगठन न तो विशुद्ध शोध संस्थान के रूप में हो जो कि विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक व प्रशासनिक समस्याओं के संपर्क में न हो और न ही एक प्रशासनिक मंत्रालय के रूप में जो दिन प्रतिदिन के कार्यकलाप में अत्यधिक नैकट्य से सम्मिलित रहा है और जो तटस्थता व परिप्रेक्ष्य का अभाव होने की ओर प्रणत होता हैं।

8.3.1 योजना आयोग का संगठन

योजना आयोग एक बहु सदस्यीय संस्था है सदस्यों की संख्या समय समय पर परिवर्तित होती रही है। प्रारंभ के वर्षो में आयोग प्रमुखत: योजना प्रतिपादन पर केन्द्रित था। यह केवल पूर्णकालिक सदस्यो से संघटित था। अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री केन्द्रीय सरकार से इसे जोड़ने वाले सूत्र का कार्य करते थे। परन्तु समय के साथ आयोग का अनेक प्रशासनिक मामलों के साथ जुड़ाव हो गया और इसने अपने कार्यो में विशुद्ध प्रशासकीय प्रकृति के कतिपय कार्यो को सम्मिलित कर लिया। आयोग के संघटन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए और कुछ केन्द्रीय मंत्री इसके अंशकालिक सदस्य भी बने। यह अनुशंसा भी की गई कि आयोग को सरकार के समक्ष लोकसभा के पटल पर रखने हेतु योजना के निष्पादन सम्बन्धी एक वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होगा।

अगस्त 1967 में ए आर सी के प्रतिरूप पर आधरित योजना आयोग का पुनर्गठन हुआ। एकमात्र अन्तर यह था कि प्रधानमंत्री को अब भी इसका अध्यक्ष एवं केन्द्रीय वित्त मंत्री को इसका अंशकालीन सदस्य बना रहना था। इसके पुनर्गठन के पश्चात, इसमें सात सदस्य है जिनमें से दो महत्वपूर्ण मंत्री जैसे प्रधानमंत्री व वित्त मंत्री होते है। पांच पूर्णकालिक सदस्य होते है जिनमें प्रतिष्ठित नागरिक, प्रशासक व तकनीकी विशेषज्ञ आते है। कुछ समय पहले तक भी योजना आयोग में चार पूर्णकालिक सदस्य एवं तीन पदेन सदस्य अर्थात प्रधानमंत्री, वित्त मंत्री, एवं योजनामंत्री (जो कि उपाध्यक्ष भी होते है) होते थे। आयोग का दिन प्रतिदिन का कार्य देखने के अतिरिक्त उपाध्यक्ष योजना समन्वय, योजना मूल्यांकन, प्रशासन एवं सेवाएं, व 'आर्थिक समूह के अन्तर्गत आने वाले विषयों के लिए भी उत्तरदायी होता है।

यद्यपि पूर्णकालिक सदस्य मंत्री नहीं होते परन्तु उनको मंत्री के समान दर्जा प्राप्त होता है और उनसे प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित विषयों पर विचार हेतु आहूत बैठकों में उन्हें आमन्त्रित किया जाता है। आयोग के चार पूर्णकालिक सदस्य निम्न में से किसी एक समूह के प्रभारी होते हैं अ) उद्योग, श्रम, यातायात, व विद्युत समूह (ब) कृषि व ग्रामीण विकास समूह (स) संदर्श नियोजन समूह (द)

शिक्षा, वैज्ञानिक शोध, व समाज सेवा समूह। इसके प्रारंभ से ही योजना आयोग के अध्यक्ष होने के नाते भारत के प्रधान मंत्री ने इसकी प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और राजनीतिक स्तर पर इसके समन्वयक कार्यो में इसकी सहायता की है। हालांकि प्रधानमंत्री केवल आयोग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बैठकों में ही भाग लेते हैं। दिन प्रतिदिन का कार्य उपाध्यक्ष द्वारा ही देखा जाता है।

8.3.2 राष्ट्रीय विकास परिषद का संगठन

राज्यों व केन्द्र सरकारों की नीतियों व योजनाओं के समन्वयन हेतु केन्द्रीय संगठन है राष्ट्रीय विकास परिषद। यह एक उच्च स्तरीय नीति समन्वयक संस्था है जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं और राज्यों के मुख्यमंत्री व योजना आयोग के सदस्य इसके सदस्य हैं। योजना आयोग के सचिव परिषद के सचिव के रूप में कार्य करते हैं। केन्द्र सरकार के मंत्री इसमें होने वाले विचार विमर्श में भाग लेते हैं और केन्द्र व राज्य सरकारों को अनुशंसा करते हैं। विशुद्ध कानूनी दृष्टिकोण से राष्ट्रीय विकास परिषद योजना आयोग के समान एक सलाहकार संस्था है। क्योंकि यद्यपि इसमें देश का उच्चतम राजनीतिक प्रभुत्व शामिल है, रूढ़ियों द्वारा इसे अनन्य स्थिति प्राप्त हो गई है एवं इसकी अनुशंसा को केन्द्रीय मंत्रालयों एवं राज्य सरकारों द्वारा उच्चस्तरीय सम्मान दिया जाता है।

राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक साल में कम से कम दो बार अवश्य होती है; इसकी स्थाई समिति की बैठक बहु धा ही होती है। विभिन्न विशेषज्ञ समितियां भी गठित की जा सकती हैं। इस परिषद को एक प्रशासनिक संस्था के रूप में विकसित किया गया है। इसका उद्देश्य है राज्य एवं केन्द्र सरकारो के मध्य यथासम्भव पूर्ण सहयोग व समन्वय की स्थिति प्राप्त लाना एवं राष्ट्रीय योजना के क्रियान्वन में दृष्टिकोण की एकरूपता व मतैक्य को सुनिश्चित करवाना। परिषद के मुख्य कार्य निम्न हैं –

1. राष्ट्रीय योजना के प्रतिपादन के लिए दिशानिर्देश निर्धारित करना जिसमें योजना के हेतु आवंटित संसाधनों का मूल्यांकन भी सम्मिलित है।
2. योजना आयोग द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय योजना पर विचार विमर्श करना।
3. राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाली समाज व आर्थिक नीतियों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना।
4. योजना के कार्यान्वयन का समय समय पर परीक्षण करना और ऐसे उपायों की अनुशंसा करना जो राष्ट्रीय योजना में निर्धारित उद्देश्यों व लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु आवश्यक हैं।

राष्ट्रीय विकास परिषद का कार्य किसी योजना के प्रतिपादन की विभिन्न अवस्थाओं पर सलाह देना है। इसकी सहमति के पश्चात ही कोई योजना लोकसभा के समक्ष विचार विमर्श हेतु प्रस्तुत की जाती है। भारत की योजनाओं को वास्तविक राष्ट्रीय स्वरूप देने का श्रेय परिषद को ही जाता है।

8.4 भारत में नियोजन प्रक्रिया

समय के साथ विकसित हुई नियोजन प्रक्रिया की चार अवस्थाएं हैं। नवीन योजना के प्रारम्भ के करीब तीन वर्ष पूर्व आरम्भ हो जाने वाली प्रथम अवस्था के दौरान अर्थव्यवस्था की स्थिति का अध्ययन किया जाता है एवं मुख्य सामाजिक, आर्थिक व संस्थानिक कमियों की पहचान की जाती है। इन अध्ययनों द्वारा प्राप्त प्रारम्भिक निष्कर्ष अगली पंचवर्षीय योजना के प्रति सामान्य दृष्टिकोण के प्रतिपादन में सहायक होते है। ये आयोग द्वारा केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के समक्ष प्रस्तुत किए जाते है। इन्हें राष्ट्रीय विकास परिषद के समझ भी प्रस्तुत किया जाता है जो वृद्धि दर सूचित करती है एवं योजना

के निर्माण हेतु प्रथमिकताओ के विषय में सुझाव देती है जो व्यापक स्तर पर योजना पर आगे कार्य करने के लिए आवश्यक हैं। अपने अंतिम प्रतिवेदन में ए आर सी ने सुझाव दिया है कि राष्ट्रीय विकास परिषद से राष्ट्रीय योजना निर्माण करने के लिए दिशानिर्देश प्राप्त करते समय आयोग को योजना का एक अस्थाई ढांचा उपलब्ध करवाना चाहिए जिसे कि आयोग व्यवहार्य मानता हो, और अन्य वैकल्पिक दृष्टिकोण जिनमें भिन्न स्तर के प्रयास की आवश्यकता हो, भी इंगित करने चाहिए। इसमें सम्मिलित मूलभूत कारकों जैसे विकास की दर, वांछित संसाधन आदि का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। योजना के प्रतिपादन हेतु विस्तृत कार्य की प्रगति राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा दिए गए दिशानिर्देशों के परिप्रेक्ष्य में होनी चाहिए। पंचवर्षीय योजना के प्रतिपादन में ए आर सी द्वारा अनुशंसित प्रक्रिया की अनुपालना की गई है।

द्वितीय अवस्था में राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा सूचित अस्थाई विकास दर के परिप्रेक्ष्य में योजना के सामान्य आयामों को तैयार किया जाता है। एक प्रारूप ज्ञापन पत्र (ड्राफ्ट मैमोरैण्डम) तैयार करने के साथ इस अवस्था का अन्त होता है। इस दस्तावेज में प्रतिपादन प्रक्रिया के अन्तर्गत योजना की मुख्य विशेषताओं की रूपरेखा होती है।

तृतीय अवस्था, में कार्य की दिशा, राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा ड्रापट मैमोरैण्डम के विषय में की गई टिप्पणियों के परिप्रेक्ष्य में पंचवर्षीय योजना के प्रारूप के निर्माण की ओर होती है। इस पर राज्य व केन्द्रीय मंत्रिमण्डल भी टिप्पणी देते हैं। परिषद द्वारा अनुमोदन के पश्चात इसे सार्वजनिक परिचर्चा हेतु प्रसारित भी किया जाता है। इसके बाद इस पर लोकसभा सदस्यों की अनौपचारिक सलाहकार समिति व संपूर्ण लोकसभा विचार करती है।

चतुर्थ अवस्था पंचवर्षीय योजना के अंतिम प्रतिवेदन के निर्माण से सम्बन्ध रखती है। सम्बन्धित केन्द्रीय मंत्रिमण्डलों के साथ मिलकर योजना आयोग राज्य सरकारों से उनकी योजनाओं के विषय में विस्तृत परिचर्चाएं आयोजित करता है। प्रमुख वाणिज्यिक व व्यापारिक संगठनों के साथ भी परिचर्चाएं आयोजित की जाती है।

8.5 योजना क्रियान्वयन

योजना क्रियान्वयन के नियोजन की अवधारणा इस रूप में स्पष्ट किया जा सकता है कि यह योजना प्रतिपादन की लक्ष्य प्राप्ति अवस्था पर आवश्यक होती है जिसमें योजना के लक्ष्यों को समयानुसार प्राप्त करने के लिए मापदण्डों व सिद्धान्तों का चुनाव अथवा सूचना, उपकरणों, नीतियों, संस्थाओं, प्रोत्साहन का चुनाव सम्मिलित है। यह प्रक्रिया आंतरिक संगठनों के परियोजना प्रबंधन एवं कार्यक्रमों (सूक्ष्म स्तरीय समस्याएं) की समस्याओं से भिन्न है। इस भेद को सुस्पष्ट रखने के आशय से योजना क्रियान्वन के नियोजन को 'योजना प्रबंधन' कह सकते हैं।

योजना क्रियान्वन के नियोजन की प्रकृषीत व क्षेत्र अर्थ व्यवस्था व इसकी प्रक्रिया के अतिरिक्त उस भूमिका पर भी निर्भर करता है जो किसी अर्थव्यवस्था में नियोजन की होती है। भारत में नियोजन आर्थिक विकास को त्वरित करने के उद्देश्य से राज्य के हस्तक्षेप को एकीकृत व सुसंगत ढांचा उपलब्ध करने का कार्य करता है इसलिए योजना क्रियान्वन के लिए नियोजन अपनी समस्त संस्थागत जटिलता के साथ अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ा हुआ होता है। हालांकि इसकी वास्तविक प्रकृति व क्षेत्रप्रत्येक क्षेत्र विशेष की प्रकृति व आकार के अनुसार भिन्न होता है। अपने प्रारंभिक बिन्दुओं को स्पष्ट करने के

लिए आरम्भ में हम सार्वजनिक, संगठित, निजी, एवं अर्द्धसंगठित निजी क्षेत्र पर अलग अलग चर्चा करते है।

भारत में निजी क्षेत्र के लिए योजना क्रियान्वन के नियोजन के अन्तर्गत न केवल निजी निवेश कार्यक्रम अपितु इस क्षेत्र की वर्तमान क्षमताओं का संचालन भी आता है। विस्तृत सार्वजनिक क्षेत्र से संसाधन संग्रहण की समस्या से उत्पन्न कठिनाइयां एवं दोनों क्षेत्रों के मध्य व्यापक संलग्नता का नेटवर्क दस कार्य को जटिल बनाते हैं। इन निमंत्रणों के मध्य सार्वजनिक क्षेत्र के लिए योजना क्रियान्वन के नियोजन की समस्या संगठनात्मक संरचना का निर्धारण, संकेत–निर्देश योजना का चुनाव एवं प्रोत्साहन तय करना माना जाता है।

निजी क्षेत्र के लिए योजना क्रियान्वन के नियोजन को मूलभूत रूप से एक केन्द्रीय रणनीति के विकेंद्रित प्रतिमान को क्रियान्वित करने की समस्या के रूप में देखा जाता है। निजी आर्थिक कार्यो को निर्देशित व नियंत्रित करने वाले साधनों व नीतियों को अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। (आर. बी. जैन प्लानिंग इन द थर्ड वर्ल्ड आईजेपीए, जुलाई सितम्बर 1984)

8.6 सारांश

भारत द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाये जाने के कारण नियोजित अर्थव्यवस्था के साथ चलना आवश्यक हो गया है। गत 60 वर्षा (1949–2009) के अनुभव ने यह दर्शाया है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में नियोजन ने नियोजन के संस्थागत नेटवर्क, मिश्रित अर्थव्यवस्था एवं सार्वजनिक सेवाओं की बढ़ती हुई भूमिका का एक शक्तिशाली आधार निर्मित कर लिया है। योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद, राज्य योजना मण्डल व तन्त्र, जिला नियोजन व्यवस्था आदि ने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में नियोजन को अविलम्ब प्रदान किया है परन्तु ये योजनाओं को क्रियान्वित करने में असफल रहे हैं और अधिकतर पंचवर्षीय योजनाएं कुछ क्षेत्रों में आशिक सफलता प्राप्त कर सकी है एवं कुछ अन्य में पूर्णतया असफल रही हैं। 1991 में नई अर्थव्यवस्था के आने व गत 15–20 वर्षो में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नवीन आर्थिक परिदृश्य के उद्भव ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भारतीय नियोजन को निर्माण व क्रियान्वन दोनों ही स्तरों पर उपयुक्त मार्ग नहीं दिया जा सकता है। नियोजन प्रक्रिया नौकरशाही प्रकृति से भरी हुई एवं राजनीतिक विचारों व दृष्टिकोणों के नियंत्रण में रही है और देश के सर्वसम्मिलित विकास पर ध्यान नहीं दिया गया है। नियोजन के क्रियान्वन में निजी क्षेत्र, विदेशी निवेश, जन भागीदारी, नियोजक तन्त्र, उदार आर्थिक विचार आदि की सरकार एवं नौकरशाही द्वारा अपने हितों, शक्ति, प्रतिष्ठा, प्रभुता, स्थान आदि के कारण पूर्णतया अवहेलना की गई थी। योजना प्रतिपादन एवं कार्यान्वयन को मिलाना से यह स्पष्टतया उभर कर आता है कि भारतीय नियोजन राजनीतिक चुनावों, निजी हितों का प्रदर्शन, वोट बैंक निर्माण एवं नौकरशाही बुराइयों से त्रस्त है।

जिला स्तरीय नियोजन से राष्ट्रीय स्तर पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट होता है कि जन भागीदारी, विशेषज्ञों को शामिल किया जाना, व्यावसायिक दृष्टिकोण एवं शिक्षा को जान बूझ कर त्यागा गया था। परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास बहुत धीमा एवं गलत दिशा में होता रहा। तथापि भारतीय अर्थव्यवस्था अब खुलेपन, उदारीकरण, निजीकरण, एवं वैश्वीकरण की ओर बढ़ रही है और स्वयं को अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं, दबावों व कार्य सम्पादनों से विलग नहीं रखेगी। आधुनिक समय की मांग है कि सर्वसम्मिलित उन्नति की ऐसी व्यवस्था विकसित की जाए जो जिसमें प्रत्येक नागरिक,

विदेशी, संस्थाओं को भाग लेना और योगदान करना आवश्यक हो। अब नियोजन राजनीतिज्ञों व नौकरशाहों के शिकंजे में नहीं रहेगा। इसे सभी के लिए खुला रहना चाहिए।

8.7 अभ्यास प्रश्न

1. भारत में नियोजन के महत्व की विवेचना करिए।
2. भारत में योजना प्रतिपादन एवं क्रियान्वयन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
3. भारत में नियोजन के संगठन की विवेचना कीजिए।

8.8 संदर्भ ग्रंथ

1. आर. पी. जैन, भारतीय समाज अधिकारी तंत्र एवं सुशासन, हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2007
2. सुब्रहमण्यम, शोशल बेक ग्राउण्ड ऑफ इण्डियाज एडमिनिस्ट्रेटर, मिनिस्ट्री ऑफ इन्फारमेंशन नई दिल्ली, 1971
3. श्री राम माहेश्वरी, भारत में स्थानीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण, आगरा, 2007

इकाई - 9

जिला एवं उससे नीचे के स्तर पर विकास के लिए प्रशासनिक व्यवस्था: जिला ग्रामीण विकास अभिकरण एवं पंचायतीराज संस्थाएँ

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 जिला ग्रामीण विकास अभिकरण
9.2.1 संगठन
9.2.2 कार्य
9.3 पंचायती राज संस्थाएं
9.3.1 पंचायतीराज–गठन, कार्य तथा प्रचलन
9.3.1.1 जिला परिषद
9.3.1.1.1 स्थायी समितियाँ
9.3.1.1.2 प्रशासनिक व्यवस्था
9.3.1.1.3 जिला परिषद की शक्तियां एवं दायित्व
9.3.2 जिला आयोजना समिति
9.3.2.1 जिला आयोजना समिति की शक्तियां और कार्य
9.3.3 खण्डस्तर–पंचायत समिति
9.3.3.1 पंचायत समिति के कार्य
9.3.3.2 खण्ड विकास अधिकारी
9.3.4 ग्राम स्तर–ग्राम पंचायत
9.3.4.1 शक्तियां एवं दायित्व
9.3.4.2 ग्राम सभा
9.3.4.3 ग्राम सेवक (पंचायत सचिव)
9.3.5 समालोचना
9.4 सारांश
9.5 शब्दावली
9.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निम्न जान पाएंगें –

– जिला एवं उससे नीचे के स्तर पर कार्यरत विकास प्रशासन के नियोजन के बारे में।
– जिला एवं नीचे के स्तर के अभिकरणों के अधिकारी तंत्र के बारे में।
– जिला स्तरीय अभिकरणों, संस्थाओं और अधिकारी तंत्र की स्थिति के बारे में।

9.1 प्रस्तावना

जिला स्तर हमेशा से ही भारतीय प्रशासन की भौगोलिक इकाई रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात विकास प्रशासन की भी इकाई बन गया। जिला स्तर पर ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों का विकास समाहित है किन्तु ग्रामीण विकास भारत के विकास की रणनीति का केन्द्रीय आधार रहा है। चूंकि भारत की अधिसंख्या जनसंख्या गांवों में निवास करती है। अत: इसके सम्पूर्ण आर्थिक–सामाजिक विकास के लिए विकास कार्यक्रम इस प्रकार से बहु–आयामी रूप में प्रारूपित किए गए है कि वे ग्रामीण गरीबों को अपनी ऊर्जा और शक्ति का उचित उपयोग करने के अवसरों को उपलब्ध कराने के माध्यम से उनका जीवन स्तर ऊपर उठाने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। साथ ही गांवों में मानवीय व प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग और क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करना भी ग्रामीण विकास का ध्येय है। यहाँ पर राबर्ट चैम्ब्रस के दृष्टिकोण को उदधृत किया जा सकता है कि 'ग्रामीण विकास एक रणनीति है जो लोगों के विशिष्ट समूहों, गरीब ग्रामीण स्त्री पुरूषों आदि को अपने और अपने बच्चों के लिए इतना अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए योग्य बनाती है जितना कि वे चाहते हैं और उनको आवश्यकता है'

विभिन्न तथ्यों एवं प्रमाणों से यह इंगित होता है कि भारत में ग्रामीण विकास में लोक और सरकारी हितों में तेजी से वृद्धि हुई है और हमारे नीति निर्माताओं ने इस दिशा (ग्रामीण विकास) में स्पष्ट और मजबूत भावना देखी जा सकती है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना इस भावना का प्रमाण है।

जिला एवं ग्रामीण स्तर पर सतत् एवं लम्बे समय से चली आ रही समस्याओं से निपटने के लिए सरकार ने ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का प्रारम्भ किया। वास्तव में स्वतंत्रता के तुरन्त बाद और विशेष रूप में संविधान के लागू होने के बाद ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुधारने के विभिन्न प्रयास प्रारंभ किए गए। विकास कार्यक्रमों को वास्तविकता धरातल पर रूपांतरित करने के लिए जिला को भौगोलिक इकाई चुन कर विकास को संस्थागत रूप दिया गया। जिला एवं उस से नीचे के स्तर पर विभिन्न कार्यक्रम क्रियान्वयन अभिकरणों एवं नियोजन अभिकरणे की स्थापना की गयी। विकास प्रशासन के लिए संस्थाओं और अधिकारी तंत्र की ग्राम से लेकर जिला स्तर तक पद सोपानिक व्यवस्था की गयी। मुख्य रूप से जिला ग्रामीण विकास अभिकरण एवं पचायतीराज संस्थाएं जिला एवं नीचे के स्तर के विकास के केन्द्र बिन्दु रहे हैं।

9.2 जिला ग्रामीण विकास अभिकरण

स्थापना छठवी पंचवर्षीय योजना (1980–85) के गरीबी उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास के लिए 2 अक्टूबर 1980 को संपूर्ण देश में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के नाम से एक नया कार्यक्रम आरंभ हुआ। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत योजनाओं की स्वीकृति प्रदान करने का अधिकार, राज्य सरकारों को दिया गया था। जिला एवं खण्डस्तर पर इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की स्थापना की गयी। इस अभिकरण की स्थापना सोसाइटी पंजीकृत अधिनियम 1968 अन्तर्गत की गयी। जिला स्तर पर सभी राज्यों में जिला ग्रामीण विकास

अभिकरण की स्थापना की गयी है। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण एक पंजीकृत सोसाइटी के रूप में था किन्तु कार्यप्रणाली सरकारी विभाग के समान ही है। केवल अंतर उस की वाणिज्यिक प्रकृति का है। सरकारी विभागों की तरह लेखांकन व्यवस्था नही होती और अपने निधियों को कोषागारों के अलावा बैंकों एवं लोक जमा खातों में रखता है।

जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की स्थापना के समय से जिलाधीश को अध्यक्ष बनाया गया था किन्तु पंचायतीराज संस्थाओं के सशक्तिकरण की अवधारणा ने जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की जिला परिषद के अधीन ला दिया एवं वर्तमान समय में जिला प्रमुख जिला ग्रामीण विकास अभिकरण का अध्यक्ष होता है।

वर्तमान में ग्रामीण विकास योजनाओं का केन्द्रिय विषय होने के कारण जिला ग्रामीण विकास अधिकरण बहु त ही महत्त्वपूर्ण हो गया है। पंचायती राज व्यवस्था का सशक्तिकरण करने के लिए देश के अधिकतर राज्यों में इसका जिला परिषद् में विलय कर दिया है। राजस्थान में 2003 में जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों का विलय जिला परिषद् में कर, जिला प्रमुख को इस का अन्न बनाया गया है।

9.2.1 संगठन

जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों को वर्तमान में जिला परिषद (ग्रामीण विकास प्रकोष्ठ) के नाम से जाना जाता है। जिला प्रमुख इस का अध्यक्ष होता है । पहले वाले अभिकरण की शासकीय परिषद के कार्य अब जिला परिषद की ' 'आम सभा' ' करती है एवं कार्यकारी समिति' ' के कार्य नव सृजित स्थायी समिति' ' ग्रामीण विकास समिति' ' करती है। 30 अगस्त 2003 को जिला परिषद की आम सभा के माध्यम से जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों को समाप्त कर पंजीकरण भी रह करवाया जा चुका है तथा अभिकरण की समस्त सम्पतियाँ एवं देनदारियाँ जिला परिषद में समाहित की जा चुकी है।

जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के प्रशासनिक तंत्र को यथावत रखा गया है जो जिला परिषद के निर्देशन में कार्य करता है। इस अभिकरण के कार्य अब जिला परिषद् (ग्रामीण विकास प्रकोष्ठ) द्वारा सम्पन्न किये जा रहे हैं।

ग्रामीण विकास प्रकोष्ठ के दैनिक कार्यो को सम्पादित करने के लिए जिला कलक्टर (विकास) अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह अधिकारी इस प्रकोष्ठ का परियोजना निदेशक भी होता है। इस की सहायता के लिए अधिशासी अभियंता, सहायक अभियंता, लेखाधिकारी, सहायक परियोजना अधिकारी, सांख्यिकी सहायक, कम्प्यूटर कार्मिक तथा कृषि, सिंचाई, पशुपालन तथा वन इत्यादि के विशेष अधिकारी भी होते हैं। जिला योजना अधिकारी ग्रामीण विकास प्रकोष्ठ में परियोजना अधिकारी बनाया गया है। प्रकोष्ठ के कार्यकारी निदेशक के रूप में जिलाधीश को सभी प्रशासनिक एवं वित्तीय अधिकार प्राप्त हैं।

चार्ट संख्या 12.1

संगठन चार्ट

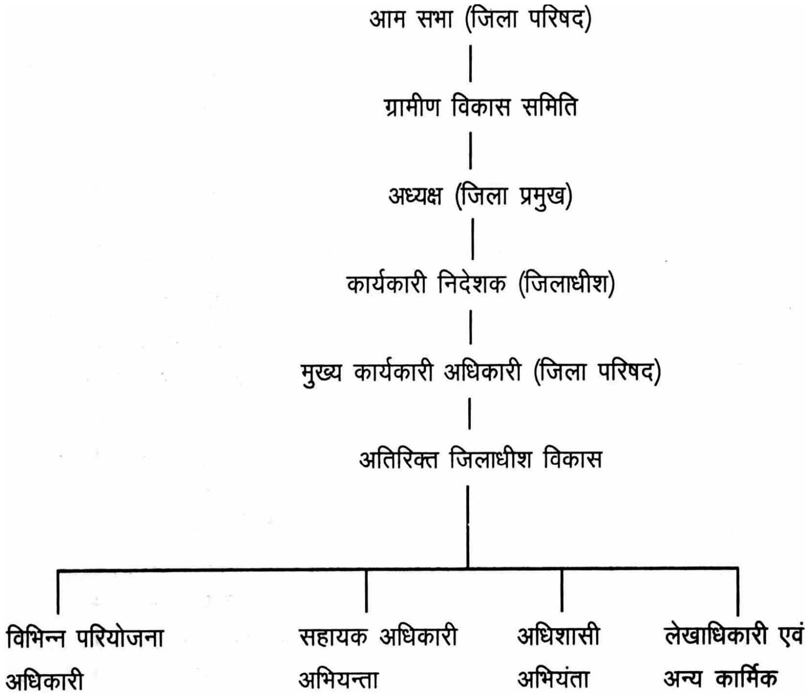

9.2.2 जिला परिषद (ग्रामीण विकास प्रकोष्ठ) को निम्नांकित कार्य सौंपे गये हैं–

1. ग्रामीण विकास की केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं का जिले में संचालन करना।
2. ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग के दिशा निर्देशानुसार जिले की योजनाएँ बनाना।
3. गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों की पहचान करना।
4. पहचान किये गये एवं परियोजनाओं में स्वीकृत गरीब व्यक्तियों को ऋण दिलाने में सहायता करना।
5. जिले के प्रत्येक विकास खण्ड की विकास योजनाओं एवं परियोजनाओं को निर्मित कराना।
6. विभिन्न क्षेत्रों तथा विभागों के मध्य समन्वय स्थापित करना।
7. विकास कार्यक्रमों को जनता तक पहुँचाने के लिए कार्यक्रमों के संबंध में जागरूकता लाना एवं प्रचार–प्रसार करना।
8. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की प्रगति के बारे में ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग और राज्य सरकार को अवगत करवाना।
9. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में आने वाली बाधाओं का पता कराना तथा उनके समाधान के उपाय ढूँढना।

जिला ग्रामीण विकास अभिकरण को जिला परिषद् में विलय के पीछे मूल कारण पंचायतीराज संस्थाओं को सशक्त करना था। पूर्व में यह एक अधिकारी तंत्र युक्त सामानान्तर संगठन था जिसके

सामने जिला परिषद् की स्थिति गौण थी। श्री शिवचरण माथुर की अध्यक्षता में गठित राजस्थान प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसा पर इसका विलय जिला परिषद् में किया गया था।

9.3.1 पंचायतीराज संस्थाएं

पंचायतीराज व्यवस्था ग्रामीण विकास कार्यक्रमों तथा उनकी क्षमता, गुणवत्ता और स्वाधिकारितापूर्ण निरन्तरता बढ़ाने, उनकी कमियों और कमजोरियों को मिटाने तथा गांवों की उपेक्षित, उत्पीड़ित और सीमांत बहु संख्य जनशक्ति को इन प्रक्रियाओं में अग्रणी तथा प्रभूत्व भूमिका प्रदान करने के लिए नीतिगत व्यवस्था करना भारत में राष्ट्रीय सामाजिक समन्वित विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्राथमिक अंग है।

पंचायतीराज के विकास की आधुनिक अवधारणा के बीज गाँधीवादी दर्शन के अधीन भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 में खोज सकते हैं जिसमें कहा गया है कि ' राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक है। " किन्तु पंचायतीराज संस्थाओं की स्थापना सामुदायिक विकास कार्यक्रम की समीक्षा के लिए गठित की गयी बलवतंत राय मेहता समिति की अनुशंसा पर ही की गयी। समिति ने ग्रामीण विकास के लिए राजनीतिक सत्ता का उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर विकेन्द्रीकरण कर दिया जाये, ताकि विकास कार्यक्रमों की योजना बनाने एवं उन्हें कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व स्थानीय क्षेत्र के चुने हुए प्रतिनिधियों को प्राप्त हो जाये। समिति ने इस प्रक्रिया को ' 'लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण' ' का नाम दिया। जिसे कालान्तर में "पंचायतीराज" के नाम से जाना गया।

2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने पंचायती राज का विधिवत उद्घाटन किया। अपने शैशवकाल अर्थात 1960 के दशक में पंचायती राज ने उत्साहवर्धक कार्य किया परन्तु 1970 के आते–आते यह कमजोर पड़ गया और राज्य सरकारों की उदासीनता का शिकार होकर अपने अस्तित्व को खोजने लगा। 1977 में जनता सरकार ने पंचायतीराज को सशक्तीकृत करने के लिए सुझाव देने हेतु अशोक मेहता समिति का गठन किया। जिसने अपने प्रतिवेदन में त्रिस्तरीय के स्थान द्विस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था अपनाने की सिफारिश की। ये दो स्तर थे जिला परिषद और मण्डल पंचायत। अशोक मेहता समिति की सिफारिशें आधारिक स्तर पर कोई परिवर्तन लाने में असफल रही। इसके बाद पी. के धुंगन समिति, जीवी. के राव समिति, लक्ष्मीमल सिंधवी प्रतिवेदन, हरलाल सिंह खर्रा समिति आदि ने भी पंचायतीराज व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए विभिन्न सुझाव दिए। 1965 में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 64 वें संविधान संशोधन विधेयक के माध्यम से पंचायतीराज को संविधानिक स्तर प्रदान करने का प्रयास किया परन्तु वे सफल नहीं हो सके। सन् 1993 में नरसिम्हा राव सरकार ने 73वें व 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से ग्रामीण व शहरी स्थानीय निकायों को सांविधानिक स्तर प्रदान कर दिया। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम ने 20 लाख से अधिक जनसंख्या वाले राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायतीराज संस्थाओं के गठन का प्रावधान कर दिया। 5 साल बाद चुनाव, महिलाओं, अनुसूचित जातियों एवं जन जातियों के आरक्षण का प्रावधन। ग्राम सभा, राज्य निर्वाचन आयोग, राज्य वित्त आयोग की व्यवस्था, संविधान में अनुसूची 11 (ग्यारह) जोड़ी गई जिसमें 29 विषयों का वर्णन है जो पंचायती राज संस्थाओं को सौंपे

गए हैं। अंकेक्षण एवं लेखांकन का प्रावधान एवं 74 वें संविधान संशोधन अधिनियम में जिला नियोजन समिति की व्यवस्था की गयी है। ग्रामीण विकास की दिशा में यह एक अभूतपूर्व कदम है।

9.3.1 पंचायतीराज–गठन, कार्य तथा प्रचलन

पंचायतीराज को 1992 के 73 वें संविधान संशोधन के उपरान्त भारत के लगभग सभी राज्यों में अपने–अपने कानूनों में संशोधन कर अपने ग्रामीण स्थानीय स्वशासन संरचनाओं को उसके अनुरूप बनाने का प्रयास किया है। कुछ राज्यों को छोड़कर (जिन की जनसंख्या 20 लाख से कम) सभी राज्यों में तीन स्तरीय पंचायतीराज की व्यवस्था की है। जिला स्तर पर जिला परिषद, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति एव ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत।

चार्ट 12.2

पंचायती की संरचना

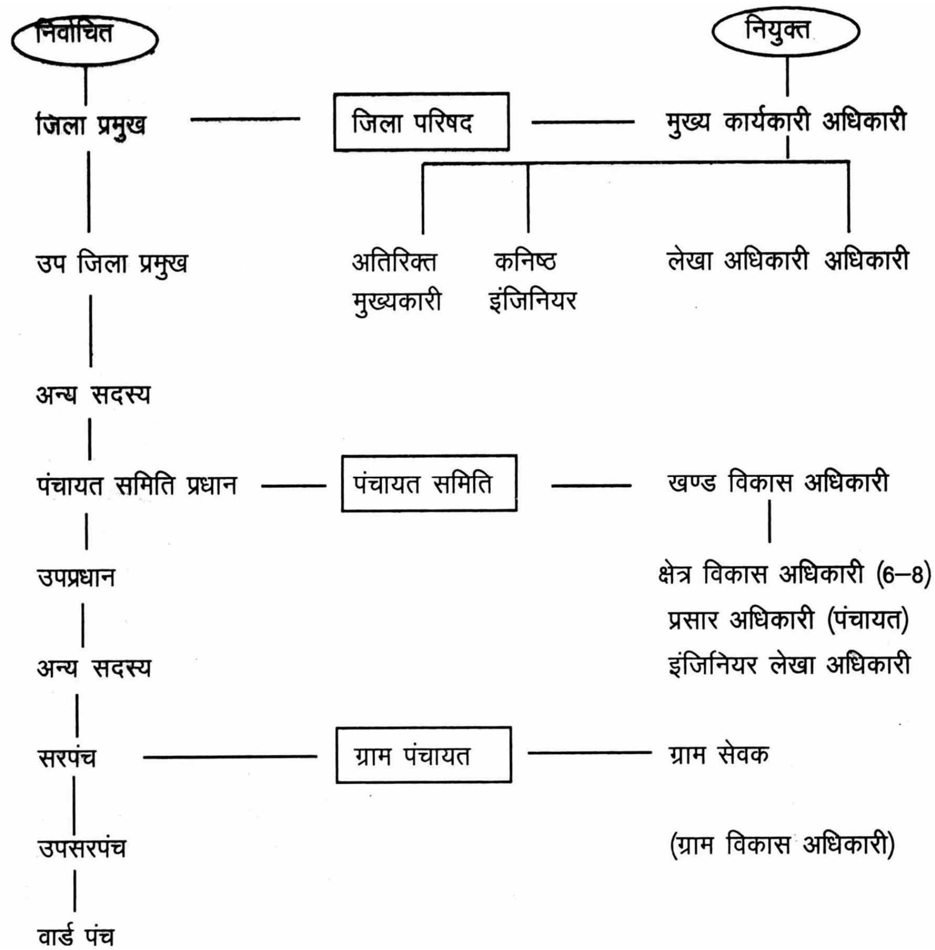

जम्मू व कश्मीर को छोड़कर सभी राज्यों में जिला परिषद पंचायतीराज संस्थाओं के दो या तीन स्तरीय व्यवस्था का शिखर होता है। जिला परिषद के कुछ सदस्य पंजीकृत मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते है। कुछ पदेन रूप से इसके सदस्य होते है जैसे सांसद तथा विधायक और पंचायत समिति के अध्यक्ष, जिला परिषद के प्रमुख को निर्वाचित सदस्य अपने में से एक को निर्वाचित करते

हैं। उपप्रमुख का प्रावधान भी है जो निर्वाचित सदस्यों में से ही होता है। स्थानों के आरक्षण के प्रावधनों का सभी स्तरों पर पालन किया जाता है।

चार्ट संख्या 12.3

<u>जिला परिषद की संगठनात्मक संरचना</u>

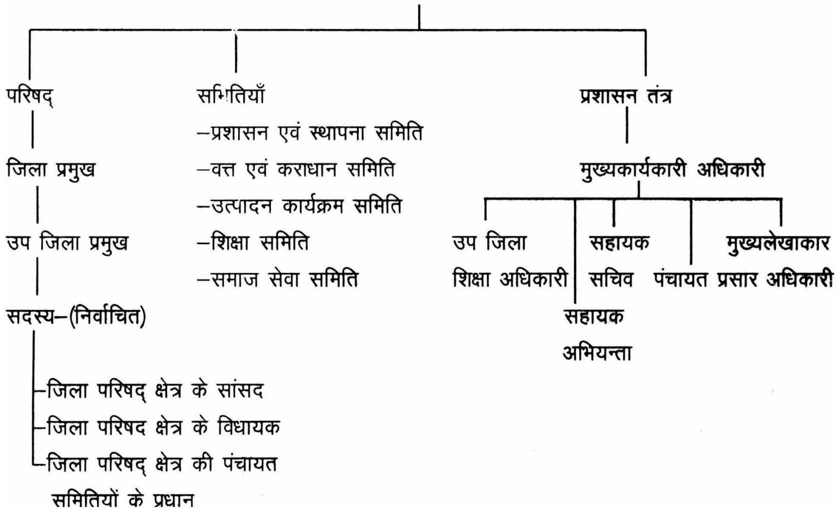

9.3.1.1.1 स्थायी समितियां

जिला परिषद् के विविध कार्य–क्षेत्रों में सुचारू संचालन हेतु अधिनियम में कुछ स्थायी समितियों के गठन का प्रावधान है जिसके अनुसार प्रत्येक जिला परिषद में निम्न स्थायी समितियों का गठन अपेक्षित है।

1. प्रशासन और स्थापना
2. वित्त और कराधान
3. विकास और उत्पादन कार्यक्रम (कृषि, पशुपालन, लघु सिंचाई, सहकारिता, कुटीर उद्योग आदि)
4. शिक्षा, और
5. ग्रामीण जल प्रदाय, स्वास्थ्य और स्वच्छता, कमजोर वर्गो का कल्याण आदि।

जो विषय उपरोक्त समितियों के कार्य–क्षेत्र में नहीं आते, उनके लिए एक छठी स्थायी समिति का भी प्रावधान है।

9.3.1.1.2 प्रशासनिक व्यवस्था:–कार्यालय संचालन हेतु

जिला परिषद् में राज्य सरकार द्वारा एक वरिष्ठ अधिकारी, मुख्य कार्यकारी अधिकारी पद नाम से पदस्थापित किया जाता है। चूंकि जिला ग्रामीण विकास अभिकरण को अब 'ग्रामीण विकास प्रकोष्ठ' के नाम से जिला परिषदों से ही सम्बद्ध कर दिया गया है जिस के फलस्वरूप कार्याधिक्य हो गया है अत: एक अतिरिक्त मुख्य कार्यकारी अधिकारी का पदस्थापन राज्य सरकार द्वारा और किया जाने लगा है। यह अधिकारी भी सामान्यतया राज्य प्रशासनिक सेवाओं से ही होता है। इनके अतिरिक्त अन्य कई अधिकारी व कर्मचारी होते हैं। मत्रालयिक कर्मचारी वर्ग जिला परिषद् का अपना होता है।

मुख्य रूप से जिला परिषद् में मुख्य कार्यपालक अधिकारी की सहायता के लिए निम्न विभिन्न अधिकारी सरकार के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।

1. वरिष्ठ उपजिला शिक्षा अधिकारी
2. पंचायत प्रसार अधिकारी
3. सहायक सचिव
4. सहायक अभियन्ता तथा
5. मुख्य लेखाधिकारी

मुख्य कार्यकारी अधिकारी की शक्तियाँ और कार्य:–

जिला परिषद् के मुख्य कार्यकारी अधिकारी को निम्नांकित शक्तियों के प्रयोग और कार्यो के निर्वहन के लिए अधिनियम द्वारा उत्तरदायी बनाया गया है।

1. जिला परिषद् की नीतियों, विनिश्चयों और अनुदेशों को क्रियान्वित करेगा और जिला परिषद् के सभी कार्यो के त्वरित निष्पादन के लिए आवश्यक उपाय करेगा।
2. इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों और विनियमों के द्वारा उस पर अधिरोपित कर्तव्यों का निर्वाह करेगा
3. जिला परिषद के सामान्य अधीक्षण और नियंत्रण तथा इस निमित्त विनिर्मित नियमों के अधीन रहते हुए जिला परिषद के अधिकारियों और कर्मचारियों पर नियंत्रण रखेगा,
4. जिला परिषद् से संबंधित सभी कागजात और दस्तावेजों की अभिरक्षा के लिए उसे उत्तरदायी बनाया गया है
5. वह जिला परिषद की निधियों में से धन आहरित और संवितरित करेगा तथा ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग और ऐसे अन्य कृत्यों का पालन करेगा, जो विहित किए जाए,
6. जिला प्रमुख के निर्देशों के अधीन, वह जिला परिषद और स्थायी समितियों की प्रत्येक बैठक के लिए नोटिस जारी करेगा तथा उसमें उपस्थित होगा और चर्चा में भाग लेगा किन्तु उसे कोई भी संकल्प प्रस्तुत करने या मत देने का अधिकार नहीं होगा।
7. वह जिला परिषद् द्वारा पारित किसी प्रस्ताव या संकल्प, जो उसकी राय में किसी विधि या अन्य उपबन्धों से असंगत हो, को राज्य सरकार को सूचित करेगा और ऐसे संकल्प को राज्य सरकार के निर्देशों से भिन्न रूप में कार्यान्वित नहीं करेगा।
8. उसे जिले की किसी भी पंचायत या पंचायत समिति के नियंत्रणाधीन किसी भी स्थावर सम्पति या निर्माण कार्य या चल रहे निर्माण कार्य या पंचायत समितियों के अधीन संचालित विद्यालयों, अस्पतालों औषधालयों, टीका केन्द्रों, कुक्कुट शालाओं में प्रवेश करने और उसके निरीक्षण के लिए अधिकृत किया गया है। वह इन संस्थाओं में किसी भी अभिलेख, रजिस्टर या अन्य दस्तावेजों की जांच करने के लिए सक्षम है।

जिला प्रमुख की अनुपस्थिति में मुख्य कार्यकारी अधिकारी जिले में आग, बाढ़, महामारी जैसे अन्य आपात मामलों में किसी भी आवश्यक कार्य के क्रियान्वयन का निर्देश दे सकता है।

जिला परिषद में एक वरिष्ठ उप जिला शिक्षा अधिकारी जिले में पंचायतीराज संस्थाओं द्वारा संचालित प्राथमिक शिक्षा केन्द्रों का पर्यवेक्षण रखता है। इसी प्रकार मुख्य कार्यपालक अधिकारी की

सहायता के लिए एक सहायक सचिव होता है। पंचायती राज संस्थानों द्वारा निष्पादित निर्माण कार्यो पर तकनीकी पर्यवेक्षण व नियंत्रण के उद्देश्य से जिला परिषद् में एक सहायक अभियन्ता भी नियुक्त किया जाता है। जिले की पंचायती राज संस्थाओं के विकास एवं उनके समक्ष आने वाली समस्याओं के समाधान हेतु जिला परिषद् में एक पंचायत प्रसार अधिकारी भी होता है।

9.3.1.1.3 जिला परिषद् की शक्तियाँ एवं दायित्व

जिला परिषदों के कृत्य एवं शक्तियां राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 की धारा 52 में दी गई है। 'तृतीय अनुसूची' में समाहित इन दायित्वों को निम्न शीर्षक में रखा जा सकता है।

1. सामान्य दायित्व :– जिले के आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजना बनाना और उनका क्रियान्वयन सुनिश्चित करना।
2. कृषि विकास कार्यक्रम का संचालन।
3. लघु सिंचाई, भू–जल स्रोत और जल–विभाजक विकास।
4. बागवानी :– ग्रामीण उद्यान तथा फलों और सब्जियों की खेती।
5. सांख्यिकी :– पंचायत समितियों और जिला परिषद के क्रियाकलापों से संबंधित सांख्यिकीय और अन्य सूचना का प्रकाशन, अपेक्षित आकड़ों और, अन्य सूचना का समन्वय और उपयोग, परियोजनाओं और कार्यक्रमों का सर्वाधिक पर्यवेक्षण और मूल्यांकन।
6. ग्रामीण विद्युतीकरण :– विद्युतीकरण की प्रगति का मूल्यांकन करना, तथा विद्युत कनेक्शन।
7. मृदा संरक्षण तथा मृदा विकास कार्य।
8. सामाजिक वानिकी :– सामाजिक और फार्म वानिकी, बागान और चारा विकास को प्रोन्नत करना, बंजर भूमि का विकास, वृक्षारोपण के लिए आयोजन करना और अभियान चलाना तथा कृषिक पौधशालाओ को प्रोत्साहन, वन भूमियों को छोड़कर वृक्षों दल रोपण और रखरखाव, तथा सड़कों के किनारे–किनारे वृक्षारोपण।
9. पशुपालन और डेयरी :– स्थानीय पशु चिकित्सालयों की स्थापना और रखरखाव, चारा विकास कार्यक्रम, डेयरी उद्योग, कुक्कुट पालन और सूअर पालन को प्रोन्नत करना तथा महामारी और सांसर्गिक रोगों की रोकथाम।
10. मत्स्य पालन :– जलाशयों के मलय संवर्धन का विकास, पारम्परिक मतस्यपालन में सहायता करना, मत्स विपणन, सहकारी समितियों का गठन् करना तथा मछुआरों के उत्थान और विकास के लिए कल्याण कार्यक्रम।
11. घरेलू और कुटीर उद्योग :– क्षेत्र में पारम्परिक कुशल व्यक्तियों की पहचान और घरेलू उद्योगों का विकास करना, कच्चे माल की आवश्यकताओं का इस प्रकार से निर्धारण करना कि जिससे समय पर उसका प्रदाय सुनिश्चित किया जा सके, परिवर्तनशील उपदरोक्ता 'भाग के अनुसार डिजाइन और उत्पादन, कारीगरों और शिल्पयों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना और बैंक ऋण दिलवाने हेतु सम्पर्क करना तथा खादी, हस्तकला और ग्राम तथा कुटीर उद्योगों को प्रोन्नत करना।

12. ग्रामीण सड़के और भवन :– स्थानीय सड़कों का निर्माण व रखरखाव जिला परिषद के कार्यालय भवनों का निर्माण और रखरखाव।
13. स्वास्थ्य और स्वास्थिकी :– सामुदायिक और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों औषधालयों, उप–केन्द्रों की स्थापना और रख, प्रतिरक्षीकरण और टीकाकरण कार्यक्रम का क्रियान्वयन, स्वास्थ्य शिक्षा क्रियाकलाप, पंचायत समितियों और पंचायतों की सहायता से स्वास्थ्य शिविरों का आयोजन तथा पर्यावरण प्रदूषण के विरूद्ध उपाय।
14. ग्रामीण आवासन :– बेघर परिवारों की पहचान, जिले में आवास–निर्माण का क्रियान्वयन तथा कम लागत आवासन को लोकप्रिय बनाना।
15. शिक्षा :– उच्च प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना और रख–रखाव, शैक्षणिक क्रियाकलापों को प्रोन्नत करना, प्रौढ़ शिक्षा और पुस्तकालय सुविधाओं के लिए कार्यक्रमों की योजना बनाना। ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान और तकनीकी के प्रचार के लिए प्रसार कार्य तथा शैक्षणिक क्रियाकलापों का सर्वेक्षण और मूल्यांकन।
16. समाज कल्याण और कमजोर वर्गो का कल्याण – अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, और पिछड़े वर्गो को छात्रवृत्तियां, शिक्षा सुविधायें, रोजगार एवं उनके उत्थान एंव विकास के कल्याणझैरी कार्यक्रमों का अभिकल्पन व क्रियान्वयन।
17. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की योजना बनाना, उनका पर्यवक्षेण, मूल्यांकन करना और क्रियान्वयन करना।
18. समाज सुधार क्रियाकलाप :— महिला एवं बाल विकास, अन्धविश्वास, जातिवाद, छुआछूत, नशाखोरी दहेज के विरूद्ध अभियान, सामुदायिक विवाह और अन्तर्जातीय विवाहों का प्रोत्साहित करना, बन्धुआ मजदूरों की पहचान करना, उन्हे कराना और उनका पुनर्वास। पारम्परिक उत्सवों को नया रूप देना और उन्हें समाज–प्रिय बनाना।
19. जिला परिषदों के साधारण दायित्वों जैसे–पंचायत समितियों पंचायतों को अनुदान का वितरण करना, पंचायत समितियों के बजट का परीक्षण, बड़ी परियोजनाओं का क्रियान्वयन तथा जिले के पंच, सरपंचों, प्रधानों आदि के लिए सेमिनारों / सम्मेलनों का आयोजन।

9.3.2 जिला आयोजना समिति

74वें संविधान संशोधन अधिनियम के प्रावधान के अनुसार राज्य के प्रत्येक जिले में एक ''जिला आयोजना समिति' ' का गठन किया गया है। जिला परिषद् का प्रमुख इसका अध्यक्ष होता है। इस समिति में जिला परिषद की स्थायी समितियों के अध्यक्ष, जिले की पंचायत समितियों एवं नगरपालिकाओं के अध्यक्ष तथा कृषि, सहकारी समितियों एवं विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधियों के अलावा आमंत्रित सदस्यों के रूप में विषय विशेषज्ञ भी होते हैं। जिला योजना समिति से अपेक्षित है कि पंचायत समितियों तथा नगर पालिकाओं से जो प्रस्ताव आये उन्हें संगठित एवं समेकित करके ' 'जिला योजना ' को अंतिम रूप देकर उसे स्वीकृति प्रदान करे तथा उसकी किरियान्विति सुनिशिचित करे।

संविधन के अनुच्छेद 243 जेड डी में दिये गये प्रावधानों के अनुसार जिला आयोजना समिति का समावेश राजस्थान पंचायतीराज अधिनियम, 1994 की धारा 121 में किया गया है। जिला आयोजना समिति में कुल 25 सदस्य होंगे, उनमें से 20 सदस्य जिले के ग्रामीण क्षेत्रों और नगरीय क्षेत्रों की जनंसख्या के अनुपात में जिला परिषद। नगर निकायों के निर्वाचित जनप्रतिनिधियों में से और उन के द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे। पाँच नाम निर्देशित सदस्य जिन में जिले का कलेक्टर, मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जिला परिषद, अतिरिक्त मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जिला परिषद तथा संसद सदस्यों / विधान सभा सदस्यों या राज्य सरकार द्वारा निर्देशित अभिकरणों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों में से दो व्यक्ति।

मुख्य आयोजन अधिकारी, जिला आयोजना समिति के सचिव नियुक्त किये गये हैं। जिला आयोजना शाखा जिला परिशद के प्रशासनिक नियंत्रण में मुख्य आयोजना अधिकारी के अधिन जिला आयोजना समिति के सचिवालय का कार्य कर रही है। पंचायतीराज विभाग जिला आयोजना समिति का प्रशासनिक विभाग है।

9.3.2.1 जिला आयोजना समिति की शक्तियाँ और कार्य

जिला आयोजना समिति पंचायत समितियों और नगरपालिका निकायों द्वारा तैयार वार्षिक योजनाओं का समेकन कर, सम्पूर्ण जिले के लिए विकास योजना का प्रारूप तैयार कर, राज्य सरकारें को अग्रेषित करेगी।

समिति विकास योजना प्रारूप तैयार करते समय स्थानिक आयोजन, जल और अन्य भौतिक और प्राकृतिक स्रोतों के अंश बंटन, अधोसंरचना के एकीकृत विकास और पर्यावरण संरक्षण को सम्मिलित करते हु ए पंचायती राज संस्थाओं और नगर पालिकाओं के बीचके सामान्य हितों के विषय, और उपलब्ध सोतों चाहे वित्तीय हो या अन्य का ध्यान रखेगी। व्यवहार में तकनीकी एवं वित्तीय कठिनाइयों के कारण जिला आयोजना समितियां अभी प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर पा रही है।

9.3.3 खण्ड स्तर–पंचायत समिति

ग्रामीण विकास कार्यो के क्रियान्वयन की दूसरी इकाई खण्ड स्तर है जो जिला एवं ग्राम पंचायत के मध्य की इकाई है, जिसको पंचायती राज व्यवस्था में विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। खण्ड स्तर पर कार्यरत इस निकाय को पंचायत समिति कहते है। पंचायत समिति सदस्यों का प्रत्यक्ष निर्वाचन होता है एवं अपने में से ही पंचायत समिति का प्रधान एंव उपप्रधान अप्रत्यक्ष रूप से चुनते हैं।

चार्ट संख्या 12.4

<u>पंचायत समिति की संगठनात्मक सरंचना</u>

पंचायत समिति

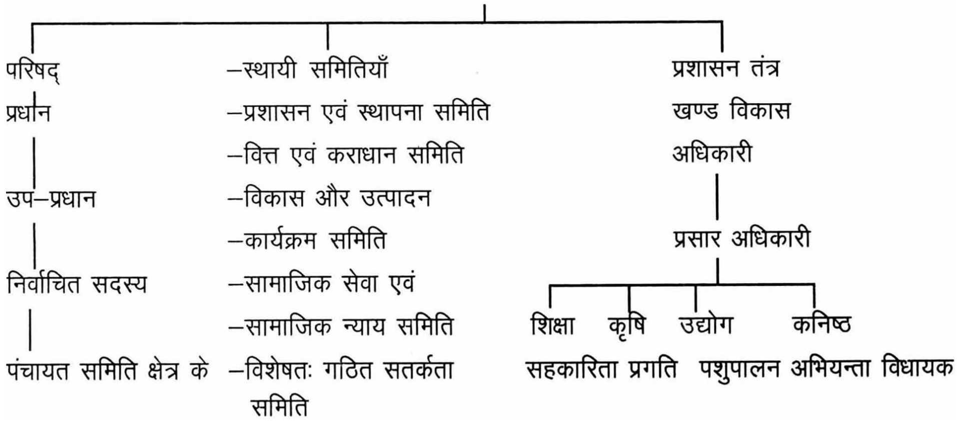

9.3.3.1 पंचायत समिति के कार्य :- पंचायत समितियों द्वारा निष्पादित किये जाने वाले कार्यो और शक्तियाँ निम्न लिखित है:–

1. **साधारण कार्य :**– पंचायत समिति क्षेत्र की सभी पंचायतों की वार्षिक योजनाओं पर विचार करना और उन्हें समेकित करना और जिला परिषद को समेकित योजना प्रस्तुत करना; पंचायत समिति का वार्षिक बजट तैयार करना सरकार तथा जिला परिषद द्वारा सौंपे गए कार्य। प्राकृतिक आपदाओं में सहायता उपलब्ध कराना।
2. कृषि विस्तार को सम्मिलित करते हुए कृषि।
3. भूमि सुधार और मृदा संरक्षण।
4. लघु सिंचाई, जल–प्रबन्धन और जल–विभाजन विकास।
5. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का क्रियान्वयन।
6. पशुपालन, डेयरी और कुक्कुट पालन।
7. मत्स्यपालन विकास को प्रोन्नत करना।
8. खादी, ग्राम और कुटीर उद्योग।
9. ग्रामीण आवासन योजनाओं का क्रियान्वयन और आवास उधार किस्तों की वसूली।
10. पेयजल व्यवस्था।
11. सामाजिक और फार्म वानिकी, ईधन और चारा।
12. सड़कें, भवन, पुलियाएं, पुल, नौघाट, जलमार्ग और अन्य संचार साधनों का विकास।
13. गैर–परम्परागत ऊर्जा स्रोतों विशेषतः सौर प्रकाश और ऐसी ही अन्य युक्तियों की प्रोन्नति और रख–रखाव।
14. प्राथमिक विद्यालयों सहित शिक्षा, प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा।
15. ग्रामीण शिल्पी और व्यावसायिक प्रशिक्षण को बढ़ावा देना।

16. सामाजिक और सांस्कृतिक क्रियाकलापों, प्रदर्शनियों, प्रकाशन की प्रोन्नति, पशुमेलों सहित मेलों और उत्सवों का विनियमन।
17. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण।
18. महिला और बाल विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन।
19. विकलांगों, मंदबुद्धि वालों, कमजोर वर्गो विशिष्ट: अनुसूचित जातियों, जनजातियों और पिछड़े वर्गो सहित सामाजिक कल्याण।
20. सामुदायिक आस्तियों का रख–रखाव
21. ऐसी सांख्यिकी का संग्रहण और संकलन जो पंचायत समिति, जिला परिषद् या राज्य सरकार द्वारा आवश्यक पाई जाएँ।
22. अग्नि, बाढ़, महामारी या अन्य व्यापक आपदाओं में सहायता करना
23. सहकारिता :– सहकारी गतिविधियों को, सहकारी समितियों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण में सहायता करके प्रोन्नत करना।
24. पुस्तकालय का विकास करना।
25. पंचायतों का उनके सभी क्रियाकलापों और गांव और पंचायत योजनाओं के निर्माण में पर्यवेक्षण और मार्गदर्शन।

त्रिस्तरीय पंचायतीराज में, पंचायत समिति को सबसे आधेक शक्तिशाली इकाई के रूप में स्थापित किया गया है। बलवंत राय मेहता समिति ने भी पंचायत समिति को यह भूमिका निभाने के लिए अभिकल्पित किया था।

9.3.3.2 खण्ड विकास अधिकारी

पंचायत समिति का प्रशासनिक मुखिया खण्ड विकास अधिकारी होता है। इसकी सहायता के लिए कर्मचारियों और अधिकारियों का स्टॉफ उपलब्ध करवाया जाता है। खण्ड विकास अधिकारी पंचायत समिति के कार्मिकों का मुखिया होता है तथा पंचायत समिति प्रशासन का अध्यक्ष भी होता है, जो पंचायत समिति के दैनिक–प्रशासनिक कार्यो का संचालन करता है। खण्ड विकास अधिकारी की नियुक्ति राज्य सरकार करती है । वह पंचायत समिति प्रधान के प्रशासनिक नियंत्राण में कार्य करता है।

कार्य एवं शक्तियाँ:–

विकास अधिकारी पंचायत समिति का मुख्य कार्यकारी होने के नाते सभी कार्यरत प्रसार अधिकारी प्रशासनिक दृष्टि से इसके नियंत्रण में होते हैं । इस के कार्य निम्नलिखित है:–

1. वह पंचायत समिति तथा उसकी विभिन्न स्थायी समितियों के द्वारा निर्धारित नीतियों और पारित प्रस्तावों के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी होता है।
2. पंचायत समिति के सचिव के रूप में पंचायत समिति के प्रधान या अध्यक्ष के निर्देशन में कार्य करते हु ए वह पंचायत समिति तथा उसकी स्थायी समितियों की बैठक की कार्यवाही का नियमित रिकार्ड रखता है।
3. वह पंचायत समिति की बैठक में सम्मिलित होता है, वहां उठाए गए प्रश्नों का उत्तर देता है, विचार विमर्श में सम्मिलित होता है किन्तु निर्णय लेते समय यदि मतदान की स्थिति आती है तो वह उसमें सम्मिलित नहीं होता।

4. पंचायत समिति के समस्त अभिलेखों या प्रमाण–पत्रों को वह अपने हस्ताक्षर द्वारा प्रामाणिकता प्रदान कर, उन्हें जारी करता है।
5. पंचायत समिति के कोष से धन निकालना और उसे सही प्रकार से व्यय या वितरित करने के लिए वह उत्तरदायी होता है। इसी अधिकार के अन्तर्गत वह पंचायतों की वित्तीय स्थिति का निरीक्षण भी कर सकता है।
6. विकास अधिकारी पंचायत समिति की स्वीकृति से, पंचायत समिति की ओर से संविदा करने और उसे निष्पादित करने के लिए उत्तरदायी माना जाता है।
7. वह पंचायत समिति में कार्यरत समस्त कर्मचारीगण तथा अधिकारियों का एवं पंचायत समिति द्वारा निष्पादित सेवाओं में संलग्न कर्मचारियों पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण करता है।
8. यदि पंचायत समिति में. किसी प्रकार की वित्तीय अनियमितता, गबन या धोखाधड़ी हो जाए तो प्राथमिक रूप से समुचित कार्यवाही करता है, और नियमानुसार उच्चाधिकारियों को उसकी सूचना देता है।
9. राज्य सरकार द्वारा पंचायत समिति को जो परियोजनाएँ वित्तीय मद सहित हस्तान्तरित की जाती है, उनके सही कार्यान्वयन के लिए वह उत्तरदायी होता है। वह पंचायत समिति के अन्तर्गत आने वाली समस्त पंचायतों, समस्त' कर्मचारियों, प्रतिनिधियों और स्वैच्छिक संस्थाओं में सामंजस्य स्थापित करता है ताकि योजना का अधिकतम लाभ जन साधारण को मिल सके।
10. ग्राम सभा व वार्ड सभा की बैठकें कार्यक्रमानुसार आमंत्रित करना, उनमें स्वयं या अपने प्रतिनिधियों को उपस्थित करना तथा इन बैठकों की कार्यवाही को अभिलिखित करवाना।

पंचायत समिति के विकास अधिकारी द्वारा निष्पादित भूमिका को तीन रूपों में देखा गया है। प्रथम: पंचायत समिति कार्यालय के प्रमुख के रूप में, द्वितीय: पंचायत समिति स्तर पर कार्य करने वाले समस्त प्रसार अधिकारियों के दल क्ल शिखर अधिकारी है और तृतीय पंचायत समिति का सचिव है।

खण्ड विकास अधिकारी के कार्यो पर दृष्टिपात करने पर प्रतीत होता है कि विकास अधिकारी कार्य भार से दबा हुआ है। उस पर इतने कार्यो की 'जिम्मेदारी डाल दी गई है कि वह कार्यो का समुचित निरीक्षण और पर्यवेक्षण इतनी क्षमता और दक्षता से नहीं कर पाता है। यह स्थिति पंचायती राज संस्थाओं के अदर्शन के प्रतिकूल है। जिस का समाधान जरूरी है। साथ ही विकास अधिकारी एवं पंचायत समिति प्रधान के संबंधों में कड़वाहट भी एक उभरती हुई समस्या है जिस का निवारण अपरिहार्य रूप से किया जाना चाहिए।

पंचायत समिति के प्रशासन तंत्र में विकास अधिकारी के अलावा प्रसार अधिकारियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। विकास अधिकारी के अधीन पंचायत समिति में शिक्षा, सहकारिता, पंचायत प्रसार, प्रगति प्रसार अधिकारी कार्य करते हैं। पंचायत समिति पंचायतीराज का ऐसा निकाय है जिसे विकास कार्यक्रमो के कार्यान्वयन का दायित्व निभाना पड़ता है इसीलिए राज्य सरकार के विभिन्न विकास से संबंधित विभागों के कुछ कनिष्ठ अधिकारी पंचायत समिति के स्तर पर विकास अधिकारी के नियंत्रण में नियुक्त किए जाते हैं।

9.3.4 ग्राम स्तर–ग्राम पंचायत

पंचायतीराज संस्थाओं की मूल इकाई ग्राम है जहाँ विकास योजनाओं का एवं विकेन्द्रिकृत विकास का वास्तविकता में रूपांतरण होता है। इस स्तर पर स्थानीय प्रशासन की इकाई को ग्राम पंचायत कहते हैं। ग्राम पंचायत एक ऐसी निर्वाचित इकाई है जो ग्राम सभा की कार्यकारी या निविाचित समिति होती है।

ग्राम पंचायत का चुनाव ग्राम सभा करती है जिस में सरपंच एवं पंचों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है एवं उपसरपंच पंचों में से अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होता है। सरपंच ग्राम पंचायत का अध्यक्ष होता है।

चार्ट संख्या 12.5

ग्राम पंचायत की संगठनात्मक संरचना

सरपंच (अध्यक्ष)

उपसरपंच

वार्डपंच (निर्वाचित सदस्य)

पंचायत सचिव (ग्राम सेवक)

नये अधिनियम के तहत निम्न विषयों के लिए स्थायी समितियों के गठन का प्रावधान है:–

1. प्रशासन और स्थापना
2. वित्त और कराधान
3. विकास और उत्पादन कार्यक्रम (कृषि, पषुपालन, लघु सिंचाई, सहकारिता, कुटीर उद्योग आदि)
4. शिक्षा और
5. ग्रामीण जल प्रदाय, स्वास्थ्य और स्वच्छता, कमजोर वर्गो का कल्याण आदि।

जो विषय उपरोक्त समितियों के कार्य–क्षेत्र में नहीं आते, उनके लिए एक छठी स्थायी समिति का भी प्रावधान है। ये समितियां इस प्रकार गठित की जावेंगी कि प्रत्येक सदस्य कम से कम एकं समिति में स्थान प्राप्त कर सकें, सरपंच प्रशासन और स्थापना समिति का पदेन सदस्य और अध्यक्ष होता है जबकि अन्य सभी स्थायी समितियों के अध्यक्ष ' 'प्रशासन और स्थापना समिति ' के पदेन सदस्य होते हैं।

9.3.4.1 शक्तियां एवं दायित्वः–

सरकार द्वारा प्रवर्तित पंचायतीराज के अधिनियम में प्रावधान किया गया है कि समय–समय पर सरकार द्वारा प्रदान शक्तियों के अधीन कार्य करेगी। पंचायतों के लिए निर्धारित कार्य एवं शक्तियाँ निम्न प्रकार हैः–

1. **साधारण कार्यः–** पंचायत क्षेत्र के विकास के लिए वार्षिक योजनाएं तैयार करना, वार्षिक बजट तैयार करना, गांव की आवश्यक सांख्यिकी रखना।
2. **प्रशासन के क्षेत्र मेंः–** परिसरों का संख्याकन, जनगणना, ग्रामीण विकास स्कीमों के कार्यान्वयन के लिए आवश्यक प्रयासों और वित्त की उपेक्षा दर्शित करने वाला वितरण तैयार करना, मेलों, तीर्थ यात्रा और सामुदायिक भूमियों पर नियंत्रण, जन्म, मृत्यु एवं विवाह पंजीकरण आदि।
3. कृषि विस्तार सहित कृषि।
4. पशुपालन, डेयरी और कुक्कुट पालन।
5. मत्स्य पालन।
6. सामाजिक और फार्म वानिकी, लघु वन उपज, ईधन और चारा।
7. लघु सिंचाई।
8. खादी, ग्राम और कुटीर उद्योग।
9. ग्रामीण आवासन।
10. पेयजल व्यवस्था।
11. सड़कों, भवन, पुलियाएं, पुल, नौघाट, जलमार्ग और अन्य संचार –साधन।
12. ग्रामीण विघुतीकरण जिसमें लोक मार्गो और अन्य स्थानों की प्रकाश व्यवस्था करना और उसका रख–रखाव सम्मिलित है।
13. गैर–परम्परागत ऊर्जा स्रोतों का विकास करना।
14. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम :– अधिकाधिक नियोजन और उत्पादक अस्तियों आदि के सृजन के लिए गरीबी उन्मूलन संबंधी जन चेतना को और उसमें भागीदारी को प्रोन्नत करना, ग्राम सभाओं के माध्यम से विभिन्न कार्यक्रमों के अधीन लाभार्थियों –का चयन। इन कार्यक्रमों के प्रभावी कार्यान्वयन और अनुवीक्षण में भाग लेना।
15. प्राथमिक शिक्षा – समग्र साक्षरता के लिए लोक चेतना विकसित करना। प्राथमिक विद्यालयों का प्रबन्धन करना।
16. प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा :– प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रम को प्रोन्नत और उसका अनुवीक्षण करना।
17. ग्राम पुस्तकालय और वाचनालय की व्यवस्था करना।
18. सामाजिक और सांस्कृतिक क्रियान्वयन को प्रोन्नत करना ।
19. बाजार और मेलों (पशु मेले भी) और उत्सवों का विनियमन।

20. ग्रामीण स्वच्छता :– सामान्य स्वच्छता रखना, लोक सडकों, नालियों, जलाशयों की सफाई ग्रामीण शौचालयों का निर्माण व रख रखाव जीव–जन्तु शवों का निपटारा व स्नान घाटों का प्रबन्धन।
21. लोक स्वास्थ्य और परिवार कल्याण – परिवार कल्याण कार्यक्रमों का क्रियान्वयन, महामारी की रोक और उपचार के उपाय, मानव और पशु टीकाकरण, आवारा कुत्तों का नाशन,
22. महिला और बाल विकास:– महिला और बाल कल्याण कार्यक्रमों का क्रियान्वयन, पोषाहार कार्यक्रम और आगनबाड़ी केन्द्रों का पर्यवेक्षण।
23. विकलांगों और मदबुद्धि वालों के कल्याण सहित समाज कल्याण वृद्ध और विधवा पेंशन तथा सामाजिक बीमा योजनाओं में सहायता करना।
24. कमजोर वर्गो और विशेषतया अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का कल्याण।
25. लोक वितरण व्यवरथा को सुचारू रूप से चलाना।
26. सामुदायिक आस्तियों का रखरखाव।
27. शराब की दुकानों का विनियमन आदि।

9.3.4.2 ग्राम सभा:–

प्रत्येक ग्राम पंचायत के क्षेत्राधिकार के अन्दर स्थित गांव व गांवों के समूह के लिए 'ग्राम सभा' का प्रावधान है जिसमें वे सभी वयस्क जिनका मतदाता सूची में नाम है सदस्य होते हैं। ग्राम सभा की वर्ष में दो बैठकें होती हैं। अध्यक्षता सरपंच द्वारा की जाती है। ग्राम सभा में ग्राम पंचायत निम्न बिन्दु विचारार्थ रखे जाते हैं।

(अ) गत वर्ष के लेखे।

(व) गत वर्ष के ग्राम पंचायतों के कार्यो का प्रशासनिक प्रतिवेदन।

(स) अगले वित्तीय वर्ष के लिए प्रस्तावित विकास कार्य।

(द) अंतिम अंकेक्षण प्रतिवेदन तथा उसकी अनुपालना।

ग्राम सभा की बैठकों में विचारार्थ रखे जाने वाले अन्य बिन्दु इस प्रकार हैं.

1. पंचायत क्षेत्र में क्रियान्वित किये जाने वाले विकास कार्यो में सहयोग
2. विविध योजनाओं में लाभान्वित होने वाले गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों का चयन।
3. सामुदायिक कल्याण के कार्यो हेतु स्वैच्छिक धन–जन सहयोग की व्यवस्था।
4. पंचायत क्षेत्र में प्रौढ़ शिक्षा तथा परिवार कल्याण कार्यक्रम का प्रसार।
5. ग्राम समुदाय के विभिन्न वर्गो में परस्पर सहयोग की भावना का विकास करना।

ग्राम सभा ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। विकास कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन में सामाजिक अंकेक्षण के माध्यम से अपनी भूमिका का सफल निर्वाह कर सकती है पर आवश्यकता है जागरूकता की जो अभी तक वांछित स्तर तक नहीं पहु च पायी है।

9.3.4.3 ग्राम सेवक (पंचायत सचिव)

प्रत्येक पंचायत के सचिव सरपंच के नियंत्रण में रहते हु ए निम्न दायित्व निभाता है

1. पंचायत के अभिलेख और रजिस्टर अपनी अभिरक्षा में रखना।

2. पंचायत के निमित प्राप्त धन राशियों के लिए अपने हस्ताक्षर से रसीदें जारी करना।
3. पंचायत निधि के लेखे रखने के लिए उत्तरदायी होना।
4. पंचायत निधि की सुरक्षित अभिरक्षा के लिए उत्तरदायी होना।
5. नियमों के अधीन अपेक्षित समस्त विवरण और रिपोर्ट तैयार करना।
6. समस्त ऐसे संदाय करना, जो पंचायत द्वारा मंजूर किए जाएं और
7. ऐसे अन्य कार्य और कर्तव्य करना जो नियमों के अधीन विहित या प्रत्यायोजित किए जाएं।

9.3.5 समालोचना

पंचायतीराज संस्थाओं के अवधारणात्मक एवं वैचारिक आयामों की सार्थकता के लिए यह आवश्यक है कि उन का ढांचा उनके दायित्वों के अनुरूप ही बनाया गया हो। जहां तरह इन संस्थाओं के कार्यो एवं दायित्वों का प्रश्न है, वे विकास की संभावनाओं द्वारा ही निर्धारित किये जाते हैं। आज पंचायती राज संस्थाओं का स्वरूप इस प्रकार का है कि वे भारत के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक विकास के क्रम में महत्वपूर्ण भूमिका के निर्वहन में सक्षम है। एक तरफ से ये देश के विकास प्रशासन में जन–साधारण की सहभागिता के संस्थागत रूप तो दूसरी तरफ स्थानीय विकास परियोजनाओं के क्रियान्वयन का उपयुक्त अभिकरण हैं जो विकास योजनाओं को बनाने और उनके क्रियान्वयन में सक्रिय भूमिका निभा सकते है और वह भी इस रूप में, कि उन के निर्णयों में स्थानीय आवश्यकताओं तथा स्थानीय संसाधन पूर्णत: प्रतिबिम्बित हों एवं स्थानीय लोगों की सहभागिता सुनिश्चित है। इस दृष्टि से विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में पंचायतीराज संस्थाओं की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है।

पंचायती संस्थाओं की भूमिका तभी प्रभावी हो सकती है जब पंचायती राज संस्थाओं की सहभागिता योजना बनाने से लेकर उसके क्रियान्वयन, निरंतर समीक्षा और आकलन आदि स्तरो पर हों। इसी पृष्ठभूमि में, वे संविधान संशोधन के पश्चात् ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक विकास से जुड़ी सभी विकास परियोजनाऐ इस प्रकार से बनायी गयीं है जिन में पंचायती राज के तीनों स्तरों–ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद् की महत्वपूर्ण भूमिकाऐं हैं। किन्तु पंचायतीराज संस्थाएं अभी भी अपने वांछित उद्देश्यों का साकार रूप प्राप्त नहीं कर पायी हैं। ये संस्थाएं अपनी अवधारणात्मक, प्रक्रियात्मक एवं अन्य भौतिक समस्याओं के कारण इन के सृजन के लक्ष्य से कोसों दूर हैं। पंचायतीराज ने संस्थागत रूप तो प्राप्त कर लिया किन्तु पंचायतों का कार्यात्मक सशक्तिकरण नहीं हो पाया है। इन संस्थाओं को वित्तीय संकट, तकनीकी क्षमता के अभाव, जनप्रतिनिधियों–अधिकारियों के मध्य संघर्ष, अधिकारी तंत्र की नकारात्मक भूमिका, अपर्याप्त राजनैतिक इच्छाशक्ति एवं जन जागरूकता का अभाव का सामना करना पड़ रहा है। अत: क्रियात्मक रूप में से संस्थाए अभी तक सुदृढ़ रूप धारण नही कर पायी है जो विकास के लिए अति आवश्यक है।

अत: समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय लोकतंत्र के राजनीतिक तंत्र रूपी शरीर को पूर्ण: स्वस्थ करने के प्रयास में केवल एक अंग को पुनर्जीवित करने का काम हु आ है और भारतीय लोकतंत्र के अन्य अंगों के साथ–साथ आवश्यक परिवर्तन करने का काम नहीं हु आ है। जैसे–केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के मामले में अप्रर्याप्त विकेन्द्रीकरण की दिशा में कोई प्रयास नहीं हु आ है और ऐसे परिवर्तन की अनुपस्थिति में राज्य सरकारें भी पंचायतों के साथ वैसा ही व्यवहार करती है जैसा उनके साथ केन्द्र

सरकार द्वारा हुआ है। इसलिए कुछ ऐसे कदम उठाने की आवश्यकता है जिससे पंचायतों की सफलता सुनिश्चित हो सके। सुझाव के रूप में कहा जा सकता है की पंचायतीराज संस्थाओं के चुनाव, अधिकार, वित्तिय व्यवस्था, स्वायत्तता आदि के बारे में राजनीतिक इच्छा शक्ति को अनुकूल बनाने की आवश्यकता है। अधिकारी तंत्र द्वारा पंचायती राज को पूर्ण सहयोग और सहायता दी जाए। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में कार्मिक वर्ग को सुदृढ़ बनाने, कार्यकुशलता बढ़ाने और उनके कार्यकरण एवं भूमिका के बारे में अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करने की आवश्यकता है। पंचायतीराज की वित्तीय व्यवस्था को अथवा इनके वित्तीय संसाधनों को सुनिश्चित करने और व्यवस्थित करने की आवश्यकता है। निर्वाचित और नियुक्त दोनों वर्गो के लिए आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण व्यवस्था होनी चाहिए। आम जनता में जागरूकता विकसित करनी होगी। स्थानीय स्तर पर आम जनता की इन संस्थाओं के विरूद्ध शिकायत निराकरण के लिए संवैधानिक तंत्र की स्थापना की जानी चाहिए।

पंचायतीराज संस्थाओं को सभी विकासात्मक कार्यो के स्थानान्तरण के बाद सरकार का पूरा सहयोग आवश्यक है। स्थानीय स्तर पर प्रबंध सूचना तंत्र तथा सांख्यिकी सेवा व्यवस्था को मजबूत करने की आवश्यकता होगी। स्थानीय स्तर पर कार्यक्रमों, गतिविधियों इत्यादि के लिए मूल्यांकन तंत्र को मजबूत करना होगा। विकास कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन के लिए सामाजिक अंकेक्षण की व्यवस्था के लिए ग्राम सभा को मजबूत बनाने की आवश्यकता है। पंचायतीराज के गठन, चुनाव, क्षेत्राधिकार, कार्यकरण इत्यादि के बारे में नियमित रूप से अध्ययन, मूल्यांकन एंव सुधार आवययक है तभी पंचायतीराज विकास का एक सफल उपकरण बन सकता है।

9.4 सारांश

गांधी जी का विश्वास था कि भारत के प्रत्येक गांव में स्वशासन की संस्थाओं में प्रजातांत्रिक आजादी की नींव रखी जानी चाहिए। उन्होंने यह प्रेरणा परम्परागत पंचायतों ' 'ग्राम गणतंत्रों' ' से प्राप्त की जिसे उन्होंने पंचायतीराज कहा। उनका अभिमत स्वतंत्र भारत में चुनी हुई पंचायतों के माध्यम से अपने ही निवासियों के विकास और कल्याण में लोगों की वास्तविक भागीदारी में समकालीन प्रजातंत्र पर आधारित था। 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1993 से प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण के एक नए युग की शुरुआत हुई जिसके अन्तर्गत शक्तियां और जिम्मेदारियां दोनो ही, जिला, मध्यवर्ती और ग्राम स्तरों पर चुनी हुई पंचायतों को सौंपी गई है। समावेशी विकास को एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य निर्धारित किया गया है, पंचायतीराज संस्थाओं को पर्याप्त रूप से सशक्त बनाना और इसका उपयोग, समावेशी विकास के लिए महत्वपूर्ण अनिवार्य सेवाएं प्रदान करने का एक प्रमुख साधन बनाना है। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण का जिला परिषद में विलय पंचायतीराज के सशक्तिकरण की दिशा में एक संस्थागत कदम है किन्तु नाम परिवर्तन से अभी तक यह नौकरशाही प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हो पाया है। अधिकारी तंत्र की नकारात्मक मानसिकता एवं असहयोग की भावना ग्रामीण विकास में एक बाधा है। पंचायतीराज ने संस्थागत रूप प्राप्त किया है किन्तु कार्यात्मक रूप एवं विकास का वास्तविक उपकरण बनाने में कई सोपान पार करने पड़ेगें। वित्तिय रूप से सशक्त करना पड़ेगा संरचनात्मक एवं प्रक्रियात्मक सुधारों की आवश्यकता है। भ्रष्टाचार एवं कार्य कुशलता बढ़ानी पड़ेगी पारदर्शिता लानी होगी तभी ये संस्थाएं सुशासन का भाग बन पायेगीं।

9.5 शब्दावली

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण :– अधिक से अधिक लोग अपनी सरकार के सभी स्तरों यानी राष्ट्रीय, राज्य तथा विशेषतौर पर स्थानीय धरातल पर जुड़े। अपनी विकास की नीतियों का निर्माण क्रियान्वयन एवं मूल्याकंन स्वयं करें।

ग्राम सभा :– ग्राम पंचायत के सभी मतदाताओं की सभा, जो ग्राम पंचायत के कार्यो, नीतियों एवं बजट का मूल्यांकन करती है।

सामाजिक अंकेक्षण :– ग्रामीण विकास कार्यो में अनियमितताओं की जाँच स्वंय स्थानीय व्यक्तियों, ग्राम सभा एवं अन्य स्वंय सहायता समूह द्वारा करना ही सामाजिक अंकेक्षण है।

9.6 अभ्यास प्रश्न

1. जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के संगठन एवं कार्यो का वर्णन कीजिए।
2. जिला परिषद् के ग्रामीण विकास प्रकोष्ठ की ग्रामीण विकास में क्या भूमिका है समालोचना कीजिए।
3. पंचायतीराज की त्रिस्तरीय संरचना का वर्णन कीजिए।
4. जिला परिषद के संगठन एवं कार्यो का सविस्तार वर्णन कीजिए।
5. “पंचायत समिति” ग्रामीण विकास का सशक्त अभिकरण स्पष्ट कीजिए।
6. जिला परिषद की प्रशासनिक व्यवस्था का वर्णन करते हुए ग्रामीण विकास में जिला परिषद के मुख्य कार्यकारी की भूमिका का वर्णन कीजिए।
7. खण्ड विकास अधिकारी के कार्यो का सविस्तार वर्णन कीजिए।
8. जिला आयोजना समितियों की स्थिति पर टिप्पणी लिखिए।
9. ग्राम पंचायत के प्रमुख कार्यो का उल्लेख कीजिए।
10. ग्रामीण विकास में ग्राम सभा की भूमिका को प्रभावशाली कैसे बनाया जा सकता है। टिप्पणी कीजिये।

9.7 संदर्भ ग्रंथ

1. सिंह जे. एल. और पाण्डे जी. पी. “50 ईसर्य ऑफ पंचायतीराज एण्ड रूरल डवलपमेंट” मानक पब्लिकेशन नई दिल्ली 1998
2. मिश्रा एस.एन, “पंचायती राज, ब्यूरोक्रेसी एण्ड डवलपमेंट”, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान नई दिल्ली
3. अरोड़ा रमेश के (सम्पादित) “पिपल सेन्टरड गवर्नेन्स”, आलेख पब्लिशर्स जयपुर, 2001
4. शर्मा रविन्द्र (सम्पादित) “ग्रासरूट गवर्नेन्स” आलेख पब्लिशर्स, 2005
5. नारायण इकबाल और माथुर पीसी “पंचायती राज इन राजस्थान–ए केस स्टेडी ऑफ जयपुर डिस्ट्रीक्ट” जॉर्ज जेकब (सम्पादित), “रीडिंगस इन पंचायती राज”, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान हैदराबाद 1967
6. शर्मा अशोक ' 'भारत में स्थानीय प्रशासन' ' आर.बी.एस.ए. पब्लिसर्श जयपुर 2006

7. चेम्बर रॉबर्ट "रूरल डवलपमेन्ट पुटिंग दा लास्ट फर्स्ट", लॉगमेन्स लंदन 1983
8. माथुर पी.सी. "रिमॉडलिंग पंचायतीराज इंस्टीटयूशन इन इण्डिया" इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन पेज 592–616 वाल्यूम XXIV : आई पी ए 1978

इकाई - 10

नौकरशाही की संस्कृति और विकास प्रशासन (Bureaucratic Culture and Development Administration)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 नौकरशाही का अर्थ एवं परिभाषा

10.3.1 संस्कृति का अर्थ

10.3.2 भारतीय समाज और इसके सांस्कृतिक संरचना

- 10.3.2.1 प्राचीन एवं स्थायित्व
- 10.3.2.2 आध्यात्मिकता
- 10.3.2.3 सहिष्णुता
- 10.3.2.4 अनुकूलनशीलता
- 10.3.2.5 सर्वांगीणता
- 10.3.2.6 ग्रहणशीलता
- 10.3.2.7 धार्मिकता
- 10.3.2.8 वर्णाश्रम
- 10.3.2.9 पुरूषार्थ
- 10.3.2.10 कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धान्त
- 10.3.2.11 ऋण तथा यज्ञ
- 10.3.2.12 संस्कार
- 10.3.2.13 जाति–व्यवस्था
- 10.3.2.14 संयुक्त परिवार
- 10.3.2.15 विविधता में एकता
- 10.3.2.16 ग्रामीण आबादी

10.4.0 संस्कृति का नौकरशाही से सम्बन्ध

- 10.4.1 जाति प्रथा का प्रशासन पर प्रभाव
- 10.4.2 भारत में धर्म और इसका प्रभाव
- 10.4.3 धर्म निरपेक्षता, जातिवाद और धार्मिक मूल्यों
- 10.4.4 ग्रामीण आबादी और लोक नौकरशाही की आर्थिक–सामाजिक पृष्ठभूमि
- 10.4.5 भारतीय अधिकारी तंत्र का सत्तावादी चरित्र

10.4.6 अभिप्रेरण और विकास प्रशासन
10.4.7 प्राधिकार और विकास प्रशासन
10.4.8 संप्रेषण और विकास प्रशासन
10.4.9 नौकरशाही का अपकार्यवाद
10.4.10 प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप
10.4.11 सामाजिक न्याय और निर्धनता उन्मूलन
10.4.12 आरक्षण का विकास प्रशासन पर प्रभाव
10.4.13 जटिल सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक–सांस्कृतिक मूल्य
10.5 सारांश
10.6 शब्दावली
10.7 अभ्यास प्रश्न
10.8 संदर्भ ग्रन्ध

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पाएंगे –

- नौकरशाही की सांस्कृतिक एवं उसका विकास प्रशासन पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में।
- संस्कृति एवं नौकरशाही की पारस्परिक संबंधता के बारे में।
- संस्कृति का नौकरशाही पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे मे।

10.1 प्रस्तावना

एशिया तथा अफ्रिका के देश जो पश्चिमी देशों के गुलाम रहे हैं वे आज स्वतंत्र हैं और अपने विकास में लगे हुए हैं। इस विकास की तीन प्रमुखताएं हैं **प्रथम,** यह विकास सर्वागीण है। इसमें आर्थिक, समाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि सभी अंश है। **दूसरे,** इस विकास का सारा या अधिकांश भार सरकार के ऊपर है। **तीसरे,** सुनियोजित योजना द्वारा विकास करने के लिए ये देश कटिबद्ध हैं। ये सारी बातें भारत पर भी लागू होती हैं, क्योंकि विकास के लिए सरकारी तन्त्र व नौकरशाही का सशक्त होना अनिवार्य है। यदि लोक प्रशासक कमजोर, अक्षम या निकम्मा होता है तो विकास की गति मन्द बनी रहेगी।

सामाजिक वैज्ञानिकों की यह दृढ़ मान्यता है कि समाज संस्कृति विकास की बहुत लम्बी प्रक्रिया का परिणाम है और यह उसकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं में प्रतिबिम्बित होता है। समाज में नौकरशाही का प्रशासनिक व्यवहार शतप्रतिशत नहीं तो बहुत हद तक समाज द्वारा संजोए गए मूल्यों से प्रभावित होता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के साहित्य में प्रशासनिक व्यवस्था और उसके बाह्य पर्यावरण की परस्पर क्रियाओं और परस्पर–संबंध पर बहुत बल दिया गया है, और समाजिक सास्कृतिक मूल्यों तथा अधिकारीतंत्रीय व्यवहार, राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रक्रियाओं के परस्पर प्रभाव को विस्तार से दर्शाया गया है। विद्वानों ने राज्य की इस क्षमता पर तो ध्यान केंन्द्रित किया है कि वह कैसी राजनीतिक और प्रशासनिक संस्थाओं का विकास करके सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन सम्पन्न कर सकता है, परन्तु

किसी समाज में सामाजिक–राजनीतिक संरचनाएं वहाँ के राजनीतिक और प्रशासनिक विकास पर क्या प्रभाव डालती हैं–इस बात पर बहुत कम ध्यान दिया गया है।

संस्कृति का सम्बन्ध–समाज के किसी एक पक्ष से नहीं वरन् सम्पूर्ण जीवन प्रणाली से होता है। इसमें समाज में प्रचलित सम्प्रेषण और अभिव्यक्त करने की विधियों का तथा समाज को शासित करने वाले मूल्यों और विश्वासों का भी संगम होता है। समाज में प्रचलित मूल्यों का संबंध–समाज के सदस्यों की अभिरूचियों अर्थात अच्छे बुरे या वांछनीय या अवांछनीय विचारों से है। संस्कृति इस बात का पूरी तरह से निर्धारण करती है कि समाज के सदस्यों के प्रति वांछनीय आचरण और व्यवहार क्या है।

गुये पीटर (Guy Peters) का कहना है कि– ' 'राजनीतिक संस्कृति और सामान्य राजनीतिक संस्कृति की विशेषताओं का प्रभाव न केवल शासन प्रणाली के कार्यो पर पड़ता है, वरन यह संगठन के आन्तरिक प्रबन्ध पर भी पड़ता है। फिर भी हम अपनी संस्कृति की उत्पत्ति हैं और संसार को अपने ही ढंग से देखते हैं।"

इस पाठ्यक्रम के पहले अध्याय में विकास प्रशासन की अवधारणा की विस्तृत जानकारी दी जा चुकी है। यहां पाठकों को सर्वप्रथम नौकरशाही से परिचय करवाया है। उसके पश्चात संस्कृति का अर्थ समझाकर भारतीय संस्कृति की विशेषताएं बताई गई हैं। उसके बाद विकास प्रशासन पर भारतीय नौकरशाही की संस्कृति के पड़ रहे प्रभावों से अवगत करवाया गया है।

10.2 नौकरशाही का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Bureaucracy)

नौकरशाही को आधुनिक सभ्यता की देन माना जाता है। शासन की व्यवस्था या शासन का रूप कैसा भी क्यों न हो, नौकरशाही के बिना काम नहीं चल सकता है। आज संसार के समस्त देश नौकरशाही के द्वारा शासित हो रहे हैं। आज के समय में सभी समाजों के लिए नौकरशाही पूर्णत: अपरिहार्य हो चुकी है। वर्तमान समय में पूंजीवादी, समाजवादी और साम्यवादी सभी प्रकार की व्यवस्थाओं का संचालन हम नौकरशाही के द्वारा होता देख रहे हैं। आज के दिन आर्थिक–समाजिक–राजनैतिक ही नहीं वरण ज्ञान–विज्ञान और शिक्षा–सांस्कृतिक क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा है। नौकरशाही पूर्णत: सर्वव्यापी बन चुकी है। इसका प्रादुर्भाव शासन के क्षेत्र में कुछ विशेष देखने में आता है। इस खण्ड में हम नौकरशाही की अवधारणा पर विचार करेंगे।

नौकरशाही का अर्थ एवं परिभाशा (Meaning and Definition of Bureaucracy)

'नौकरशाही' अंग्रजी के शब्द 'ब्यूरोक्रेसी' का हिन्दी रूपान्तर है। अंग्रजी भाषा का ब्यूरोक्रेसी शब्द फ्रांसीसी भाषा के शब्द 'ब्यूरो' (Bureau) से बना है। फ्रांसीसी भाषा में ब्यूरो का अर्थ है लिखने की मेज या डेस्क अत: ब्यूरोक्रेसी का अर्थ हुआ 'डेस्क सरकार । ब्यूरोक्रेसी को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है: "ब्यूरो की सरकार, ब्यूरो के द्वारा सरकार और ब्यूरो के लिए सरकार।"One may define the term Bureaucracy as “Government of the bureaus, government by the bureaus and government for the bureaus”.

नौकरशाही शब्द के रचनाकार विन्सेंट डी गोरनी माने जाते हैं जिन्होने इसका प्रयोग वर्ष 1745 में किया। गोरने फ्रांस के एक अर्थशास्त्री थे, उन्होंने इस शब्द का प्रयोग बुरे अर्थ में किया। गोरने ने

कहा था कि फ्रांस 'ब्यूरोमेनिया नामक बीमारी से ग्रसित है जिसका फ्रास 'पर विध्वंसक प्रभाव पड़ रहा है, (France has been suffering from a disease which has been leaving devastating impact on France। यही से ब्यूरोक्रेसी शब्द का प्रयोग बुरे अर्थ में होना प्रारम्भ हो गया।

फ़्रांसीसी अकादमी के शब्दकोश में इस शब्द को 1798 में स्वीकार करते हुए इस प्रकार परिभाषित किया गया "सरकारी ब्यूरो के अध्यक्ष और कर्मचारीयों की शक्ति और प्रभाव। (Power and influence of head and employees of Bureaucracy of Government)

जर्मन शब्द कोश के सन् 1813 के संस्करण में नौकरशाही की परिभाषा करते हुए कहा गया: "यह वह सत्ता अथवा शक्ति है जिसका प्रयोग सरकार के विभिन्न विभाग तथा उनकी शाखाएँ अपने साथी नागरिकों पर करती हैं।"

जनसाधारण के जीवन में बढते हुए राज्य के दखल के परिणामस्वरूप ब्यूरोक्रेसी शब्द का प्रयोग 19 वीं शताब्दी से निरन्तर 'होता रहा है। दरिद्रता के कल्याण और सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों के केन्द्रीकरण के विरोध स्वरूप ब्रिटेन में इस शब्द का प्रचलन 1830 के दशक से होना पाया जाता है।

ब्रिटेनिका के शब्दकोश के अनुसार नौकरशाही शब्द "ब्यूरो या विभागों में प्रशासकीय शक्ति के केन्द्रित होने तथा राज्य के क्षेत्रधिकार के बाहर के विषयों में भी अधिकारियों के अनुचित हस्तक्षेप को व्यक्त करता है।"(According to Encyclopedia Britanica the term ‘Bureaucracy’ “Signifies bureaucracy by officials in matter outside the scope of state interefarence).

थोमस कारलाइल के अनुसार " यह महाद्वीप संबंधी कष्टक था (It was a Continental nuisance')

जोन ए. विग का कहना है कि "विकृत एवं परिहास के कारण नौकरशाही शब्द का अर्थ काम में घपला, मनमानी, प्रतिव्यय, हस्तक्षेप तथा विबंधन माना जाने लगा है।" (Through distortion and caricature, the term ‘Bureaucracy’ has come to imply bungling, arbitratiness, wastefulness, officiousness and regimentation”)।

बर्नार्ड शा के मत में, ' 'सत्ता के उपासक उच्च पदाधिकारियों की समान्तशाही का दूसरा नाम नौकरशाही है "

ग्लेडन नौकरशाही को अधिकारियों का शासन मानते है।

नौकरशाही शब्द का सन 1745 में गोरने के द्वारा किये गए बुरे अर्थ में प्रयोग से प्रारम्भ होकर वर्षो तक इसे इसी रूप में माना जाता रहा।

मेक्स वेबर के अनुसार नौकरशाही अपने रूप में न तो बुरा है और न ही यह अच्छा है, यह पूर्णरूप से तटस्थ शब्द है। संसार में वे पहले विद्वान थे जिन्होंने नौकरशाही शब्द को बुरे अर्थ से छुटकारा दिलवाया। मैक्स वेबर एक सुविख्यात जर्मन समाजशास्त्री एवं राजनैतिक–अर्थशास्त्री थे जिनका जन्म जर्मनी केबर्लिन प्रदेश में स्थित थूरिंगिया नामक प्रदेश में 21 अप्रेल, 1864 में एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। सामाजिक वर्ग, सत्ता, सामाजिक क्रिया और नौकरशाही आदि पर आपने मौलिक विचार

प्रस्तुत किये। नौकरशाही पर आपके योगदान के लिए आपको लोक प्रशासन में सदैव स्मरण किया जाता है रहेगा। वेबर के विचारों को जाने बिना नौकरशाही के अध्ययन को अधूरा माना जाता है।

मैक्स वेबर के शब्दों में नौकरशाही तार्किक और विवेकशील नियमों पर अधारित है। इसमें अधिकार, सत्ता तथा उत्तरदायित्वों का संस्तरणात्मक विभाजन पाया जाता है जिसका उद्देश्य किसी औद्योगिक, व्यापारिक राजनैतिक, धार्मिक, शैक्षिक अथवा किसी भी अन्य. प्रकार के संगठन के उद्देश्यों को प्रभावशाली ढंग से प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इसमें लिखित नियम होते हैं तथा इसमें विभिन्न व्यक्तियों से कार्यो का समन्वय स्थापित किया जाता है।

वेबर के मतानुसार नौकरशाही संगठन के विशुद्ध प्रारूप की परिभाषा नौकरशाही विशेषताओं में निहित है। यह व्यवस्था जिन विशेषताओं के आधार पर कार्य करती है वे हैं:

(1) प्रशासकीय नियम (Administrative Rules),

(2) पदसोपान व्यवस्था (Hierarchical order),

(3) साधन (Means),

(4) लिखित दस्तावेज (Written Document),

(5) प्रशिक्षण (Training)

(6) अधिकारियों की विशेषस्थिति (Special Status of Officers),

(7) कार्यालय का प्रबंध (Management of the offices),

(8) प्रशासन के साधनों का केन्द्रीयकरण (Centralization of Administrative means),

(9) कुशल व्यक्तियों द्वारा प्रशासन, (Administration by Efficient Person),

(10) अवैयक्तिक (Impersonal),

(11) तकनीकी श्रेष्ठता (Technical),और

(12) व्यवहारिक दृष्टि 1से नौकरशाही सत्ता का स्थाई होना (Stable Nature of Bureaucratic Authority from the Behaviouristic View-point),

कार्ल फैड्रिक्स के मत में, "नौकरशाही उन लोगों के पदसोपान कार्यो के विशेषीकरण एवं उच्च स्तरीय क्षमता से युक्त संगठन है जिन्हे इन पदों पर कार्य करने के लिए विशेषत: प्रशिक्षित किया जाता है।

जॉन ए. वीक के शब्दों में, ' 'नौकरशाही उन व्यक्तियों के लिए सामूहिक पद के रूप में प्रयुक्त होता है जो सरकार की सेवाओं में होते हैं।

कभी–कभी नौकरशाही शब्द का प्रयोग लोक सेवा के ऐसे व्यक्ति का प्रतीक मान कर किया जाता है जो अपने ज्ञान, अनुभव और उत्तरदायित्व के लिए विख्यात है। वर्तमान में नौकरशाही शब्द का प्राय: प्रयोग साधारणत: नियमित सरकारी कर्मचारियों के लिए काम में लिया जाता है।

10.3.1 संस्कृति का अर्थ (Meaning of Culture)

संस्कृति को मानव की सर्वश्रेष्ठ धरोहर माना गया है। हॉबल यह मानते हैं कि संस्कृति अनोखे रूप में एक नया मानव–संघटना है–अर्थात मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो संस्कृति का निर्माता है। संस्कृति के कारण मानव अनवरत प्रगति के पथ पर अग्रसर होता जा रहा है। यदि संस्कृति नहीं होती तो मानव

और पशु में कोई अन्तर नहीं रहता क्योंकि पशु संस्कृति विहीन होते हैं। संस्कृति मानव को न केवल पशु–समाज से ही अलग करती है अपितु एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से, एक समाज दूसरे समाज से संस्कृति के आधार पर भिन्नता रखता।

मनुष्य अपनी शारीरिक–मानसिक क्षमताओं के आधार पर ही संस्कृति का निर्माण कर सका है, अनेक विश्वासों, व्यवहार के तरीकों व वस्तुओं का निर्माण कर सका है। हाइट के अनुसार पांच क्षमताओं, यथा सीधे खड़े होने की क्षमता, स्वतंत्रापूर्वक घुमाये जा सकने वाले हाथ, तीक्ष्ण व केन्द्रित की जा सकने वाली दृष्टि, मेधावी मस्तिष्क, और प्रतीकों के निर्माण की क्षमता के कारण ही संस्कृति का निर्माण कर सकता है।

संस्कृति शब्द अनेक अर्थो में प्रयुक्त होता है– संस्कृति शब्द की उत्पति संस्कृत की सम धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'पूरा किया हुआ या परिष्कृत किया गया'। सरकार शब्द के भी अर्थ इसी प्रकार का है अर्थात विभिन्न कार्यो को पूरा किया जाना संस्कार कहलाता है।

साहित्यकारों ने संस्कृति को सामाजिक शिष्टता एवं बोदिक श्रेष्ठता के अर्थ में प्रयुक्त किया है। मानव शास्त्रियों के मताअनुसार संरकृति विचार करने, अनुभव करने एवं जीवन व्यतीत करने की एक सम्पूर्ण विधि है।

संस्कृति की मानवशास्त्रीय एवं समाजशास्त्रियों परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृति में विश्वास, विचार, प्रथाएं, कानून, आर्दश, कला, निपुणता आदि सभी समाहित हैं, साथ ही भवन, यंत्र, चित्रकला आदि भी इसी के अन्तर्गत आते हैं। निष्कर्षत: संस्कृति भौतिक एवं अभौतिक तत्वों की वह सम्पूर्णता है कि जिसे समाज का सदस्य होने के कारण हम प्राप्त करते हैं। इसमें सम्पूर्ण जीवन के तरीके, मानव कृत सामाजिक पर्यावरण भी आता है। मनुष्य ने अपनी बुद्धि का प्रयोग करके संसार में जो कुछ भी बनाया है वह संस्कृति का ही अंग हैं।

अमरीका के समाजशास्त्री ऑग बर्न ने संस्कृति को भौतिक और अभौतिक दो भागों में विभक्त किया है। भवन, अस्त्र, शस्त्र, आभूषण, मशीनें, आवागमन के साधन, सन्देशवाहन के साधन आदि संस्कृति के रूप हैं। संस्कृति के अमूर्त रूप को अभौतिक संस्कृति कहा गया है। मैकाइवर जैसे कुछ समाजशास्त्री तो संस्कृति के अमूर्त रूप को ही संस्कृति मानते हैं। सामाजिकरण की प्रक्रिया द्वारा अभौतिक संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है। विचार, विश्वास, मानदण्ड, व्यवहार, साहित्य, इगन, भाषा, आदि अभौतिक संस्कृति के रूप हैं।

समाजशास्त्रीयों के अनुसार सीखा हुआ व्यवहार, हस्तांतरण, विशिष्टता का गुण, मानव निर्मित, समाजिकता का गुण, समूह के लिए आदर्श, अनुकूलता का गुण, सन्तुलन व संगठन, आवश्यकताओं की पूर्ति अधि–वैयक्तिक और अधिसावयणी संस्कृति की प्रमुख विषेशताऐ हैं।

प्रत्येक समाज के सामाजिक, सास्कृतिक, राजनैतिक धार्मिक आर्थिक आदि लक्षण भिन्नता लिये हुए होते हैं इसी कारण किसी भी समाज को समझने के लिए उस समाज की संस्कृति, इतिहास, आध्यात्मिकता, सहिष्णुता, धार्मिकता, ग्रहणशीलता, परिवार आदि विशेषताओं एवं व्यवस्थाओं के अध्ययन की आवश्यकता होती है। इन्ही कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं के आधार पर हम यहां भारतीय समाज को समझने का प्रयत्न करेंगे।

10.3.2 भारतीय समाज एवं इसकी सांस्कृतिक संरचना (Indian Society and its cultural Structure)

संसार के इतिहासकार इसको स्वीकार करते हैं कि भारतीय समाज अति प्राचीन और गौरवमय है। इसे गौरव का पद प्रदान करने वाली इसकी विलक्षण संस्कृति ही है जो हजारों वर्षो से अक्षुण्ण बनी हुई है, जबकि असीरियन, बेबिलोनियन मिश्र, यूनान, रोम आदि सभ्यताएं कभी की काल कलवित हो गई। भारतीय समाज के सामाजिक–सास्कृत्कि एकता के कुछ प्रमुख तत्व हैं जिनका अति संक्षेप में यहां वर्णन करना समीचीन होगा।

10.3.2.1 प्राचीन एवं स्थायित्व - भारतीय सस्कृति एवं समाज व्यवस्था हजारों वर्ष पुरानी है जिसे विश्व की अति प्राचीनतम संस्कृतियों में गिना जाता है। यहां हजारों वर्षो से वैदिक धर्मो का निर्वाह होता चला आ रहा है। यज्ञ, हवन एवं वैदिक मंत्रों का उच्चारण आज भी विवाह आदि अवसरों पर मृद्धा के साथ किये जाते हैं। भारतीय समाज में गाव, पंचायत, जातिप्रथा, संयुक्त परिवार आदि प्रणालियां हजारों वर्षा से आज भी चली आ रही हैं। अनेक ऊत्थान–पतन एवं विदेशी शासन के उपरान्त भी सत्य, अहिंसा, अस्तेय आदि के सिद्वान्त भारतियों के लिए आर्दश बने हुए हैं।

10.3.2.2 आध्यात्मिकता - धर्म और आध्यात्मिकता भारतीय समाज व संस्कृति की आत्मा है। यहां सांसारिक भोगलिप्सा को जीवन का ध्येय कमी भी नहीं माना गया। आत्मा और ईश्वर के महत्व को सदैव ही स्वीकार गया है। यह आस्तिक संस्कृति है जहां आध्यात्मिकता को सर्वोपरि आन्नद माना गया है। आध्यात्मिकता चिन्तन में कर्म का सिद्धान्त, पुर्नजन्म का इसे अन्य सभी संस्कृतियों से भिन्नता प्रदान करते हैं। यहां धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरूषाथों की प्राप्ति का विशेष आग्रह रहा है।

10.3.2.3 सहिष्णुता- सहिष्णुता भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है। यहां सभी जातियों, धर्मो प्रजातियों एवं सम्प्रदायों की यह मान्यता है कि ईश्वर एक है किन्तु इसके रूप अलग–अलग हैं। धार्मिक अत्याचारों से पीड़ित होकर आये यहूदी, सीरियन, पारसी, ईसाई आदि ने भारत में शरण प्राप्त की, यह साम्प्रदायिक एकता का प्रतिपादन ही करता है।

10.3.2.4 अनुकूलनशीलता - अनुकूलनशीलता से अभिप्राय: स्वयं को परिस्थिति के अनुकूल बनाना है। भारतीय संस्कृति ने सदैव अपने आपको परिस्थिति के अनुसार सामंजस्य किया है, इसी के कारण यह आज भी जीवित है। हमारे अचार–विचार, परिवार. जाति, धर्म आदि समय के साथ–साथ थोड़ा–थोड़ा परिवर्तित होते रहे हैं।

10.3.2.5 सर्वागीणता - भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध किसी धर्म, जाति, व्यक्ति, विशेष से न होकर यह समाज के सभी पक्षों से सम्बन्धित है। भारतीय संस्कृति का लक्ष्य है ' 'सर्वे भवन्तु सुविनाः, सर्वे सन्तु निरामयाः " अर्थात सभी सुखी हों, सभी रोग रहित हों। भारतीय संस्कृति में भौतिक एवं अध्यात्मिकता दोनों को बल देते हुए व्यक्ति के सर्वागीण विकास को ध्येय बनाया गया है।

10.3.2.6. ग्रहणशीलता - भारतीय समाज सभी नवीन तत्वों को अपने में समाहित करके उनसे एकाकार कर लेता है। शक, हूण, मंगोल, तुर्क यहां आये और बहुत समय तक झगड़ते रहे अन्त में वे सभी भारतीयों में ही घुल–मिल गए। अनेक विदेशी तत्त्वों को पूरी तरह से अपने में आत्मसात कर भारतीय संस्कृति ने ज्योतिष, कला आदि अनेक क्षेत्रों में उन्नति की है। यहां का प्रमुख सिद्न्त है 'जियो और जिने दो'। सभी प्रकार के दर्शन, भौतिकवाद, अध्यात्मवाद का समन्वय यहां की विशेषता है।

10.3.2.7. धार्मिकता - भारतीय समाज धर्मप्रधान समाज है। यहां वेद, उपनिषद. पुराण, महाभारत, गीता, कुरान, बाईबिल, आदि का अत्यअधिक गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है जिसने यहां के लोगों को त्याग, तप, संयम, नियम और आशावादिता की शिक्षा दी है। व्यक्ति की उन्नति संकुचित न होकर मानवतावादी है जो सभी जीवों के कल्याण, क्षमा, दया आदि में अटूट विश्वास करता है।

10.3.2.8. वर्णाश्रम - वर्णाश्रम भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता है। यहां वर्णो के द्वारा सम्पूर्ण समाज में श्रमविभाजन किया गया। सम्पूर्ण समाज को चार वर्णो, यथा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, में विभाजित किया। ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन–अध्यापन, क्षत्रियों का कार्य शक्ति से सम्बंधित और राज्य की सुरक्षा करना रहा, वैश्य भरण–पोषण व अर्थव्यवस्थाओं से सम्बन्धित रहे 'तथा शूद्रों का कार्य सभी वर्गो की सेवा करना रहा।

वर्णो के साथ–साथ आश्रमों का विभाजन भी भारतीय समाज की विषेशता रही है । मनुष्य की आयु को 100 वर्ष मानकर उसे चार समान भागों मे विभक्त कर दिया। बह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वान प्रस्थाश्रम एवं सन्यासश्रम ये चार आश्रम व्यक्ति के मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास को प्रकट करते है। भारतीय वर्णाश्रम व्यवस्था पूरे विश्व को एक महत्वपूर्ण देन है।

10.3.2.9. पुरूषार्थ - पुरूषार्थ में व्यक्ति के जीवन के 4 आधार माने गए हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–यही चार पुरूषार्थ हैं। धर्म नैतिकता के निर्वाह से सम्बंधित है, अर्थ में वे सभी साधन आ जाते हैं जो व्यक्ति की अवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। 'काम' जीवन के आनन्द से सम्बन्धित है और मोक्ष तीनों पुरुषार्थ के पश्चात् आता है जिसका अर्थ 'पूर्ण तुष्टि' से लिया जा सकता है। ये सभी पुरूषार्थ व्यक्ति को समाज में अनुशासित रहने और अपने दायित्वों के निर्वाह की प्रेरणा देते हैं।

10.3.2.10 कर्म और पुर्नजन्म का सिद्धान्त - भारतीय समाज की संस्कृति कर्म प्रधान है जहां यह माना जाता है कि अच्छे कर्म का अच्छा फल मिलता है और बुरे कर्म का बुरा फल मिलता है, इसलिए व्यक्ति को सदैव ही सदकर्म ही करने चाहिये। यहां पुर्नजन्म की मान्यता है। यह माना जाता है कि व्यक्ति की आत्मा अजर–अमर है। मरने के बाद व्यक्ति किस योनि को प्राप्त होगा यह इस चीज पर निर्भर करेगा कि उसने इस जन्म में कैसा कर्म किया है।

10.3.2.11 ऋण तथा यज्ञ– हिन्दु जीवन-व्यवस्था में व्यक्ति देव–ऋण, ऋषि–ऋण, पितृ–ऋण, अतिथि–ऋण और नृ– ऋण। मनुष्य अपने दायित्वों का निर्वाह करके इन ऋणों से मुक्त

हो सकता है। ऐसा सोच अन्य किसी भी संस्कृति में नही है। यह सोच व्यक्ति को त्यागी जीवन जीने की प्रेरण देता है।

10.3.2.12. संस्कार-भारतीय समाज में व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाने और उसके चहुंमुखी विकास के लिए 16 संस्कारों की व्यवस्था है जो क्रमश :– गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तो नयन, जात कर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ा कर्म, कर्ण–बेध, विघारम्भ उपनयन, वेदारम्भ, केशन्त अथवा गोदान, समावर्तन, विवाह एवं अन्तयेष्टि हैं।

10.3.2.13. जाति–व्यवस्था- भारतीय समाज वर्ण एवं जातियों में विभक्त है। ऐसी सामाजिक –अवस्था अन्यत्र कहीं भी मौजूद नहीं है। प्रत्येक वर्ण और जाति के अपने–अपने व्यवसाय, रीति–रिवाज, रहन–सहन के तरीके एवं कर्तव्य निश्चित हैं। जाति की सदस्यता का आधार जन्म है। सभी जातियों के विवाह और व्यवसाय के बंधन हैं। जाति–व्यवस्था भारतीय संस्कृति का प्रमुख लक्षण है जिसने व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा और सामुदायिक संघर्षो से मुक्त रह कर सामाजिक व्यवस्था को सुद्दढ़ बनाए रखा है।

10.3.2.14 संयुक्ता परिवार- संयुक्त–परिवार से अभिप्राय है एक ऐसा परिवार जिसके 3–4 या इससे भी अधिक पीढ़ियों के सदस्य एक साथ निवास करते हैं,' सभी का भोजन एक साथ बनता हो, और सब लोग घर के सबसे बड़े सदस्य (मुखिया) के आधीन रहते हों। संयुक्त परिवार में सब सदस्यों का सम्पति पर समानधिकार होता है। प्राचीन समय में जब अर्थव्यवस्था पूर्णतः कृषि पर अधारित थी तब संयुक्त–परिवारों का महत्व अधिक था, वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार संयुक्त परिवार के बंधन ढीले पड़ रहे है।

10.3.2.15. विविधता में एकता- भौगोलिक एवं जनसंख्या की दृष्टि से भारत एक बहुत विशाल देश है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक यहां भाषाएँ, धर्म, व्यवसाय, रीति–रिवाज, रहन–सहन, भौगोलिक पर्यावरण आदि के आधार पर अनेक भिन्नताएं दृष्टिगोचर होती हैं। इन विविधताओं के सम्पूर्ण भारतीय समाज की संस्कृति एक है, जिसके कारण यह आज भी जीवित है।

10.3.2.16 ग्रामीण आबादी- भारत में छः लाख पचास हजार से भी अधिक गांव है जहां 2001 की जनगणना के अनुसार 72.98 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है।"मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारत में आज भी तीन–चौथाई लोग गांवों में बसते हैं, इसका अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है ', साथ ही यह लोक प्रशासन की जिम्मेदारियां बढ़ाता है। भारत एक ग्राम प्रधान देश है, इसी कारण महात्मा गांधी जी कहा करते थे कि भारत गांवों में निवास करता है और असली भारत को यदि जानना है तो यहां के गाँवों को जानना होगा। अधिकांश गाँव बहुत ही छोटे हैं जहां की आबादी लगभग चार सौ–पांच सौ है। नगरीय क्षेत्रों की आबादी का प्रतिशत धीरे–धीरे बढ़ रहा है लेकिन अगले अनेक दशकों तक भी ग्रामीण समाज की बहुलता कायम रहने की संभावना है।

भारतीय ग्रामीण सामाजिक जीवन अनेक विशेषताएं लिए हुए है। भारत में अनेक कारकों के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति के बंधन ढीले पड़ते जा रहे हैं लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी वे बंधन कठोरता लिए हुए है। गांव का सामाजिक जीवन अत्यधिक ऊंच–नीच, श्रेणीबद्धता और छूआछूत के संबंधों

पर टिका हुआ है। अधिकांश ग्रामीण गरीबी, निरक्षरता, कुपोषण, बीमारी आदि समस्याओं से पीड़ित है। ग्रामीण आबादी अपनीं प्राचीन परम्पराओं से कठोरता से बंधे हुए हैं। भारत में ग्रामीण सामाजिक जीवन की विशेषताएं अपने आप में अत्यधिक विचित्रता लिए हुए है।

10.4.0 संस्कृति का नौकरशाही से संबंध

इस अध्याय में अभी तक हमने नौकरशाही की अवधारणा, संस्कृति का अर्थ और परिभाषा और भारतीय संस्कृति की विशेषताओं पर चर्चा की हैं। संस्कृति का नौकरशाही पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जो विकास प्रशासन को भी प्रभावित करता है। इस खण्ड में हम पाठकों को भारतीय संस्कृति की चंद विशेषताओं का विकास प्रशासन पर पड़ने वाले प्रभावों से अवगत कराएंगे। यहां यह बताना प्रासंगिक होगा कि कतिपय कारणों से भारतीय संस्कृति की विशेषताओं का सामाजिक बंधन में परिवर्तन हो रहा है।

10.4.1 जाति प्रथा का प्रशासन पर प्रभाव (Impact of Caste System on Administration)

जैसा कि बताया जा चुका है, अपने मूल रूप में भारत का सामाजिक श्रेणी तंत्र व्यवस्थाओं पर आधारित था, परंतु बाद में वह समाज व्यवस्था का एक नकारात्मक लक्षण बना गया, क्योंकि उसमें व्यक्ति का स्थान ' 'जन्म' ' से निर्धारित होने लगा, व्यवसाय के आधार पर नहीं।

"भारत की जाति–प्रथा जिस रूप में उभरकर सामने आई, उसने समाज को सामाजिक दृष्टि से ऊंचे–नीचे स्तरों में बाँट दिया, राजनीतिक दृष्टि से भ्रष्ट कर दिया और आर्थिक दृष्टि से कमजोर बना दिया। जाति प्रथा ने भारत की विकास प्रक्रिया में बाधा पहुंचाई है और यह माना है कि भारत के पिछड़ेपन और आर्थिक विषमता के लिए सबसे प्रमुख कारण यही है। भारतीय समाज की एकता में भी यह सबसे गम्भीर बाधा के रूप में सामने खड़ी है। "

यह एक विचित्र बात है कि स्वाधीनता के पश्चात जाति–प्रथा के बंधन शिथिल होने के बजाय यह अधिक से अधिक विस्तृत होती चली गई और इसकी जटिलता में निरन्तर वृद्धि ही होती जा रही है। दलित और पिछड़ी जातियों को सामाजिक न्याय प्रदान करने के उद्देश्य से इन्हें संविधान के द्वारा कुछ काल के लिए कुछ प्रतिशत आरक्षण निर्धारित किया गया। समय–समय पर इनके आरक्षण की अवधि में और आरक्षण की प्रतिशत में वृद्धि होती रही है। स्व. प्रधानमंत्री वी. पी. सिंह के मण्डलीकरण अभियान–। (1990) और अर्जुन सिंह के मण्डलीकरण अभियान–।। ने भारतीय समाज में दरारें गहरी कर दी हैं। जाति प्रथा ने राजनीतिकरण के कारण जड़ें गहरी जमा ली हैं।

आरक्षण के फलस्वरूप आरंभिक विकास में थोड़ी सहायता अवश्य मिली है और थोड़ा समाजिक परिवर्तन भी आया है लेकिन इसने सामाजिक तनाव, कटुता और वैमनस्य बढ़ा कर दीर्घकालीन विकास की प्रक्रिया में रूकावट पैदा की है।

वी. सुब्रहमनियम ने शासकों की पूर्व सामाजिक स्थिति का अध्ययन करके इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा था कि हिन्दू समाजशास्त्र की नींव जाति, सामूहिकता, समूहवाद और धार्मिक निष्ठा के पारस्परिक सम् पर आधारित है। इस प्रकार की निष्ठायें नौकरशाही के व्यवहार और कार्य प्रणाली के प्रति वचन को प्रभावित करती है। स्टेनले हेगिन बाथम (Stanley Hegin Botham) ने भारतीय

संस्कृति और नौकरशाही के मध्य सम्बन्धों के अनेक संघर्षो व तनावों के लिए उत्तरदायी अनेक तथ्यों पर प्रकाश डाला है।

10.4.2 भारत में धर्म और इसका प्रभाव (Religion in India and Its Impact)

संसार में प्रचलित सभी प्रमुख धर्मो को मानने वाले भारत में मिल जाएंगे। यहां जनसंख्या का 83 प्रतिशत हिन्दुओं का है और मुसलमान लगभग 12 प्रतिशत हैं। "मुसलमानों की अधिकतम जनसंख्या वाले देशों में भारत का स्थान तीसरा है। " संसार के विभिन्न धर्मो के लोग भारत में आये और एक–दो धर्मो को छोड़ सभी यहां घुल–मिल गए। 1970–80 में पंजाब में हिन्दू–सिक्ख संघर्ष की संभावनाएं उत्पन्न हुई थी लेकिन सौभाग्य से वह थोड़े समय में शांत हो गया। ईसाई धर्म को लेकर छिटपुट घटनाएं होती रहती हैं जिन पर शीध्र ही प्रशासन द्वारा काबू पा लिया जाता है।

हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिक तनाव का लम्बा और घिनौना इतिहास रहा है। इसके लिए बहुत कुछ दोषी शासक वर्ग रहा है। ये दोनों सम्प्रदाय शांति से रहने लगे थे लेकिन अंग्रेजों की 'फूट डालों और राज करो' की नीति ने इसे बढ़ाया और इसे विकृत रूप प्रदान किया। इससे भारतीय समाज में गहरी दरार पैदा हो गई, देश के दो टुकड़े हुए दंगा–फसाद फैला और खून की नदियां बहीं। स्वतंत्रता के बाद आज भी इस समस्या से राष्ट्र जूझ रहा है। राजनैतिक लाभ उठाने के उद्देश्य से राजनेता समय–समय पर इसे हवा देते रहते हैं जिससे समाज सुलगता रहता है। इस चुनौती का सामना करने के लिए प्रशासन की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। इसके लिए सुरक्षा अभिकरणों में वृद्धि करनी पड़ी है। इसने परिनियोजन (Deployment) और प्रशासनिक समन्वय (Administrative coordination) का समस्या को जन्म दिया है, केन्द्र और राज्य प्रशासन के मध्य तनाव और आक्रोश को बढ़ाया है और इसने विकास प्रशासन के धक्का पहुंचाया है।

10.4.3 धर्म निरपेक्षता, जातिवाद और धार्मिक मूल्य

धार्मिक निरपेक्षता भारतीय संस्कृति की विलक्षण विशेषता रही है। स्वतंत्रता के पश्चात् नेहरू प्रशासन ने धर्म निरपेक्षता पर जोर दिया। ' 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी की नई संस्कृति का एक स्वस्थ प्रभाव यह हुआ है कि भिन्न–भिन्न समुदाय और धर्म आपस में घुलमिल गए है। लेकिन भारत में धर्म निरपेक्षता की विरोधी शक्तियों का भी समावेश देखने में आता है। जाति–प्रथा की संस्थाओं और जाति पर आधारित विषमताओं का भी बोलबाला कम नहीं रहा है। ऐसा भारतीय राजनीतिक प्रक्रियाओं में प्रतिबिंबित होने के साथ प्रशासनिक नीतियों के विकास में भी व्यक्त होता है। इसका उदाहरण है लोक सेवाओं में आरक्षण जिसे संवैधानिक मान्यता भी है। इसने सामाजिक तनावों, संघर्षो और हिंसा को जन्म दिया है। इसने प्रशासन–व्यवस्था में मतभेद के बीज बोए हैं। इन सांस्कृति प्रेरकों ने सरकारी विकास–नीतियों और कार्यक्रमों को इनकी संकल्पना और कार्यान्वयन के स्तर पर प्रभावित किया है। उच्च जाति के अधिकारियों को उन क्षेत्रों के निरीक्षण के लिए प्रेरित किया जहां निम्न जाति के लोग निवास करते हैं।

मारियम शर्मा का दृढ़ मत है कि भारत में ग्रामीण स्तर पर जाति विरोधी राजनीति की प्रबलता कूट–कूट कर भरी है। उदाहरण सहित वे बताते हैं कि यदि किसी ग्राम के चमारों द्वारा अपने भूमि घर ग्राम प्रधान के विरूद्ध शिकायत की जाती थी, तो सवर्ण जाति (उच्च जाति) का पुलिस सब–इनस्पैक्टर

उस शिकायत की छानबीन करने के लिए चमारों के क्षेत्र में नहीं जाता था। इसके विपरीत जब भूमिघर ग्राम प्रधान द्वारा चमारों के विरूद्ध शिकायत की जाती थी, तो वही पुलिस सब– इन्सपेक्टर इन भूमिघर परिवारों में शिकायत की छानबीन करने के लिए सहर्श जाना स्वीकार कर लेता था। इस प्रकार सब–इन्सपेक्टर इसके लिए जातिगत भेदभाव ने उसे चमारपुरा में कार्यवाही न करने के लिए प्रेरित किया।

भारत में नौकरशाही के व्यवहार की प्रवृत्ति ने लोक सेवकों में जातीय भेदभाव को प्रोत्साहित किया, जिन्होंने प्रशासन की राजनीति को अत्यधिक संचयनशील बना दिया। इसके फलस्वरूप देश की स्वाधीनता के बाद स्थापित एक लोकतन्त्रीय प्रणाली और खुली और प्रतियोगितात्मक राजनीतिक प्रणाली ने भी न केवल राजनीतिज्ञों के कार्यो को ही न्यायोचित ठहराया, वरण इसमें उनकी पूर्व स्थिति को भी समाज के ढांचे पर स्थापित कर दिया।

10.4.4 ग्रामीण आबादी और लोक नौकरशाही की आर्थिक–सामाजिक पृष्ठभूमि

पाठकों को भारतीय ग्रामीण समाज और भारतीय लोक नौकरशाही से संबंधित मुख्य बात जो बतानी है वह यह है कि इन दोनों के मध्य आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमी में बहुत अन्तर है। अधिकांश लोक सेवक मध्यम और उच्च मध्यम श्रेणी के हैं जो नगरीय क्षेत्रों में पले–बढ़े हैं और वे अच्छे पड़े हुए भी हैं। अधिकतर लोक सेवक ग्रामीण जीवन की समस्याओं से अनभिज्ञ ही हैं। ग्रामीण नागरिकों और लोक नौकरशाही के हितों और मूल्यों में टकराव, संघर्ष और प्रतिरोध होता है। स्टेनली जे. हेगिनबोथम ने अपनी एक ' 'कल्वर्स इन कॉनपिलक्ट' ' (Cultures in Conflict) में भारतीय ग्रामीण जीवन के स्वरूप और भारतीय लोक नौकरशाही पर उसके प्रभाव का बहुत विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। गाँव के सामाजिक जीवन के मानदण्ड लोक नौकरशाही में सत्तावाद और श्रेणीबद्धता के मानदण्डों को बहुत ही मजबूत बनाते हैं।

भारत में ग्रामीण विकास की महती आवश्यकता है। ग्रामीण आर्थिक–सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश को देखते हुए लोक प्रशासन से यह अपेक्षा की जाती है कि वह एक प्रभावी तंत्र बनकर विकास में समुचित योगदान दे, ग्रामीण भारत की सामाजिक–सांस्कृतिक लोकाचार को समझे और उसके अनुकूल व्यवहार करें।

लोक प्रशासन इस अपेक्षा के विपरीत व्यवहार करता है, वह ग्रामीणजन का शोषण करता है और उनकी अशिक्षा और भोलेपन का फायदा उठाता है। अनेक अध्ययन से लोक नौकरशाही के शहरी पूर्वाग्रहों का ज्ञात होता है। स्वतंत्रता के इतने वर्षा बाद भी आज लोक प्रशासन और ग्रामीणजन के मध्य दूरी है और खाई बनी हुई है। ऐसी स्थिति में विकास प्रशासन में बाधा आना स्वाभाविक है।

सी.पी. भाभरी और अन्य कई विद्वानों ने भारतीय नौकरशाही का अध्ययन करके यह बताया है भारतीय लोक सेवा का एक विशिष्ट चरित्र है। भारतीय नौकरशाही में साधारण व्यक्ति की समस्याओं के प्रति लगाव का अभाव है और उनमें अपने को उनसे श्रेष्ठ समझने की भावना विद्यमान है। संभवत: यह नौकरशाही के मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग की पृष्ठभूमि से उत्पन्न होती है।

भारतीय नौकरशाही के ऊपर अनेक अध्ययन किये गये हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि प्रशासकों के व्यवहार का एक खास तरीका होता है। प्रशासक को अपने अनुभव के आधार पर वास्तविकता का बोध होता है। शोधकर्ताओं का कहना है कि प्रशासक जो कुछ देखता है वह इस बात पर निर्भर करता

है कि वे किस नजरिये से देख रहे हैं। यह सब उनके आर्थिक–सामाजिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है।

10.4.5 भारतीय अधिकारितंत्र का सतावादी चरित्र (Authoritarian Character of Indian Bureaucracy)

भारत में जाति प्रथा और पारिवारिक वातावरण ने प्रशासनिक और प्रबंधकीय संस्कृति को बहुत अधिक प्रभावित किया है। जाति प्रथा में निम्न जाति के सदस्यों से अपेक्षा की जाती है कि वे उच्च जाति के लोगों को अतिसम्मान देंगे और उनके आदेशों का पालन बिना प्रश्न किये करते चलेंगे। जातियों का आपसी उच्च और निम्न का श्रेणतनत्रीय व्यवस्था परिवार में घरेलू रहन–सहन में भी प्रतिबिम्बित होता है जहां हर छोटा सदस्य बड़ों पर आश्रित होता है। परिवार की सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान पिता के हाथ में माना जाता है। पिता के या बड़ों के निर्णयों पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगा सकता है। लोक प्रशासन हो चाहे निजी प्रशासन, भारत में पैतृक ढंग के अत्यधिक सत्तावादी रोब–दाब वाले सत्ता सम्बन्ध होना एक स्वाभाविक स्थिति है। जाति या पारिवारिक बंधनों की कठोरता प्रबंधकीय कार्यालयों में भी पायी जाती है जहां उच्चाधिकारी को सदैव सही' माना जाता है। ऐसे में सुनम्यता असहनीय है। लोगों को यह शिक्षा दी जाती है कि उच्चाधिकारियों के आदेशों का पालन बिना किसी प्रश्न के उठाये अक्षरश: करते चलें।

उच्चाधिकारी अपने प्रति व्यक्तिगत निष्ठा को अच्छा मानता है, काम के प्रति नहीं। ऐसे में कर्मचारी अपने उच्चाधिकारी की तुलना में अपने आप को बहुत हेय समझता है। उच्चधिकारी अपने अधीनस्थों के आत्म–सम्मान को नष्ट करते हैं। इसी का परिणाम हैं कि भारत में लोक प्रशासन में सूचना का प्रवाह सदैव एक दिशा में–ऊपर से नीचे की ओर रहता है। आम व्यक्ति या कर्मचारी की राय को कोई नहीं पूछता। लोग दब्बू बन जाते हैं और ऐसे दब्बू कर्मचारी को उच्चाधिकारी परस्कृत करते हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि भारतीय नौकरशाही की सत्तावादी, जनविरोधी और प्रजातंत्र विरोधी संस्कृति ब्रिटिश उपनिवेश की देन है। चाहे छोटे पद पर कार्यरत हो या बड़े, समस्त भारतीय नौकरशाहों को ब्रिटिश अधिकारी और शासन अत्यधिक दबा कर रखते थे, उन पर कठोर अनुशासन का दबाव रहता था और ऐसे कर्मचारी–अधिकारी को श्रेष्ठ माना जाता था जो ब्रिटिश–हुकूमत के प्रति प्रतिबद्धता और समर्पण रखता था। ब्रिटिश साम्राज्य के समय यहां न तो प्रजातांत्रिक संस्थाएं ही थीं और न ही प्रशासन पर प्रजातांत्रिक नियंत्रण विद्यमान था। प्रशासन पर हजारों किलोमीटर दूर ब्रिटिश संसद का शासन था जिसका संचालन भारत में अंग्रेज गर्वनर जनरल और उसके अधीनस्थों द्वारा किया जाता था। समस्त नौकरशाहों से अपेक्षा की जाती थी कि वे ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार रहते हुए भारतीय नागरिकों पर कठोरता से प्रशासन को चलाएं। भारतीय मानवश्रम और यहां के प्राकृतिक स्रोतों को अधिकाधिक लम्बे समय तक दोहन करने में सहायक हों और यहां के नागरिकों की स्वतंत्रता की मांग को डण्डे और बंदूक के बल पर कुचलता चलें। अंग्रेजों ने एक ऐसी शासन व्यवस्था को खड़ा किया और उसे पनपाया जो ब्रिटेन के हितों की रक्षा करने के लिए भारतीय नागरिकों के हितों की अवहेलना ही नहीं करे वरण आतंक और भय पैदा करके अंग्रेजी हुकूमत को स्वीकारे। सम्पूर्ण प्रशासन व्यवस्था अत्यधिक कठोर, जनविरोधी, प्रजातंत्र विरोधी और ब्रिटिश हितों की पोषक थी। इसका परिणाम यह

हुआ कि नौकरशाही में ऐसी संस्कृति ने घर कर लिया जो जनविरोधी और प्रजातंत्र विरोधी हो गई। सभी छोटे व बड़े पदों पर आसीन लोक सेवक अपने आप को 'स्वामी' (Master) समझते थे और उनमें 'नागरिक' (civil) और 'सेवक' (servant) होने का गुण नहीं रहा। यह गुण अंग्रेजी शासन के लिए बड़ा ही मुफीद था जो स्वतंत्रता के पश्चात प्रजातांत्रिक व्यवस्था के प्रतिकुल हैं। यह सत्तावादी, जनविरोधी और प्रजातंत्र विरोधी प्रकृति अभी तक भारतीय नौकरशाही से दूर नहीं हो सकी है।

वर्तमान में सत्तावादी, जनविरोधी और प्रजातंत्र विरोधी संस्कृति का सीधा दुष्प्रभाव विकास प्रशासन पर सु रहा है। नौकरशाहों को भारतीय गरीबों, पिछड़ों और दलितों से किसी प्रकार की हमदर्दी नहीं है। प्रशासनिक विकास और सुधार के अनेक प्रयत्नों का इस कुसंस्कृति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। नौकरशाह अभी तक अपने आम को स्वामी या शासक मान कर चलते हैं। संघीय और राज्य सरकारों द्वारा अच्छी–अच्छी विकास योजनाएं बनाई जाती हैं, लेकिन उनका आशातीत प्रभाव नहीं पड़ा है। नौकरशाह हर योजना और कार्यक्रम में रसहित का मार्ग खोज लेते हैं और जनता का शोषण करते हुए अपना घर भरने में लगे रहते हैं।

अधिकांश नौकरशाह वे हैं जो शहरों में पले–बड़े हुए, आर्थिक–सामाजिक दृष्टि से सम्पन्न हैं और अच्छे स्कूल–कॉलेज–विश्वविद्यालय में पढ़े हैं। वे गरीबी का अर्थ ही नहीं जानते तो गरीबों की पीड़ा वे क्या समझें। निष्ठा, मध्य और दलित वर्गो रो आने वाले नौकरशाह, भी शीघ्र ही सत्तावाद, जन विरोधी और प्रजातंत्र विरोधी संस्कृति में रंग जाते हैं और अपने सम्पूर्ण सेवा काल में इससे प्रेरित होकर व्यवहार करते रहते हैं। शोधार्थियों का कहना कि सेवा से अवकाश प्राप्ति के पश्चात् भी इस संस्कृति की बू उनमें से जा नहीं पाती है और वे आम जन से सदैव कटे–कटे रहते हैं।

प्रशासनिक संस्कृति का सीधा प्रभाव अभिप्रेरण, अधिकार और संप्रेषण पर पड़े बिना नहीं रहता है। इन बिन्दुओ पर यहां चर्चा करना समीचीन होगा।

10.4.6 अभिप्रेरण (Motivation)

जी.पी. चट्टोपाध्याय का कहना है कि ' 'भारतीय व्यक्तित्व परिपक्व अन्योन्याश्रित तरीके में व्यवहार करने में असल में है। यदि वह शक्ति सम्पन्न स्थिति में होता है तो वह सर्वशक्तिमान होने की कल्पना करता है जिससे अन्य की शक्ति कम हो जाती है और वे आश्रित बन जाते हैं या जब उनका सामना अधिक शक्ति सम्पन्न व्यक्तियो ने होता है तो वह अपने को शक्तिहीन समझता है और विश्वास करता है कि वह उन पर आश्रित है। भारतीय प्रबंधकों में भाग्यवाद (Fatalism) उपलब्धि की दिशा में बाधक है, उन्हें अपने पर्यावरण को बनाने में असहाय बना देता है और वे प्राधिकार सम्पन्न व्यक्तियों पर आश्रित हो जाते हैं।

10.4.7 अभिप्रेरण और विकास प्रशासन

शोध अध्ययनों में पाया कि भारत में अभिप्रेरण में निर्धारक कारकों में एक कारक संस्कृति है। मैकलेलैण्ड ने पाया कि विभिन्न देशों में संस्कृति, धार्मिक विश्तासो और वर्ग संरचना आदि के कारण आम लोगों में बहुत कम पहल की शक्ति होती है जबकि अन्य देशों में यह अन्य प्रकार का हो सकता है। भारतीय दर्शन में ' 'कर्म' ' दूसरे लोक पर बल देता है; भारतीय नौकरशाही की उपव्यि की दिषा में यह एक बड़ा बाधक तत्व है।

10.4.8 प्राधिकार और विकास प्रशासन

समाज में प्राधिकार संस्कृति से सम्बन्धित है। सामन्ती विचारधारा वाले समाज में अधिकारयुक्त व्यक्तियों को श्रेष्ठ ही नहीं माना जाता वरण उन्हें एक पवित्र वस्तु के रूप में स्वीकार किया जाता है। उनके व्यवहार और आचरण पर टोका–टाकी नहीं की जाती है। उनके आदेश आँख मूंद कर स्वीकार्य होते हैं। पदसोपान में उनसे नीचे के स्तर के व्यक्तियों द्वारा उनके प्रति व्यक्तिगत वफादारी सुनिश्चित हो जाती है। इस प्रवृत्ति से सार्वजनिक संगठनों में कुछ दुश्क्रियाएं पनपती हैं जैसे– व्यक्ति पूजा या स्वयं के व्यक्तिगत लक्ष्यों के लिए प्राधिकारों का उपयोग करना। इससे संगठन के लक्ष्यों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

भारतीय संस्कृति यह अपेक्षा करती है कि उच्च हैसियत वाले लोगों के सम्मुख अरूचिकर बातों का उल्लेख न किया जाए, उन्हें सदैव सम्मान से सम्बोन्धित करना चाहिये और उनसे केवल वही बात करें जो उन्हें सुहाती है, या रूचिकर लगती है। ऐसे में निम्न स्तर के व्यक्ति के लिए उच्चाधिकारी को ऐसी सूचना या राय प्रकट करना कठिन हो जाता है यदि वह यह महसूस करें कि इससे उच्चाधिकारी को बुरा लगेगा। ऐसी स्थिति में संगठन में मात्र चाटुकारिता पनपती है। सार्वजनिक संगठन प्रधान कार्यपालकों के व्यक्तित्व का विस्तार मात्र है। संगठन में दुविधाओं का बोलबाला रहता है और विकास कार्य अवरूद्ध होते हैं।

रिचर्ड टॉब (Richard Taub) ने भारतीय नौकरशाही पर शोध के दौरान इसकी कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों को पाया है; विशिष्टतापरक बंधनों के आधार पर लोगों के किसी भी समूह की छोटे–छोटे समूहों में बांटने की प्रवृत्ति आम है। इनमें विश्वास का प्राय: अभाव है और वे सदैव ही प्राधिकार देने की अनिच्छा रखते है। परम्परा में मानव संबंधों के बारे में सोचने में वर्ण–व्यवस्था की विचारधारा द्वारा प्रोत्साहित किये जाने की प्रवृत्ति विद्धमान है। अधिकार के प्रति सोपानिक संदर्भ पाया गया।

10.4.9 सप्रेषण और विकास प्रशासन (Communication and Development Administration)

प्रत्येक नौकरशाही में संप्रेषण एक अतिमहत्त्वपूर्ण प्रशासनिक प्रक्रिया है। कुशल–संप्रेषण की अनुपस्थिति में किसी भी संगठन के लिए अपने लक्ष्य की पूर्ति करना असम्भव है। संगठन में कार्यकरत कार्मिकों के मध्य विचारों, संकल्पनाओं, भावनाओं, और अनुभूतियों के अंतरण की प्रक्रिया के रूप में सम्प्रेषण का उल्लेख किया जा सकता है। प्रत्येक समाजों में सम्प्रेषण प्रक्रिया पूर्णत: उसकी संस्कृति से प्रभावित रहती है।

भारतीय संगठनों में अधिकतर सम्प्रेषण ऊपर से नीचे की और अर्थात् केवल एक तरफा (One way process) ही पाया जाता है। इसे भारतीय सामाजिक संस्कृति का प्रतिबिम्ब भी माना जाता है। सर्वमुक्तवादी सभ्यताओं (Universalistic culture) में कम हैसियत के लोगों द्वारा अपने से श्रेष्ठ हैसियत के लोगों के विराद्ध बोलने या कड़वी या अरूचिकर बातें कहने पर कोई प्रतिबंध नहीं होता है, जबकि विशिष्ट मुक्तिवादी सभ्यताओं में खामोशी को तरजीह दी जाती है और ऊपर की हैसियत वालों के विरुद्ध बोलना अशिष्टता समझा जाता है। एक प्रकार से नीचे से ऊपर की और सम्प्रेषण का भारत में प्रचलन नहीं हैं, इसे सदैव हतोत्साहित किया जाता है और यह प्रशासन में गिरावट लाता है तथा विकास के मार्ग को अवरूद्ध करता है।

10.4.10 नौकरशाही का अपकार्यवाद (Bureaucratic Disfunctionalism)

भारत में अधिकांश नौकरशाहों का दिन–प्रतिदिन का कार्य और व्यवहार ऐसा है जिसे अपकार्यवाद की संज्ञा दी जाती है। सभी का झुकाव ऐसा है जिसे जातिवाद की संज्ञा दी जा सकती है। प्रशासनिक निर्णय लेते समय लोक सेवकों से अपेक्षा की जाती है कि वे सदैव तटस्थ और निष्पक्ष रह कर कार्य करेंगे। विडम्बना यह है कि भारत में लोक सेवकों के निर्णय और सारे कार्य जात–पात से प्रभावित पाये जाते हैं। नीतियों और योजनाओं को कार्यरूप में परिणित करते समय प्रत्येक नौकरशाह की पहली इच्छा यह होती है कि इससे सबसे पहले मैं स्वयं को, फिर स्वयं के परिवार वालों को उसके पश्चात् दूर–दराज के रिश्तेदारों को किस प्रकार उपकृत करूं। इसी तरह से क्षेत्रीयता (Regionalism) की भावना और आचरण भारतीय राजनीति में भी देखेने में आता है। वंशवाद, परिवारवाद, जातिवाद अधिकाष दलों में भारत में स्पष्ट तौर से झलकता है। निर्वाचन के समय टिकट वितरण की बात हो या मंत्रिमण्डल के गठन की बात हो यंत्र–तंत्र–सर्वत्र परिवारवाद, जातिवाद और क्षेत्रीयता से निर्णय प्रेरित होते हैं।

नौकरशाही की ये दुष्कियाएं सामान्य प्रशासन में, कार्मिक प्रशासन में, आर्थिक प्रशासन में और विकास प्रशासन सभी में यह परिलक्षित होती हैं। यह एक प्रकार से भारत में सामान्य व्यवहार है जो दिन पर दिन प्रबल होता जा रहा है। समाज के कुछ वर्गो में यह अधिक है तो अन्य कुछ वर्गो में इसकी मात्रा व तीव्रता कुछ कम है। शिक्षित और संभ्रांत कहा जाने वाला वर्ग भी कुछ तो आदतन इसे अपनाते हैं और कुछ अन्य वर्गो द्वारा इस प्रकार के आचरण से प्रेरित होकर ऐसा करने लगे हैं। कुछ वर्गो को आरक्षण दिये जाने के फलस्वरूप भी अन्य वर्ग संगठिन होकर अपने जाति वालों को लाभ पहुंचाने का प्रयत्न करने लगे हैं। अपनों को उपकृत करने के लिए राजकीय नीतियों और नियमों में ही रास्ता निकाल लेते हैं। कुछ चतुर लोग अपने इस कृत्य को न्यायोचित ठहराने के लिये इसे किसी सिद्धान्त या नीति का आवरण पहनाने का प्रयत्न करते हैं। लोक सेवाओं में चाहे भर्ती का मामला हो या फिर पेट्रोल पम्प के वितरण का मामला हो या कोई अन्य कार्यो में इस प्रकार का व्यवहार सामान्य है। किसी व्यक्ति को किसी सरकारी कर्मचारी या कार्यालय से काम पड़ जाता है तो सबसे पहले यही जानकारी जुटाने का प्रयत्न करता है कि वहां पर कोई अपने रिश्तेदार या मित्र या कोई अन्य मिलने वाला है क्या जिससे अपना काम आसानी से निकलाया जा सके।

भारत में सरकारी अधिकारियों की मनोवृत्ति केवल वैयक्तिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों या जात–पात पर आधारित नहीं होती बल्कि उसमें ' 'सजातीय–विस्तारवाद' ' की भावना भी पाई जाती हैं। इसमें यह अपने आप में अन्य सभी तौर–तरीकों से श्रेष्ठ है, अत: उसे रचयं जो परिरिथतियों से श्रेष्ठ लगती है, वे सबको अच्छी लगनी चाहिए। "सजातीय–विस्तारवाद" (Ethno – expansionism) की संकल्पना भारतीय अधिकारितत्र के सांस्कृतिक संदर्भ के विश्लेषण के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। जब उच्च जातियां अधिकारितत्रीय पदों पर आसीन होती हैं, उनका लक्ष्य केवल पक्षपात के माध्यम से अपनी जाति को बढ़ावा देना ही नहीं होता, बल्कि अपनी जाति के मूल्यों को ऐसी प्रतिष्ठा दिलाना भी होता है जो उनके विचार से अन्य समूहों, जातियों और समुदायों को स्वीकार्य होने चाहिए।

वी. सुब्रहमण्यम ने भारतीय नौकरशाही का अध्ययन करके इसके व्यवहार का चित्रण ' 'हिन्दू वैल्यूज एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन' ' नामक लेख में किया है। उन्होंने पाया कि भारत में नौकरशाही में कार्यरत अधिसंख्य हिन्दू जाति के लोग हैं इस कारण उन्होंने हिन्दू मूल्यों के विषय में कहा है। सुब्रहमण्यम ने इस बात पर विशेष बल दिया कि आसपास के समाज के मूल्यों की तुलना में नौकरशाही द्वारा विकसित मूल्यों का अध्ययन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। सुब्रहमण्यम ने हिन्दू परम्परा में प्रचलित ऐसे तीन प्रमुख तत्वों को खोज निकाला जो भारतीय नौकरशाही में तर्कसंगत निर्णय करने के विपरीत दिशा में काम करते हैं। सुब्रहमण्यम के शब्दों में ' 'पहला, मूलतः कई परस्पर व्यवर्तक विकल्पों से चुनने का निर्णय है और मूल्य हिन्दू दृष्टिकोण ऐसे विकल्पों के अस्तित्व को नकारता है।

दूसरा, निर्णय का अभिप्राय कार्य की उस दिशा को उस दृष्टिकोण से चुनना है, जिस पर तत्काल कार्रवाई की जानी है। निर्णय के पाश्चात्य अर्थ में यह भी निहित है कि कार्य की उस विशेष दिशा में उसके पक्ष में निर्णय लेते समय उन सभी कठिनाइयों को ध्यान में रखा गया है फिर भी निर्णय के बारे में औसत हिन्दू विचारधारा अंग्रेजी वाक्यांश पुण्य संकल्प (Pious resoution) के अधिक समीप है। हम भारत में नियोजकों,. राजनीतिज्ञों से लगातार और ओछा तर्क सुनते आ रहे हैं कि नीतियां तो अच्छी हैं, परन्तु उनका कार्यान्वयन खराब है। यह ' 'निर्णय' ' शब्द के साथ जुड़े हुए एक विशेष भारतीय अर्थ का परिणाम है। वास्तव में एक औसत ' 'हिन्दु' ' अपने विभाग से आदेश और प्रचलन के बीच तथा आदर्श और यथार्थ के बीच की दूरी असंभव है, मानकर चलता है। इस विचार से वह इतना सामंजस्य स्थापित कर चुका है कि वह स्वभावतः निर्णय और निष्पादन को अलग–अलग करने में इस दूरी को बनाए रखता है, जबकि इस प्रकार की दूरी ' 'निर्णय' शब्द की पाश्चात्य व्याख्या में नहीं पाई जाती है। तीसरा, निर्णय या विकल्प का अभिप्राय प्राथमिकता के खास क्रम में विभिन्न विकल्पों को सूचीबद्ध करना है और यदि संभव हो तो प्राथमिकताओं की यह आधारभूत सूची प्रत्येक की निर्धारित मूल्यों की आधारभूत सूची हो। हिन्दू विचारक सदा ही बड़ी–बड़ी संख्याओं की बातें करने में खोए रहते हैं, जैसे योग, करोड़ । इस प्रकार, बड़ी–बड़ी बातें करके, अनायास ये छोटे–छोटे अन्तर जो बहुत महत्वपूर्ण होते हैं, दिन–प्रतिदिन के निर्णयों में निरर्थक दिखाई देने लगते हैं।

10.4.11 प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप

भारत में नौकरशाही को आन्तरिक मामलों में राजनीतिज्ञों के हस्तक्षेप ने विगत दशकों में अनेक विवाद व तनाव उत्पन्न कर दिये थे और वह क्रम आज भी जारी है। बरजी; राव और मंगतराय की सामान्य धारणा है कि राजनीतिक नेताओं का दबाव, व्यक्तिवाद और राजनीतिक हस्तक्षेप ही भारतीय नौकरशाही के गिरते हुए स्तर के लिए उत्तरदायी है।

वर्तमान भारत के लगभग सभी राजनीतिज्ञ न्याय–सम्बन्धी सिद्धान्तों, कार्य करने की विधि और नियमों की पवित्रता पर दृढ़ नहीं हैं। विगत दशकों में राजनीतिज्ञों द्वारा कानूनी व्यवस्था को अपमानित करते हुए और कानूनों का उल्लंघन करते हुए प्रशासन पर अपनी मांगों को पूर्ण करने के लिए दबाव डाला जाता रहा है। भारतीय लोक प्रशासन पर राजनीतिज्ञ हावी रहे हैं, उन्होंने अपना हित साधने में पदोन्नति व स्थानान्तरण को औजार के रूप में काम में लिया और अपने भाव को स्थापित करने में सफल रहे हैं।

राजनीतिज्ञ अपने व्यक्तिगत अथवा दलीय हितों की पूर्ति के लिये प्रशासन में हस्तक्षेप करते हैं। राजनीतिज्ञ अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिये अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की सहायता लेते हैं। नोकरशाही एक शक्तिशाली सामाजिक समूह के रूप में अपना एक स्वतंत्र एवं स्वत: समर्थित ढांचा रखती हैं। नौकरशाही के कार्यो के सम्पादन में राजनीति हस्तक्षेप करती है और नौकरशाही को न केवल इसका सामना ही करना पड़ता है, वरन् इसकी गति को भी रोकना पड़ता है। इस प्रकार राजनीतिक हस्तक्षेप को रोकने के लिए, नौकरशाही को अपने मुवक्विल अर्थात् नागरिकों की सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

10.4.12 सामाजिक न्याय और निर्धनता उन्मूलन (Social Justice and Poverty Allevation)

स्वतंत्र भारत में केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा सामाजिक न्याय और निर्धनता उन्मूलन के उद्देश्य से अनेक योजनाएं बनाई और उनका क्रियान्वयन किया गया है, लेकिन उनको आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हुई है। कानूनी खामियों के कारण भूमि सुधार नहीं के बराबर हुआ है। गरीबी ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक है जबकि योजनाओं का लाभ शहरी क्षेत्रों में रहने वाले को अधिक मिला है। हरित क्रांति से खुशहाली के कुछ द्वीप जरूर पनप गए हैं जिन्हें देखकर योजनाकार खुश हो लेते हैं। लेकिन आए दिन भारतीय किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं जिससे हमारे कार्यक्रमों की पोल स्वत: खुल जाती है। यहाँ तक कि पंजाब जैसे राज्य, जिसने भारत को खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, में आए दिन किसान आत्महत्याएँ कर रहे है।

ग्रामीण क्षेत्रों में चहुंमुखी विकास की दृष्टि से पंचायती राज संस्थाओं का गठन किया गया था लेकिन उनसे भी बहुत अधिक लाभ नहीं हुआ है। पंचायती राज प्रतिनिधि और लोक सेवकों ने मिलकर विकास कार्यक्रमों को इस ढंग से क्रियान्वित किया है कि सम्पन्न वर्ग और सम्पन्न हुआ है और गरीब और अधिक गरीब हुआ है। विकास योजनाओं के लिए ग्राम सभा के द्वारा भी जिन इकाइयों का चयन किया जाता है उनमें से 15–20 प्रतिशत इसके हकदार ही नहीं हैं, सही अर्थो में वे गरीबी रेखा से समुचित ऊपर होते हैं।

10.4.13 आरक्षण का विकास प्रशासन पर प्रभाव:

आरक्षण का लाभ आरक्षित वर्गो के सम्पन्न परिवारों को निरन्तर प्राप्त हो रहा है जबकि इन्हीं के कमजोर और गरीब परिवार लाभ से निरन्तर दूर ही रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मलाइदारों **(Cremlayer)** को रोकने का आदेश दिया है जिसे नीति नियतताओ ने अप्रभावी बना दिया है।

राजनैतिक लाभ के उद्देश्य से हर अगले चुनाव में जाति को भूनाने में प्रत्येक दल की भूमिका छलावे की रही है जिससे जाति के बंधन जटिल से जटिलतम होते जा रहे हैं और इसका आर्थिक–सामाजिक विकास पर सदैव प्रतिकूल प्रभाव पड़ता रहा है। जाति के आधार पर सभी सामाजिक वर्ग आए दिन आरक्षण की मांग करते हैं और संगठित होकर केन्द्र व राज्य सरकारों पर अपना दबाव बनाते रहते हैं। आरक्षण के लिए आन्दोलन अनेकों बार हिंसात्मक रूप धारण कर लेता है। आरक्षण प्राप्त करने के उद्देश्य से राजस्थान में गुर्जरों का 2007 और 2008 का ताजा उदाहरण है। ऐसे आन्दोलनों में निजी और सरकारी सम्पत्ति को क्षति पहुंचाई जाती है, करोड़ों का व्यवसाय ठप्प हो जाता है, कितने

ही लोग जख्मी हो जाते हैं, कितनों की ही मृत्यु हो जाती है और इस दौरान विकास कार्य अवरूद्ध हो जाता है।

विश्लेषकों का कहना है कि आरक्षण के फलस्वरूप सामाजिक न्याय की बात कही जाती है। लेकिन आरक्षण के कारण उच्च वर्ग के नवयुवकों के साथ अन्याय होता है एवं शिक्षण –संस्थाओं में और लोक सेवाओं में दोयम दर्जे के उम्मीदवारों को तरजीह देने से प्रशासनिक कुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और इससे विकास पर भी कुप्रभाव पड़ता है।

10.5 सारांश

इस इकाई में हमने भारतीय समाज की संस्कृति और उसका विकास प्रशासन पर पडने वाले प्रभाव की चर्चा की है। हमने संस्कृति और नौकरशाही की पारस्परिक क्रियाओं की भी चर्चा की है। इस इकाई में की गई चर्चा में सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों और नौकरशाही के अंतसंबंधों पर प्रकाश डाला गया है। समाज, संस्कृति और पर्यावरण का महत्वपूर्ण प्रतिमान (Pattern) होता है जिसे समझे बिना विकास प्रशासन को सही दिशा देना असंभव होता है। किसी भी समाज की प्रशासनिक व्यवस्था और नौकरशाही को भली प्रकार से समझने के लिए सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ समझना पूर्व शर्त है।

10.6 शब्दावली

साम्प्रदायिकता : इससे अभिप्राय समाज में प्रचलित वर्ग भावना से है जिसका उद्देश्य मात्र धर्म पर केन्द्रित भावनाएं भड़काना है।

समतावादी समाज : इसका अर्थ एक ऐसे समाज से होता है जो इस विश्वास का समर्थन करता है कि समाज के समस्त सदस्य समान हैं, उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में समान अधिकार और अवसर प्राप्त होने चाहिये।

भाग्यवाद : यह एक सिद्धान्त है जिसकी यह धारणा हैं कि समस्त चीजें या घटनाएँ होकर ही रहेंगी, उसे टाला नहीं जा सकता है।

पितृसत्तात्मक : इससे अभिप्राय एक ऐसे सामाजिक संगठन से है जिसमें कबीले, दल या परिवार का मुख्यिा पिता होता है। पितृसत्तात्मक समाज में समस्त या अधिकांश अधिकार पुरूष या परिवार के सबसे बड़े बुजुर्ग के पास होते हैं।

पितृ कल्पीय : जिस प्रकार परिवार में पिता अपने बच्चों की देखभाल करता, उनकी आवश्यकताओं और मांगों की पूर्ति करता है, उसी प्रकार व्यक्ति, कम्पनी, समाज या देश के समस्त कार्यो का प्रबंधन करना या उन्हें शासित करने में अधिकार के सिद्धान्त या प्रथा।

10.10 अभ्यास प्रश्न

1. संस्कृति की अवधारणा बताते हुए नौकरशाही की संस्कृति के विकास प्रशासन पर पड़ने वाले प्रभावों से अवगत करवाइये।
2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये :

   (अ) नौकरशाही।

   (ब) संस्कृति।

   (स) नौकरशाही की दुष्कियाएं।

   (द) नौकरशाही पर धर्म और जातिवाद का प्रभाव।

3. भारतीय नौकरशाही की संस्कृति का परिचय देते हु ए इसके विकास प्रशासन पर होनेवाले प्रभावों से अवगत करवाइये।
4. 'किसी भी समाज की नौकरशाही का स्वरूप वहां की संस्कृति का परिणाम होती है' ' इस कथन के आलोक में उदाहरण सहित अपना मत प्रकट कीजिये।

10.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. आर.बी जैन, 'भारतीय समाज, अधिकारीतंत्र और सुशासन', हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, नई दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2007।

2. आर. बी. जैन और ओ.पी. द्वेदी, 'एडमिनिस्ट्रेटिव कल्चर एण्ड ब्यूरोक्रेटिक वेल्यूज़ इन इण्डिया,' पब्लिक पोलिसि एण्ड एडमिनिटस्ट्रेटिव स्टेडीज पर पांचवें सम्मेलन में प्रस्तुत पत्र, गल्प विश्वविद्यालय, गल्प, अप्रेल 22, 1988।

3. मरियम शर्मा, 'दी पोलिटिक्स ऑफ इनइक्वेलिटि, कोम्पिटीशन, एण्ड कन्ट्रोल इन एन इण्डियन विलेज,हिन्दुस्तान पब्लिशिंग कं., दिल्ली, 1979।

4. लोक सेवाओं में नैतिकता के लिए देखिये : ओपी द्वेदी और आर. बी. जैन (सम्पा.) इण्डियाज एडमिनिस्ट्रेटिव स्टेट, गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1985।

5. नोकरशाही और संस्कृति के सैद्धान्तिक पक्ष के लिए देखिये : डेविड नचमियास और डेविड एच. रोशोन 'ब्यूरोक्रेटिक कल्चर', क्रूम हेल्म लि., लंदन, 1976।

6. स्टेनले हेगिनबोथम 'कल्चर इन कोनपिलक्ट : द फोर फेसेज ऑफ इण्डियन ब्यूरोक्रेसी, ' बर्कले यूनिवर्सिटि ऑफ केलिफोर्निया प्रेस, केलिफोर्निया, 1975।

इकाई – 11

गैर सरकारी संगठनों की स्थिति व भूमिका

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 गैर सरकारी संगठनों के प्रकार

11.3 विकासशील समाज में गैर सरकारी संगठन

11.4 कानूनी ढौचा

11.5 शासन व गैर सरकारी संगठनों के अंतर्सम्बन्ध

11.6 गैर सरकारी संगठनों का निधिकरण

11.7 सारांश

11.8 अभ्यास प्रश्न

11.9 संदर्भ ग्रन्थ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात छात्र निम्नांकित को समझ सकेंगे :–

- गैर सरकारी संगठन क्या हैं और उनके विभिन्न प्रकार
- भारत का वह कानूनी ढांचा जिसके अन्तर्गत गैर सरकारी संगठनों का अस्तित्व है
- समाज को विकसित करने में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका
- सरकार व गैर सरकारी संगठनों के परस्पर संबंधों की गत्यातमकता
- गैर सरकारी संगठनों के निधिकरण के स्रोत व विधियां

11.1 प्रस्तावना

मानवजाति की विकासात्मक प्रक्रिया में, यदि कोई घटक स्थिर और काफी हद तक अप्रभावित रहा है तो वह है कल्याण के प्रति आग्रह। राजकीय संस्थाओं के समानान्तर कार्य करते हुए, साथ ही शासकीय संस्थाओं के साथ घनिष्ठ संबंध बनाए रखते हुए, गैर सरकारी संगठनों के नाम से जानी जाने वाली इन स्वयंसेवी संस्थाओं ने सदैव समाज के विकास में महत्वपूर्ण व सार्थक भूमिका निभाई है। विभिन्न स्थितियों में स्व–प्रबंधन के प्रति मनुष्य की मूलभूत प्रबल प्रेरणा के कारण ऐसी संस्थाएं अस्तित्व में आती हैं। यह समाज के विकास का लक्ष्य लेकर समान विचारधारा वाले व्यक्तिओं के साथ आने का परिणाम होती हैं। यह गैर लाभकारी संस्थाएं होती है, जो मुख्यत: स्वैच्छिक व्यक्तिगत योगदानों व सरकारी एवं अन्य माध्यमों से प्राप्त अनुदानों की सहायता से संचालित होती हैं। ये अधिकांशत: शासन के नियन्त्रण से मुक्त होती हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से इनकी परिभाषा है ' सदस्यों के किसी समान हित को प्रोत्साहन देने हेतु स्वैच्छिक सदस्यता के आधार पर संगठित हुए व्यक्तिओं का समूह जिस पर शासकीय नियन्त्रण न हो। ' स्वयंसेवी संस्थाओं की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

- औपचारिक संगठन
- सार्वजनिक हित के विषयों व सरोकारों में सम्मिलित
- राजकीय व शासकीय संस्थाओं से स्वतंत्रता
- गैर लाभकारी, एवं
- स्व–शासी व स्वतंत्र निर्णय लेने वाली संस्था

शासकीय दृष्टिकोण से किसी एक्ट के अन्तर्गत गैरलाभकारी संस्था के रूप में पंजीकष्त किसी भी माध्यम को स्वयंसेवी संगठन है।

राज्य के अस्तित्व में आने से पहले व बाद में भी गैर सरकारी संगठन जरूरतमंदों, तिरस्कृत, व दलितों की बहुमूल्य सेवा करते रहे हैं। प्राकृतिक विपदाओं के समय में इनके द्वारा किया गया राहत कार्य सदैव द्रष्टव्य रहा है।

शाब्दिक रूप में गैर सरकारी संगठन के उान्तर्गत सरकार के बाहर के सभी संगठन आ सकते हैं। इसमें राजनीतिक दल, निजी व व्यावसायिक उद्यम, विद्वतापूर्ण संस्थाएं, युवा संगठन, यहां तक कि खेल संस्थाएं भी। परन्तु ऐसी तमाम संस्थाएं गैर सरकारी संस्था की नामावली के अन्तर्गत नहीं आतीं। वास्तव में तो इस नामावली के अन्तर्गत वे संस्थाएं आती हैं जो नगरीय व ग्रामीण निर्धनों के उत्थान के उद्देश्य से विभिन्न विकास गतिविधियों में सम्मिलित रहती हैं। ऐसे संगठनों को अन्य निजी संगठनों से पृथक करने के लिए सामान्यत: 'विकासात्मक गैरसरकारी संगठन' कहते हैं।

भारत में समाज सेवा, समाज सुधार, व स्वैच्छिक सामुदाय आधारित सेवा की एक दीर्घकालीन परम्परा रही है। अनन्त काल से स्वयंसेवी संगठनों ने समाज कल्याण के लिए कार्य किया है। हमारे राष्ट्र के उत्थान में सामाजिक–राजनीतिक आन्दोलनों का सार्थक प्रभाव रहा है। इन सभी आन्दोलनों के मूल में संकल्पवाद ही रहा है।

11.2 गैर सरकारी संगठनों के प्रकार

गैर सरकारी संगठनों का क्षेत्र संस्थाओं का सम्मिश्रण है जिसे विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर श्रेणिबद्ध किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत लम्बे समय से स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय संगठनों का ऐसी दुर्बल स्थानीय संस्थाओं के साथ सह अस्तित्व होता है जिनमें न कोई कर्मचारी होते हैं और न ही कोई आय का स्थाई स्रोत। इनका वर्गीकरण चार समूहों में किया जा सकता है – सद्भाव लोकोपकार राहत प्रकार; विकासात्मक सद्भावी मिश्रित; गांधीवादी अथवा किसी एक प्रमुख विचारधारा से प्रेरित; एवं विकासात्मक–क्रिया समूह प्रकार।

विभिन्न गैर सरकारी संगठनों के मध्य स्थान के आधार पर भी विभेद किया जा सकता है। असंगठित स्थानाय संस्थाएं हैं, राष्ट्रीय (मध्यस्थ) समूह अथवा राज्यसंघ, एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठन।
स्थानीय गैर सरकारी संगठन : ये, बड़ी संख्या में उपस्थित, लोगों से सीधे जुड़े हुए जमीनी संगठन हैं। ये अपने कार्यक्षेत्र में स्थानीय होते हैं और लोगों की तात्कालिक अल्पावधिक आवश्यकताओं पर केन्द्रित होते हैं।

राष्ट्रीय (मध्यस्थ) समूह : इनको लघु संगठनों के लिए 'छत्र संगठनों' के रूप में समझा जा सकता है। ये 'अधि–स्थानीय' संगठन हैं जो कि मध्य स्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये स्थानीय संगठनों के स्कंदन से उदित होते हैं जिसका उद्देश्य इन संगठनों की आवश्यकताओं को परिपूर्ण करना होता है।

ये छात्र संगठन छोटे गैर सरकारी संगठनों की एक बड़ी संख्या की आवश्यकताओं का प्रबंधन करते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि ये उन छोटे संगठनों से सम्बद्ध हों परन्तु ये धन सहायता, प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता, शोध, एवं मूल्यांकन सुविधाओं इत्यादि क्षेत्रों में छोटे संगठनों की सहायता करते हैं।

स्थानीय व राष्ट्रीय दोनों ही प्रकार के गैर सरकारी संगठन देशज समूह। प्रयोक्ता स्थानीय ही होते है, जबकि छत्रक संगठनों के राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, व अन्तराष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने की अधिक संभावना रहती है।

अन्तराष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन : ये राष्ट्रीय संगठनों के एक संघ से उदित होते हैं, अथवा ये एक राष्ट्रीय संगठन हो सकता है जिसकी कार्यवाही गह देश के बाहर भी विस्तृत हों। इनमें से कुछ संगठन वास्तव में वैश्विक हैं, जैसे एमनेस्टी इन्टरनैशनल, रोटरी क्लब, लायन्स क्लब, CARE, रैड क्रॉस सोसायटी, आदि। कॉर्टन गैर सरकारी संगठनों को तीन पीढ़ियों में विभाजित करता है। इस विभाजन का आधार नीति योजना में उनकी भिन्न अवस्थिति है। ये हैं –

1. प्रथम पीढ़ी– राहत एवं कल्याण
2. द्वितीय पीढ़ी – सामुदायिक विकास
3. तृतीय पीढ़ी– धारणीय व्यवस्था विकास

प्रथम पीढ़ी में राहत व कल्याण अभिमुखी गतिविधियां गैर सरकारी संगठनों में प्रमुख थीं। इनके नीतिगत अभिमुखीकरण का केन्द्र न निर्धनता के तात्कालिक परिणामों के अस्थाई आधार पर उन्मूलन था।

द्वितीय पीढ़ी में, गैर सरकारी संगठनों ने स्वयं को विकासात्मक संगठनों में रूपान्तरित कर लिया। इस अवस्था में इन संगठनों की वचनबद्धता थी आवश्यक सहायता सेवाओं के माध्यम से स्थानीय स्वावलम्बन को बढ़ावा देने के लिए समुदाय का विकास करना।

तृतीय पीढ़ी में, गैर सरकारी संगठनों ने स्वयं को अधिकतम स्थानीय नियंत्रण एवं पहल के पक्ष में आवश्यक संस्थागत व नीतिगत परिवर्तनों को प्राप्त करने में लिप्त पाया। इस अवस्था में इन गैर सरकारी संगठनों ने सेवा प्रदान करने की भूमिका के स्थान पर उत्प्रेरक की भूमिका अपना ली। इनका कार्य अब विकास को अन्य संगठनों के माध्यम से सुसाध्य बनाना था।

वर्गीकरण के इन प्रयासों की प्रमुख सामान्य विशेषता है गैर सरकारी संगठनों को स्वयंसेवी कार्य के विषय में उनके द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोणों के आधार पर उन्हें विभाजित करना। इस प्रकार कल्याण, विकास, व सामाजिक परिवर्तन तीन प्रमुख अवस्थितियों के रूप में उभरते हैं।

स्वयंसेवी संगठनों के वर्गीकरण को प्रतिमानों के किसी एक समूह के आधार पर एक ढांचे के अन्तर्गत प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। निम्नांकित चार आयाम भारत में वर्तमान समय में स्थित संगठनों की श्रेणियों की व्याख्या करते हैं।

अ) कार्य की प्रकृति

कार्य की प्रकृति के आधार पर चार भिन्न प्रकार के स्वयंसेवी संगठन परिलक्षित होते हैं।

प्रथम किस्म उन संगठनों की है जो लोकोपकारिता दानधर्मिता व हितकारिता पर आधारित हैं और मुख्य रूप से अनाथालयों त असहाय जनों के आश्रयगृहों के संचालन, प्राकृतिक विपदाओं और अन्य संकटों के समय राहत सामग्री के वितरण, निर्धन छात्रों को छात्रवृति 'व अन्य लाभों का वितरण आदि में संलग्न हैं।

द्वितीय प्रकार के संगठन वे है जो शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल आदि क्षेत्रों में सेवाएं समर्पित करती हैं। यद्यपि यह किस्म अब प्रमुख नहीं है परन्तु हमारे समाज में इसकी दीर्घकालीन ऐतिहासिक उपस्थिति के कारण ये वृहद विश्व में अभी भी स्वयंसेवी क्षेत्र के बोध को आकार देते हैं।

तृतीय किस्म के संगठन मूल रूप से विकास प्रसारण कार्य पर जोर देते हैं। इस प्रकार के संगठन प्रमुखतः बेहतर खाद व बीज के वितरण, सिंचाई के लिए कुँओं की खुदाई व पम्प सेटों को लगवाना, किसानों को उन्नत कृषि विधियों में प्रशिक्षित करना, ऋण व मितव्ययिता सोसाइटियों का संगठन करने का कार्य करते हैं। चौथी किस्म के संगठनों वे हैं जो शिक्षा व संस्था निर्माण में संलग्न हैं। ये वे संगठन हैं जो अधिकार चेतना बनाने, शिक्षा व निर्धन एवं उपान्तीय वर्गो की सामूहिक शक्तियों पर आधारित जन संगठनों के निर्माण पर केन्द्रन कर रहे हैं।

ब) विचारधारा अथवा प्रेरणा

वर्गीकरण का दूसरा महत्वपूर्ण आधार है विचारधारा अथवा प्रेरणा, जो कि संगठन को गति प्रदान करती है। यह एक महत्वपूर्ण मापदण्ड है क्योंकि संगठन का दार्शनिक बोध ही समाज के प्रति भिन्न दृष्टिकोण व उसमें परिवर्तन के मार्ग उपलब्ध करवाता है।

स्वयंसेवी क्षेत्र में प्रमुख विचारधाराएं हैं –महात्मा गांधी के दर्शन से प्रेरित गांधीवादी स्कूल; पुरुषोत्तमदास टंडन, जयप्रकाश नारायण व राममनोहर लोहिया से प्रभावित समाजवादी दर्शन; मार्क्सवादी विचारधारा; विकासवादियो का अथवा तकनीकी–प्रबंधकीय स्कूल बोध का स्कूल; एवं धर्म आधारित सामुदायिक बोध। समय के साथ इन विभिन्न बोधों में भिन्नताएं धुंधली पड़ती जा रही हैं और विशुद्ध स्वरूपों का मिलना कठिन होता जा रहा है।

स) मध्यस्थता की नीति

स्वयंसेवी संस्थाओं व समूहों में भिन्नता करने का तीसरा मापदण्ड उनकी मध्यस्थता की नीति ही हो सकती' है। यह नीति एकल क्षेत्रीय उपागम जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक वानिकी, पेयजल, आश्रय, स्वच्छता, आय–उत्पादन अथवा बहुल क्षेत्रीय उपागम हो सकती है। यह एकल अथवा बहुल समूह के आश्रित पर केन्द्रित हो सकती है। एकल आश्रित समूह समांगी समूह हैं जैसे आदिवासी, महिलाएं, हरिजन, भूमिहीन श्रमिक, कच्ची बस्ती निवासी, फुटपाथ निवासी, आदि। स्वयंसेवी संस्थाएं विषमांगी आश्रित पर केन्द्रित भी हो सकती हैं। इस स्थिति में ये विभिन्न समूह भिन्न कार्यक्रमों के अधीन हो सकते हैं अथवा एक ही कार्यक्रम के।

द) भूमिका / कार्यो की प्रकृति

वर्गीकरण का चौथा मापदण्ड है विभिन्न संगठनों व समूहों द्वारा निर्वाह की जाने वाली भूमिका। भूमिका पर आधारित तीन श्रेणियां हैं, कार्यक्रमों का कार्यान्वयन करने वाली संस्थाएं, क्षेत्र आधारित संगठनों को विभिन्न प्रकार का समर्थन देने वाली संस्थाएं, एवं संगठनात्मक अथवा तन्त्र सम्बन्धी प्रकृति की संस्थाएं।

समुदायों के साथ सीधे कार्य करने वाली अधिकांश संस्थाएं व समूह कार्यान्वयन करने वाले संगठनों की पहली श्रेणी का निर्माण करते हैं।

दूसरी श्रेणी उन संगठनों की है जो क्षेत्र आधारित संस्थाओं को सहारा व समर्थन देते हैं। सहारे का प्रकार सूचना प्रसार व शोध से लेकर क्षेत्र में तकनीकी सहायता (जैसे जल प्रबंध) अथवा संगठनात्मक विकास हो सकता है।

अन्य स्पष्ट श्रेणी है तन्त्र की। विभिन्न मुद्दों के लिए समर्थन व जन शिक्षण की बढ़ती हुई आवश्यकता के कारण इस श्रेणी के स्वयंसेवी प्रयास अधिक दृष्टिगोचर व अत्यन्त महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। महिला व पर्यावरण जैसे मुद्दों ने स्वयंसेवी क्षेत्र पर विशेषकर एवं सार्वजनिक क्षेत्र पर सामान्यतया, महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है।

य) आकार

अंतिम व पांचवा वर्गीकरण मापदण्ड है संगठन का आकार – कर्मचारियों, आविष्टित क्षेत्र व संसाधनों का आकार।

भारत में विद्यमान विभिन्न संगठन श्रेणियों के इन पांच संयोजनों में से किसी एक के अर्न्तगत वर्गीकृत किया जा सकता है, क्योंकि विभिन्न मापदण्ड इन सभी में परिलक्षित होती हैं। यह संभव है कि एक लघु आकार का संगठन आदिवासियों के समूह के साथ केवल अनौपचारिक शिक्षा के मुद्दे पर नव–मार्क्सवादी दृष्टिकोण से इन आदिवासियों की शिक्षा व संगठन निर्माण पर केन्द्रित रह कर तीन या चार गांवों में कार्यरत रह सकते हैं। दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत पर्यावरणीय मुद्दों पर फोकस करने वाले शोध व प्रशिक्षण आधारित संगठन लघु अथवा मध्यम आकार के हों।

11.3 विकासशील समाज में गैर सरकारी संगठन

कल्याणकारी राज्य के निर्माण में स्वयंसेवी संस्थाएं निर्णायक भूमिका का निर्वहन करती हैं। इनका निरंतर क्रियाशील रहना इस राज्य के विद्यमान रहने व विकास के लिए अत्यावश्यक है। जितना अधिक राज्य योजना बनाता और निर्देशित करता है उतनी ही अधिक संख्या में लोगों को इसके नीति निर्धारण व काम काज के संवहन में सक्रिय भागीदारी का निर्वहन करना पड़ता है। ऐसा वे स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से कर सकते हैं। स्वयंसेवी क्रियाएं जितनी अधिक वृहद प्रसारित होती हैं उतना ही यह सम्पूर्ण समाज के लिए अच्छा है। केवल इसलिए नहीं कि वे प्रजातंत्र के संचालन में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं व सामूहिक गतिविधियों में संतुष्टि पा रहे हैं अपितु इसलिए भी कि राष्ट्रीय जीवन की एक शाखा में प्रगति दूसरी शाखाओं को प्रभावित करती है और स्वयं भी प्रभावित होती है।

यह समय द्वारा प्रमाणित है ग्रामीण क्षेत्रों में सुस्थिर विकास को प्रोत्साहन देने के लिए प्रयास करने के लिए गैर सरकारी संगठन अधिक उपयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां नौकरशाही ने असफलताओं की पुनरावृत्ति के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

आज के समय में गैर सरकारी संगठन एक अप्रतिरोध्य वैश्विक शक्ति बन गए हैं। गैर सरकारी कार्य, मानव विकास के क्षेत्र में इनकी भूमिका को अब सम्पूर्ण विश्व में विस्तृत रूप से स्वीकृति व मान्यता प्राप्त है।

कृष्णा के विचार में गैर सरकारी संगठन शासकीय संस्थाओं से चार प्रकार से बेहतर हैं :

1) गैर सरकारी संगठनों के कार्यकर्ता निर्धन जनों के दुखों को कम करने में सरकारी कर्मचारियों से अधिक समर्पित हो सकते हैं
2) सरकारी कर्मचारियों की अपेक्षा गैर सरकारी संगठनों का ग्रामीण निर्धनों के साथ अधिक सौहार्द होता है
3) क्योंकि वे अनम्य नौकरशाही नियमों व प्रक्रियाओं से सीमित नहीं होते वे अधिक लचीलेपन के साथ कार्य कर सकते हैं;

4) गैर सरकारी संगठन निरन्तर व शीघ्रतापूर्वक अपने कार्यो का पुनर्समायोजन कर सकते हैं क्योंकि वे अनुभव से शिक्षा ग्रहण करते हैं।

विकसित समाज में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका को हाशिये पर स्थित समूहों की समस्याओं के निराकरण करने वालों के रूप में पहचान मिली हुई है। दूसरी ओर, कतिपय समाजशास्त्रियों के अनुसार, विकासशील देशों में शासकीय वलन के अन्तर्गत आने के कारण वे विकास के समुद्र में केवल लघु भूमिका निभा पाती हैं।

आदिशेशैया मानता है कि आर्थिक संसाधनों का निम्न स्तर व लघु क्षेत्र आविष्टित होने के कारण गैर सरकारी संगठन अधिक से अधिक सरकारी प्रयास के संपूरक हो सकते हैं इसे प्रतिस्थापित नहीं कर सकते है। वे शोध जैसे क्षेत्रों में कार्य नहीं कर सकते। वह यह भी मानता है कि जहां एक ओर गैर सरकारी संगठन स्थानीय समूह होते हैं राज्य सर्वसम्मिलनकारी है।

पिछले दशकों में गैर सरकारी संगठनों ने विकास कार्यो में जन सहभागिता प्राप्त करने में अत्यधिक सफलता प्राप्त की है। जबकि सार्वजनिक क्षेत्र के विभिन्न कार्यक्रमों ने निर्भरता को प्रोत्साहित किया है और सरकारी समर्थन हट जाने के पश्चात अधिक दीर्घकालीन प्रभाव छोड़ने में असफल रहे हैं, गैर सरकारी संगठन सहभागिता आधारित विधियां प्रयुक्त कर अधिक सफल रहे हैं और महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा है यद्यपि यह स्थानीय स्तर पर हुआ है।

तृतीय विश्व के देशों में शासन में असफलता एक और कारण है जो गैर सरकारी संगठनों को शून्य को भरने के लिए प्रोत्साहित करता है। उदाहरण स्वरूप केन्या व तंजानिया में स्वास्थ्य तन्त्र का एक महत्वपूर्ण भाग गैर सरकारी संगठनों द्वारा संचालित है। पश्चिमी पाकिस्तान में आगा खान ग्रामीण सहायता कार्यक्रम ग्रामीण विकास सहायता में केन्द्रीय भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

धारणीय विकास के संदर्भ में गैर सरकारी संगठन के अन्तर्गत दृष्टिकोणों की एक सम्पूर्ण श्रृंखला है–

लाभ आधारित संगठन (उदाहरण स्वरूप व्यावसायिक संगठन)

सरोकार आधारित संगठन (उदाहरणस्वरूप पर्यावरणीय कल्याण समर्थक समूह)

समाधान आधारित संगठन (उदाहरणस्वरूप ग्रामीण व शिक्षा विकास समूह)

कई गैर सरकारी संगठन, विशेषकर समाधान आधारित समूह, भागीदारी व सर्वसम्मति के विचारों को पसन्द करते हैं और इन्हें सक्रिय रूप से बढ़ावा देते हैं। अन्य संगठन जो अभियानों व समर्थक गुटों के माध्यम से कार्य करते हैं, अपनी भूमिका को 'असहमत' के रूप में देखते है, और समझौता नहीं करना चाहते। कतिपय गैर सरकारी संगठन धारणीय विकास से असंगत विचार अपनाने का चयन करते हैं।

कई बार गैर सरकारी संगठन सरकार द्वारा प्रायोजित नीतियों को अधिक अधिकारी तंत्रवादी और कम जनाभिमुखी मानते हैं। कार्यान्वयन प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाने के लिए कार्यक्रम सूत्रीकरण व निर्णय तन्त्र में लोगों का सम्मिलित होना महत्वपूर्ण माना जाता है। इस विचारधारा के फलस्वरूप, गैर सरकारी संगठनों की एक बड़ी संख्या ने सेवा प्रदान करने की वैकल्पिक नीतियों का विकास व परीक्षण किया है। इस प्रक्रिया में इन संगठनों ने लागत कम करने, सेवाओं की गुणवत्ता बढ़ाने, और कभी–कभी स्थानीय स्तर पर आय उत्पादित करने पर बल दिया गया। इन संगठनों ने सफलतापूर्वक यह प्रदर्शित कर दिया कि सेवा प्रदान करने की ऐसी वैकल्पिक नीतियां उपलब्ध है जो

विद्यमान व्यवस्था की बुद्धिमत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाती हैं, प्रचलित प्रथाओं को चुनौती देती हैं और सरकार के विकास आश्वासन की कमियों को उजागर करती हैं।

11.4 कानूनी ढांचा

सरकार व गैर सरकारी संगठनों के मध्य सम्बन्धों का निर्धारण करने के लिए एक बड़ी संख्या में अधिनियम व कानून हैं। स्वयंसेवी क्षेत्र को सीधे तौर पर प्रभावित करने वाले पक्षों में प्रमुखतम हैं वर्षों तक विकसित की गई वैधानिक धाराएं। ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि इन धाराओं में अधिकतर नियामक प्रकृति की हैं और राज्य को नियंत्रक भूमिका प्रदान करते हैं। 'द सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट' का निर्माण ब्रिटिश काल में वर्ष 1860 में हुआ था। बाद में विविध प्रान्तीय सरकारों ने इसमें अधिक नियंत्रण का दावा करने की दिशा में संशोधन किये। अंतिम बार इसे पूर्व शासन द्वारा 1958 में औपचारिक स्वरूप दिया गया। अब इसका नाम सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट 1958 ' हो गया।

अगला है 'विदेशी योगदान नियन्त्रक अधिनियम' अथवा 'फॉरेन कॉन्ट्रीब्यूशन रैगुलेशन एक्ट' जिसे प्रथम बार 1976 में आपातकाल की अवधि में लाया गया था और उसके बाद कई बार संशोधित किया गया। भारत सरकार के गृह मामलों के मंत्रालय के पास ऐसे लगभग 30000 गैर सरकारी संगठन पंजीकृत हैं जिन्हें विदेशी सहायता प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त 'इण्डियन ट्रस्ट्स एक्ट', द ट्रेड यूनियन्स एक्ट', द कोऑपरेटिब्ल एक्ट', एवं धारा 25 जैसे कानून हैं जिनके अन्तर्गत गैर सरकारी संगठनों का पंजीकरण होता है। इनके साथ–साथ 1956 का इनकम टैक्स एक्ट है जो गैर सरकारी संगठनों की कर देयता व बाध्यता के नियामक हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा प्राप्त की गई विदेशी सहायता का नियंत्रण फॉरेन एक्स्तचेन मैनेजमेन्ट एक्ट, 2000 द्वारा भी किया जाता है। यह अधिनियम देश के अन्दर आने वाले और बाहर जाने वाले समस्त धन का नियंत्रण करता है।

'फॉरेन कॉन्ट्रीब्यूशन रैगुलेशन एक्ट', 1976 एक ऐसा नियंत्रक कानून है जो विदेशी निधिकरण चाहने वाली संस्थाओं के केन्द्रीय गृह मंत्रालय में पंजीकरण के लिए आवश्यक है। यह देश में विदेशी विनिमय के आगमन एवं इस निधि के उपयोग पर निगरानी करने का प्रयास है जिससे कि इस निधि को देश विरोधी गतिविधियों में प्रयुक्त न किया जा सके। यद्यपि पूर्व में समष्टि रूप में राज्य व इस क्षेत्र के मध्य अधिकांशत: शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व रहा है परन्तु द्वन्द के उदाहरण भी मिलते हैं जब किसी संस्था अथवा किसी क्षेत्र की स्वयंसेवी संस्थाओं को पंजीकरण सुविधा अस्वीकृत कर दी गई। इस प्रकार के कई मामलों में न्यायपालिका ने स्वयंसेवी संस्थाओं के अधिकारों को पुनः स्थापित करने के लिए हस्तक्षेप किया । इनकम टैक्स एक्ट भी स्वयंसेवी कार्य पर दबाव बनाने में एकाधिक रूप से प्रभावी सिद्ध हुआ है।

11.5 शासन व गैर सरकारी संस्थाओं के मध्य संबंध

राज्य व स्वयंसेवी कार्य, संगठनों व समूहों के मध्य संबंध नितान्त सक्रिय रहे हैं। इस सम्बन्ध को सदैव एक दूसरे को प्रभावित करने के उद्देश्य से दोनों के मध्य चलने वाले एक प्रकार की बुद्धिमत्ता संघर्ष की स्थिति के परिणामों द्वारा आकार दिया गया है। राज्य ने सदैव चाहा कि स्वयंसेवी कार्य राज्य द्वारा परिभाषित स्थान में ही सम्पन्न हों जबकि अपने लक्ष्य (मिशन) के प्रति समानुरूप होने

एवं प्रभावी होने के लिए स्वयंसेवी कार्य, संगठन, व समूह सदैव इन सीमाओं को बढ़ाने की चाह रखते आए हैं।

अब जब स्वयंसेवी कार्य अधिकाधिक मुद्दों को संबोधित कर रहे हैं; जनता के दृष्टिकोण से राज्य की नीतियों पर प्रश्न चिह्न लगा रहे हैं; एवं समाज के वंचित व उपान्तीय वर्गो की आलोचनात्मक चेतना को जागृत कर रहे हैं, यह सम्बन्ध गंभीर तनाव की अवस्था से गुजर रहे हैं। राज्य के कुछ पक्ष स्वयंसेवी क्षेत्र को प्रत्यक्षतः प्रभावित करते हैं, जबकि कुछ का इनके कामकाज पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। दोनों के मध्य संवाद बहु–स्तरीय व एकाधिक बिन्दुओं पर होता है जिसके अन्तर्गत एक वृहद क्षेत्र आता है।

गैर सरकारी संस्थाओं सक अपेक्षा की जाती है कि वे विविध कानूनी धाराओं के अन्तर्गत कार्य करें। यह धाराऐं स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा चाही गई स्वतंत्रताओं पर प्रतिबंधी कारक के रूप में कार्य करती हैं। एक अन्य पक्ष यह है कि राज्य ही निधि उपलब्ध करवाता है।

राज्य के कल्याणकारी स्वरूप के कारण भिन्न समय पर भिन्न तरीकों, कभी यथार्थ अथवा कभी नीतिगत कारणों से शासकीय कार्यक्रमों में गैर आधिकारिक अभिक्रम व आवेष्टन की मांग होती रही है। भारत में सरकारी व स्वयंसेवी अभिक्रमों के मध्य सहयोग भलीभांति व्याख्यायित है। इन क्षेत्रों से सम्बन्धित सरकारी नीतियां स्वयंसेवी संगठनों के कार्यो पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती हैं।

नियामक पक्ष व सहयोग की शर्तों से सम्बन्धित पक्ष दोनों ही स्वयंसेवी संगठनों, समूहों, व अभिक्रमों के लिए राजनैतिक स्थान का सीमा निर्धारण करने व प्रतिबंध लगाने में सहायक रहे हैं। ये दोनों ही पक्ष स्वयंसेवी संगठनों, समूहों, व अभिक्रमों को राज्य में प्रभुता प्राप्त विभिन्न अंगों के अनुकूल होने में भी सहायक होते हैं।

वर्षों का अनुभव बताता है कि इस पक्ष में भी राज्य अवर्गीय मुद्दों जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार उत्पादन, के विषय में सकारात्मक रहा है। जबकि यह लोगों के प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार से सम्बन्धित मुद्दों पर असहनशील रहा है। शिक्षा, स्वास्थ्य, आय उत्पादन जैसे क्षेत्रों में किए गए स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्य का तुलनात्मक रूप से अधिक स्वागत किया गया और इन क्षेत्रों में स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा विकसित किए गए प्रतिमानों को सरकार द्वारा अपनाया गया है।

परन्तु बड़े बांधों, विस्थापन, एवं सार्वजनिक संसाधन सम्पत्ति पर लोगों के अधिकार को सदैव हतोत्साहित किया गया है। वर्गीय मुद्दों में स्वयंसेवी कार्यो की बढ़ती हुई लिप्तता निश्चित रूप से इनके सरकार के साथ सम्बन्धों को प्रभावित करती है। परिणामस्वरूप जहां राज्य ऐसी स्वयंसेवी गतिविधि को प्रोत्साहन दे रहा है जो राज्य द्वारा परिभाषित सीमाओं के अन्दर रहती हैं और विवादास्पद विषयों से सम्बन्ध नहीं रखतीं, वहीं राज्य सदैव अन्य प्रकार के स्वयंसेवी गतिविधियों, संगठनों, व समूहों को हतोत्साहित, अप्रतिष्ठित, व विघटित करने में लिप्त रहता है।

राज्य व गैर सरकारी संगठनों के मध्य सम्बन्धों ने अच्छा व बुरा समय देखा है। न्यूनतम सहयोगी समय में राज्य ने गैर सरकारी संगठनों को ऐसी असंगति के रूप में देखा जिनका दमन किया जाना चाहिए। अधिकतम सहयोग के काल में उन्हें निर्धनों की ओर सहायता का हाथ बढ़ाने में 'भागीदार' के रूप में देखा गया। एक ओर विरोधात्मक सम्बन्धों व दूसरी ओर सहयोग से सीमित इस वृहद वर्णक्रम में, यथार्थ न केवल हर देश में अपितु एक देश के अन्दर भी, भिन्न समय काल में भिन्न रहा है।

इसमें विशिष्ट समय काल व सरकारों के विकास प्रयासों की यथार्थ नीति भी प्रतिबिम्बित होती रही है।

1992 के 73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज्य संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किए जाने व इन्हें अधिक कार्यकारी व वित्तीय शक्तियों के अन्तरण के पश्चात एक नवीन प्रवस्था का उद्घाटन हुआ है। इस विकेन्द्रीकरण से ग्राम्य विकास का दायित्व पंचायती राज्य संस्थाओं पर आ गया। इस कदम से भारत की संघीय राजनीति की शक्ति संरचना में एक नया स्तर बना।

इससे पूर्व गैर सरकारी संगठनों ने ग्राम्य भारत के निर्धनों के प्रवक्ता की भूमिका को धारण कर लिया था। अब उनकी प्रतियोगिता ग्रामीणजन के चुने हुए प्रतिनिधि से है जिसके पास संविधान प्रदत्त राजनीतिक व कार्यकारी वैधता है। ग्रामों की विकास प्रक्रिया अब प्रजातांत्रिक रूप से निर्वाचित व्यक्तियों के हाथ में है जिनके साथ गैर सरकारी संगठनों को सहअस्तित्व अपनाना होगा।

1995 में विश्व व्यापार संघ निर्मित हुआ है, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी व गैर सरकारी संगठनों के मध्य भागीदारी की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों से अर्थव्यवस्था को खुला बनाने की बढ़ती हुई मांग ने राज्यों को दबाव के समक्ष शिथिल होते हुए देखा। गैर सरकारी संगठनों के लिए आवश्यक था कि वे अन्तराष्ट्रीय स्तर पर डाले जा रहे ऐसे दबावों के विरुद्ध सरकार का साथ दें, यद्यपि ऐसा करने में उन्हें उन देशों का ही विरोध करना पड़ेगा जो उनको मिलने वाली विदेशी सहायता स्रोत हैं। विकसित विश्व की बढ़ती हुई अनुचित मांगों के विरुद्ध आवाज उठाने के उद्देश्य से सितम्बर 2003 में भारतीय गैर सरकारी संगठनों का एक प्रतिनिधिमंडल मैक्सिको में विश्व व्यापार संघ की मंत्री स्तरीय बैठक के अवसर पर कानकुन गया। कानकुन में गैर सरकारी संगठनों ने राष्ट्रहित की सुरक्षा करने के सरकारी प्रयासों का शक्तिशाली समर्थन किया। इस सम्मिलित प्रयास के परिणामस्वरूप प्रथम विश्व देशों के अपनी अन्यायपूर्ण मांगों को आरोपित करने का प्रयास असफल सिद्ध हुआ। कुछ वर्ष पूर्व 2006 में दोहा में विश्व व्यापार संघ के व्यापार वार्ता के दौरान इसी प्रकार का प्रयास दोहराया गया। इस समय भारत के वाणिज्य मंत्री श्री कमलनाथ ने ऐसे ही प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व किया और प्रथम विश्व के प्रयासों को अवरोधित कर दिया।

सरकार व गैर सरकारी संगठनों में मतभेद

सामान्यतया विकास की परिभाषा सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है। यह ही देश की विकास प्रक्रिया के लक्ष्यों का निर्धारण व प्रक्रिया तैयार करती है। तत्पश्चात अपने विकास सम्बन्धी विचारों को क्रियान्वित करने के लिए यह मित्र देशों अथवा संयुक्त राष्ट्र से सहायता का अनुरोध कर सकती है। कुछ देश ऐसे हैं जो यह मानते है कि राज्य के अंगों के अतिरिक्त कतिपय अन्य संस्थाएं भी हैं जिनका देश की विकास प्रक्रिया में उपयोगी योगदान हो सकता है, और यह भी कि विचार, नीति व कार्यान्वयन पर राज्य का एकाधिकार नहीं है। जब तक कि ये संस्थाएं शासन का विरोध अथवा खण्डन नहीं करतीं और शासकीय प्रयास के संपूरक के रूप में कार्य करती रहती हैं, इन्हें सहन किया जाता है और अपना स्थान बनाने व मित्र देशों से निधि प्राप्त करने के लिए अनुमति दे दी जाती है। इस विषय में दृष्टिकोण का एक पूरा वर्णक्रम है जिसके अन्तर्गत केवल राज्य को विकास प्रक्रिया में सम्मिलित होने की अनुमति होने से लेकर किसी के द्वारा भी अपना हाथ आजमाने को सहन किया जाना शामिल है। म्यांमार एक ऐसा उदाहरण है जहां विकास कार्य केवल राज्य द्वारा ही किया जा

सकता है जबकि भारत एक ऐसा देश है जहां अधिकतर प्रकार के विकास समूहों को सहन किया जाता है और समाज में कार्य करने की सन्तोषजनक स्वतन्त्रता दी जाती है।

जो लोग म्यांमार में विद्यमान विकास पर शासन के अखण्ड नियंत्रण के विरोध में बोलते हैं: अधिकतर प्रमाणित करते हैं कि यह अनमनीय, दुर्वह व नई परिस्थितियों को अपनाने में ,कठिनाई का सामना करने वाला है; कि यह लोगों को केवल केन्द्रीय स्तर पर अभिकल्पित कार्यक्रमों के विषयवस्तु के रूप में देखते हैं एवं भ्रष्टाचार से ग्रस्त व जीवाश्मीय होने की प्रवृत्ति रखते हैं। वहीं दूसरी ओर, विकास प्रक्रिया में शामिल गैर सरकारी संस्थाओं के विरोधी सामान्यतया इनकी उपान्तीयता व महत्वहीनता उनके तदर्थ, खण्डित, अनियोजित एवं अंततः अप्रभावी दृष्टिकोण की व नीतियों में निरन्तर होते रहने वाले परिवर्तनों की बात करते हैं। इनके द्वारा प्रभुत्व को दी गई राजनीतिक चुनौती के कारण भी. इनका विरोध किया जाता है। परन्तु गैर सरकारी प्रयासों जैसे श्रीलंका में सर्वोदय आन्दोलन व भारत में गांधीवादी आन्दोलन की विशाल उपलब्धियां उनके विरुद्ध' सभी शंकाओं का शमन करने में सफल हैं। ऐसे आन्दोलनों ने इतिहास को दिशा प्रदान की है और समाज के विकास की ठोस बुनियाद रखी है।

11.6 गैर सरकारी संगठनों का निधिकरण

कोई भी संगठन पर्याप्त अर्थ के अभाव में कार्य नहीं कर अपने लक्ष्य नहीं प्राप्त कर सकता। सामान्यतया गैर सरकारी संगठनों की आय के चार स्रोत होते हैं –

स्वयं उत्पादित आय व शुल्क द्वारा अर्जित आय, निवेश के माध्यम से अर्जित आय।

स्वदेशी प्रतिष्ठानों, व्यापारिक संगठनों, एवं व्यक्तियों से प्राप्त चन्दा।

स्वदेशी शासन से प्राप्त भुगतान व आर्थिक सहायता।

ऑफिशियल डेवलपमेन्ट असिसटैन्स संस्थाओं एवं अन्य निजी व सार्वजनिक दानदाताओं से प्राप्त विदेशी सहायता।

निजी क्षेत्र आय उत्पादन के नवीन स्रोत के रूप में उभरा है और तीव्र गति से महत्वपूर्ण होता जा रहा है। व्यापारिक गतिविधियां आय उत्पादन के विभिन्न अवसर उपलब्ध करवाती हैं। इनमें सेवाओं का शुल्क, और सार्वजनिक व निजी ग्राहकों को सामग्री व सेवाओं का विक्रय, व्यापारिक –गतिविधियां, एवं अन्य रचनात्मक वित्तीय सौदे आदि आते हैं। इन गतिविधियों के अन्तर्गत टी–शर्टों बधाई कार्डों, अथवा ऋण पत्र के विक्रय से लेकर जटिल वित्तीय सौदों तक आते हैं।

जहां एक ओर कुछ गैर सरकारी संगठन सरकारी निधि पर फलते फूलते हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसे होते हैं जो स्वतन्त्र स्थिति वाले हैं। यह माना जाता है कि गैर सरकारी संगठनों को निधिकरण के लिए सरकारी अथवा विदेशी दोनों ही प्रकार के अनुदान का उपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे परजीविता को बढ़ावा मिलेगा जो कि यथार्थ जनान्दोलन के निर्माण में सहायक नहीं होगा। परन्तु कल्याण कार्यो में होने वाले व्यय इतने अधिक होते हैं कि गैर सरकारी संगठनों को बाह्य सहायता की आवश्यकता पड़ती ही है।

अन्तर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठनों की एक बडी संख्या स्थानीय स्वयंसेवी संस्थाओं को धन उपलब्ध करवाती हैं। एफ.सी.आर. ए के अन्तर्गत भारतीय गैर सरकारी संस्थाओं को लगभग रू 6500–विदेशी सहायता मिल रही है।

ऑर्गेनाईजेशन फॉर इकॉनॉमिक कोऑपरेशन एण्ड डेवलपमेन्ट (ओ ई सी डी), जिसमें विश्व के औद्योगीकृत देश हैं, सहायता प्रदान करने वाला सबसे बड़ा समूह है। विकास उद्देश्यों से आर्थिक संसाधनों के रिआयती शर्तों पर सार्वजनिक स्थानान्तरण को आफिशियल डेवलपमेन्ट एसिसटैन्स ओ.डी.ए) कहते हैं। सहायता के विषय में आधिकारिक सूचना के संरक्षक की भूमिका ओ.ई.सी.डी की डैवलपमैन्ट असिसटैन्स कमेटी (डी.ए.सी) है।

ओ.डी.ए का स्थानांतरण दानदाता सरकार से ग्रहणकर्ता देश को सीधे अथवा बहु पक्षीय निजी संस्थाओं के माध्यम से होता है।

सहायता चार भिन्न प्रकार से स्थानान्तरित की जाती है –

आफिशियल डैवलपमैन्ट एसिसटैन्स (ओ.डी.ए) द्विपक्षीय सहायता के रूप में अथवा बहु पक्षीय संस्थाओं को योगदान।

अदर ऑफिशियल पोलज (ओ.ओ.एफ), जिसमें द्विपक्षीय व बहु पक्षीय दोनों ही प्रकार की संस्थाएं हैं।

सीधे निवेश, द्विपक्षीय व बहु पक्षीय पत्राधान निवेश एवं निजी निर्यात ऋण के माध्यम से।

गैर सरकारी संस्थाओं व निजी स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा प्रदत्त अनुदान'

कई बार सरकारें अपनी विदेश नीति व आर्थिक हितों के अनुसरण में गैर सरकारी संगठनों के निधिकरण पर प्रतिबन्ध लगाती हैं। कतिपय अनुदान प्रतिबन्ध (जैसे – विशिष्ट देश, विशिष्ट सामाजिक समूह आदि) गैर सरकारी संगठनों के कार्यक्रमों में असंतुलन स्थापित कर सकते हैं। पोखरन में द्वितीय परमाणु परीक्षण के उत्तर काल में भारत को कुछ देशों द्वारा लागू आर्थिक निर्बंध का सामना करना पड़ा था जिसके परिणामस्वरूप कई गैर सरकारी संगठनों के निधिकरण में बाधा आ गई थी और इसका उनके कार्यक्रमों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। बाद में, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान एवं कुछ यूरोपियन देश जिन्होंने यह निर्बाध लागू किया था, ने शनै: शनै: इसे समाप्त कर दिया और गैर सरकारी संगठनों का आर्थिक परिदृश्य सुगम हो गया। 2008 में होने वाले भारत – अमरीका परमाणु समझौते और उसके पश्चात होने वाले न्यूक्लियर सप्लायर्स ग्रुप को मिलने वाले अनुमोदन ने उत्तर के भारतीय गैर सरकारी संस्थाओं के साथ सहयोग का मार्ग और अधिक प्रशस्त कर दिया है।

11.7 सारांश

सरकारों के संकुचन एवं बढ़ते वैश्वीकरण के युग में परिवर्तन के अभिकर्ता के रूप में नौकरशाही गैर सरकारी संगठनों को भागीदार बनाने के लिए मजबूर हो गई है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि स्वयंसेवी संस्थाओं की पहुंच अधिक गहरी है और ये स्थानीय समुदायों के साथ निकट सम्बन्ध स्थापित कर सकती हैं। आज राज्य गैर सरकारी संगठनों के प्रति अपने विरोधी रवैये को त्याग कर लचीले रिश्ते स्थापित करने को सुविधाजनक पाने लगे हैं। विकास संस्थाओं की तुलना में गैर सरकारी संगठनों का फायदा है उनका लचीलापन, कार्य करने की गति, और बदलती परिस्थितियों से तीव्र गति से प्रतिक्रिया करने की क्षमता। अतिरिक्त सहायता राशि गैर सरकारी संगठनों को जानी चाहिए न कि सरकार को। गैर सरकारों के विषय में माना जाता है कि ये नौकरशाही औपचारिकताओं में कम समय व्यय करते है, प्रक्रियाओं से कम प्रतिबन्धित होते हैं और समष्टि में अधिक कार्यक्षम होते हैं।

इसके साथ साथ, गैर सरकारी संगठनों में अन्य संस्थाओं की अपेक्षा कार्य सम्बन्धी लचीलेपन की अधिक सम्भावना होती है क्योंकि उनकी परियोजनाओं को 'अतिरिक्त' माना जाता है, कुछ ऐसा जो लोगों द्वारा चाहा तो जाता है परन्तु उनका अधिकार नहीं माना जाता। जबकि सरकारी योजनाएं विकास परियोजनाओं के वितरण में विशेष तौर पर राजनीतिक पक्ष से सम्बन्ध रखती हैं, गैर सरकारी संगठनों के लिए यह आवश्यक नहीं है। इससे उन्हें युक्ति चालन का अधिक स्थान मिलता है और वे वैधता गंवाए बिना नए प्रकार की परियोजनाओं का गवेषण कर सकते हैं। ऐसी प्रयोगात्मकता सरकार के लिए अधिक व्ययकारी सिद्ध होगी।

स्वयंसेवी संगठन राज्य को केवल स्थानीय संदर्भ में देखती हैं। भारत जैसा शक्तिशाली देश अपनी राजनीतिक व आर्थिक स्वायत्तता की व देश की स्वतंत्रता सुरक्षा करने एवं प्रभुता व शोषण की अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का प्रतिरोध करने में सफल रहा है। स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा किसी देश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शक्तिशाली होने व स्थानीय स्तर पर अधिक राजनीतिक स्थान रखने की आवश्यकता के विरोधाभास को समझना व परीक्षण किया जाना जरूरी है।

11.8 अभ्यास प्रश्न

1. स्वयंसेवी संस्थाओं अथवा गैर सरकारी संगठनों की अवधारणा का विवेचन करिए।
2. गैर सरकारी संगठनों के भिन्न प्रकारों व कार्यो का विवेचन करिए।
3. विकास में सरकार की भूमिका के संपूरण में गैर सरकारी संगठन किस प्रकार से प्रभावी है?
4. भारत में गैर सरकारी संगठनों के अस्तित्व को शासित करने वाले कानूनी ढांचे का विवेचन करिए।
5. गैर सरकारी संगठनों के निधिकरण के स्रोत का विवेचन करिए । विदेशी सहायता की बाध्यकारी व मुक्तिकारी दोनों ही भूमिका है, इस तथ्य को समझाइये।

11.9 संदर्भ ग्रंथ

1. आर. बी जैन, 'भारतीय समाज, अधिकारी तंत्र और सुशासन', हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, नई दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2007।
2. आरवी. जैन और ओपी द्विवेदी, 'एडमिनिस्ट्रेटिव कल्चर एण्ड ब्यूरोक्रेटिक वेल्यूज इन इण्डिया, ' पब्लिक पोलिसि एण्ड एडमिनिटस्ट्रेटिव स्टेडीज पर पांचवें सम्मेलन में प्रस्तुत पत्र, गल्प विश्वविद्यालय, गल्प, अप्रैल 22, 1988।
3. मरियम शर्मा, 'दी पालिटिक्स ऑफ इनइक्वेलिटि, कोम्पिटीशन, एण्ड कन्ट्रोल इन एन इण्डियन विलेज,' हिन्दुस्तान पब्लिशिंग कं., दिल्ली, 1979।
4. लोक सेवाओं में नैतिकता के लिए देखिये ओपी द्विवेदी और आर. बी. जैन (सम्पा.) इण्डियाज एडमिनिस्ट्रेटिव स्टेट, गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1985।
5. नोकरशाही और संस्कृति के सैद्धान्तिक पक्ष के लिए देखिये डेविड नचमियास और डेविड एच. रोशोन 'ब्यूरोक्रेटिक कल्चर', क्रूम हेल्म लि., लंदन, 1976।
6. स्टेनले हेगिनबोथम 'कल्चर इन कोनफ्लिक्ट द फोर फेसेज ऑफ इण्डियन ब्यूरोक्रेसी, ' बर्कले यूनिवर्सिटि ऑफ केलिफोर्निया प्रेस, केलिफोर्निया, 1975।

इकाई – 12

ग्रामीण विकास प्रशासन : बदलते परिप्रेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 परिदृश्य
12.3.1 सामुदायिक विकास योजना
12.3.2 सघन कृषि कार्यक्रम
12.3 कमजोर वर्गो एवं पिछडे क्षेत्रों के लिये विशेष कार्यक्रम
12.4 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण द्वारा जन सहभागिता
12.5 छठी पंचवर्षीय योजना में समेकित ग्रामीण विकास का स्वरूप
12.6 ग्रामीण विकास प्रशासन के नये परिप्रेक्ष्य
12.7 जिला एवं ब्लॉक स्तर पर वर्तमान संस्थानिक / प्रशासनिक प्रणाली को मजबूत बनाने के लिये कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु एवं उपाय
12.8 सारांश
12.9 अभ्यास प्रश्न
12.10 संदर्भ ग्रन्थ

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान पायेंगे कि –

- सामुदायिक विकास योजना के बारे में।
- कमजोर एवं पिछडे क्षेत्रों के लिए विशेष कार्यक्रमों के बारे में।
- ग्रामीण विकास प्रशासन के परिप्रेक्ष्य में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण
- लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण द्वारा जन सहभागिता।

12.1 प्रस्तावना

नये विकासशील देशों को राष्ट्रीय नेतृत्व के सामने उपस्थित चुनौतियों निर्माण और ग्रामीण विकास एक महत्वपूर्ण चुनौती है। तीन दशकों के योजना निर्माण ग्रामीण विकास के अनुभव कि उपरांत भी हमारे सामने यह एक बड़ी चुनौती है। ग्रामीण विकास प्रशासन का अर्थ है सांस्थानिक, संगठनात्मक, प्रबंधकीय और सामंजस्य संबंधी जटिल चुनौतियों से जूझना। अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी के लिये तैयार अपने पत्र में जाने माने प्रशासकीय अध्येता डब्लू जे. साफिन ने कहा है "समेकित ग्रामीण विकास प्रशासकीय समस्याओं में गई बार सामान्य जुकाम जैसी घातक जन प्रशासन की समस्याएं भी छिपी होती है। अर्थात् सामान्य काम करने में होने वाली विशाल कठिनाईयां।" वे आगे यह कहते है कि 'समेकित

ग्रामीण विकास के क्रियान्वयन की अवधारणा– एक उपाय के तौर पर उसकी उपयोगिता वास्तव में कई बार प्रशासकीय औचित्य का मुद्दा बन जाता है।

12.2 परिदृश्य

ग्रामीण विकास पंचवार्षीय योजनाओं के अंतर्गत योजना निर्माण का महत्वपूर्ण तत्व है । किन्तु योजनाबद्ध विकास और ग्रामीण परिस्थितियों में बदलाव के लंबे अन्तराल में ग्रामीण विकास के स्वरूप और आकार में भी परिवर्तन आया है। ताकि विकास की नई चुनौतियों का सामना किया जा सके। योजनाओं और नीतियों का बदलता स्वरूप उनके. क्रियान्वयन में प्रशासकीय परेशानियों का परिणाम है।

12.2.1 सामुदायिक विकास योजना:–

भारत ने सम्पूर्ण ग्रामीण विकास के क्षेत्र में सन् 1952 में ही बहु उद्देश्यीय सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरुआत कर दी थी। कार्यक्रम के अन्तर्गत 5100 सामुदायिक विकास ब्लॉक बनाए जो ग्रामीण विकास की प्राथमिक ईकाई के रूप में स्थापित किये गये।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम का अनुभव यह रहा है कि हमें यह महसूस होने लगा कि यह कार्यक्रम अत्यन्त विस्तृत था और उचित तरीके से अपने लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर सका। इसके अलावा संसाधनों की कमी और समय में कोई ठोस परिणाम नहीं दे सका। कृषि, उत्पादन भारतीय अर्थव्यवस्था के लिये अति महत्वपूर्ण माना जाता है। कार्यक्रम का बहु उद्देशीय स्वरूप प्रचलित रहा किन्तु इन उद्देश्यों पर अधिक समय कृषि और अन्य संबंधित गतिविधियों में लगाने के लिये कहा गया। यहां हमारा उद्देश्य सामुदायिक विकास योजना की शक्तियों और कमजोरियों का वर्णन करना ही नहीं है किन्तु इतना तो हम कह सकते है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम ने कृषि की उन्नत विधियों और ग्रामीणों की बेहतर सामाजिक, आर्थिक स्तर के बारे –में जागरूकता अवश्य उत्पन्न की।

12.2.2 सघन कृषि कार्यक्रम:–

कृषि उत्पादन पर विशेष ध्यान देने के बाद ऐसे क्षेत्रों पर ध्यान दिया गया जिनमें कृषि उत्पादन में वृद्धि की अधिकतम संभावनाएं थी। प्राथमिकताओं में यह परिवर्तन प्रथम और उत्पादन दल (फोर्ड फाउण्डेशन द्वारा) वित्तीय सहायता की अनुशंसाओं के परिणाम स्वरूप आया। प्रथम दल ने अपनी रिपोर्ट "भारत की खाद्य समस्या और उससे निपटने के उपाय" अप्रैल 1959 में प्रस्तुत की।

परिणाम स्वरूप सघन कृषि जिला कार्यक्रम (IADP) सन् 1960–61 में कुछ चुने हुये जिलों में शुरू हुआ। सघन कृषि जिला कार्यक्रम से प्राप्त अनुभव के आधार पर एक अन्य कार्यक्रम सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (IADP) मार्च 1964 में शुरू किया गया।

कृषि विकास की प्रबल संभावनाओं वाले क्षेत्रों में अधिक प्रयास किये जाने की रणनीति को कृषि विकास की नई रणनीति भी कहा जाता है। इस रणनीति के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं:–

1. अधिक पैदावार वाली फसलों पर जोर।
2. सघन कृषि कार्यक्रमों द्वारा विकसित, सिंचित और अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में उत्पादन का अधिकतम उपयोग।
3. अल्पकालीन फसलों पर जोर।

4. सिंचाई क्षमता का प्रभावी उपयोग। यह रणनीति आज भी अपनाई जा रही है।

कुछ ही समय बाद यह महसूस किया गया कि सघन कृषि विकास की नई रणनीति के परिणाम स्वरूप विकसित क्षेत्रों में आय में बढ़ोतरी हुई। इस आय का अधिकतर हिस्सा अपेक्षाकृत बडे किसानों को मिला। इस प्रकार इससे कृषि उत्पादन में निश्चित वृद्धि हुई किन्तु इससे सामाजिक न्याय का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सका और ग्रामीण क्षेत्रों में अमीरी और गरीबी के बीच तनाव बढने लगा। ग्रामीण समाज में जमींदारी प्रथा जहां " ग्रामीण गरीब और ग्रामीण कमजोर लोग जिनमें अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोग भी सम्मिलित है। वे इन कारणों से ग्रामीण विकास का कार्य अधिक जटिल हो गया। सरकार द्वारा इन कमजोर वर्गो के उत्थान एवं सशक्तिकरण के लिये किये गये प्रयासों का इन वर्गो का थोड़ा लाभ जरूर हुआ किन्तु समाज में समरसता का स्थान व जातिवाद ने ले लिया।

12.4 कमजोर वर्गों एवं पिछड़े क्षेत्रों के लिए विशेष कार्यक्रम

इन समस्याओं से निपटने के लिये चौथी योजना में कुछ कदम उठाये गये और पांचवीं योजना में भी इस दिशा पर्याप्त एवं सघन प्रयत्न किये गये। ये प्रयास ग्रामीण विकास समाज के कमजोर वर्गो एवं पिछड़े दोषों के लिये विशेष कार्यक्रम के रूप में चलाये गये। इनमें से प्रमुख निम्नलिखित है :

1.	संसाधन / समस्या आधारित	–	सूखा पीड़ित क्षेत्र कार्यक्रम
2.	क्षेत्रीय कार्यक्रम	–	कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम और पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम।
3.	लक्ष्य समूह कार्यक्रम	–	लघु कृषक विकास कार्यक्रम, आदिवासी विकास एजेन्सी परियोजना।
4.	क्षेत्र आधारित प्रोत्साहन कार्यक्रम	–	कम ब्याज पर ऋण, निवेश सब्जीमंडी एवं परिवहन सब्सीडी योजनाऐं।
5.	सम्पूर्ण क्षेत्र विकास कार्यक्रम	–	पहाड़ी और आदिवासी क्षेत्रों के लिये विशेष योजनाऐं।

इन विशेष कार्यक्रमों से लगभग 340 जिले लाभान्वित हुये हैं। यह सभी कार्यक्रम एक बार फिर सामुदायिक विकास ब्लॉक के माध्यम से क्रियान्वित किये जा रहे है।

<u>भू–सुधार:–</u> समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का प्रमुख लक्ष्य है गरीबी उन्मूलन और इन कार्यक्रमों में भू– सुधार एक महत्वपूर्ण पहले है क्योंकि जमीन का बंटवारा व्यक्ति की आय को प्रभावित करता है। अधिक भूमि वाला व्यक्ति अधिक आय अर्जित कर सकता है और उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ जाती है। इस आधार पर व्यक्ति सामाजिक ढांचे में अपना स्थान बनाता है और सामाजिक स्तर शक्ति सार्वजनिक वस्तुओं एवं सुविधाओं तक पहुंच बढ़ जती है। किन्तु ऐसी परिस्थितियां जब भूमि पर हल चलाने वाला एवं कृषि करने वाला व्यक्ति उस भूमि का स्वामी न होकर बड़े शहरों में रहने वाले धनपतियों एवं उच्च वर्ग के लोगों के स्वामित्व की भूमि पर मात्र श्रम करता है तो यह स्थिति भू–सुधार कार्यक्रमों का मखौल उड़ाती प्रतीत होती है। जब तक भू स्वामित्व की वर्तमान ग्रामीण विकास कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता है। अत: भूमि भू–सुधार के कार्यक्रमों को तेजी से एवं प्रभावी ढंग से चलाये जाने की महती आवश्यकता है। भू–सुधार कार्यक्रम भूमि के उचित एवं न्याय संगत वितरण का ठोस माध्यम है किन्तु हम देखते है कि राज्य सरकारें इन भू–सुधार कार्यक्रमों का भलीभाँति संचालित नहीं कर पाती है। जिससे समाज में भूमिहीन कृषकों को उनका पर्याप्त अधिकार नहीं मिल पाता है।

12.5 लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण द्वारा जन सहभागिता

ग्रामीण क्षेत्रों में जन सहभागिता के लिये प्रभावी संस्थानिक उपायों की महत्वपूर्ण आवश्यकता है सामुदायिक विकास कार्यक्रम के शुरुआती वर्षों में ही यह स्पष्ट हो गया कि कार्यक्रम को अपेक्षित सफलता नहीं मिलने का एक बड़ा कारण जन सहभागिता का अभाव था। प्रारंभ में ब्लॉक स्तर पर ग्रामीण समाज के मनोनीत प्रतिनिधियों द्वारा जन सहभागिता बढ़ाने की कोशिश की गई। यह महसूस किया गया कि प्रतिनिधित्व अपर्याप्त था और इस लिये अपेक्षित रूप से प्रभावी नहीं था। दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956 से 1961) में जिले में प्रशासन का एक सुसंगठित लोकतांत्रिक ढांचा तैयार करने पर बल दिया गया। जिसमें सबसे निचले स्तर पर ग्राम पंचायत भी जो अपने से ऊंचे स्तर की संस्थाओं से संबंधित थी। जनवरी 1957 में भारत सरकार ने श्री बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल का गठन किया जिसका उद्देश्य था सामुदायिक विकास परियोजनाओं और नेशनल ऐक्टेशन सर्विस का अध्ययन कर अपनी रिपोर्ट देना था। इस अध्ययन दल ले ग्राम ब्लॉक एवं जिला स्तर पर भी स्तरीय स्थानीय शासन संस्थाओं के गठन की सिफारिश की जिसे पंचायती राज कहा गया। इसमें यह कहा गया कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण की आधार की सलाहकार के रूप में कार्य करना चाहिये। इसे जिला परिषद की सलाहकार के रूप में कार्य करना चाहिये। इन सारी कोशिशों के बावजूद विकास की प्रक्रिया में जनसहभागिता आज भी अपेक्षित स्तर पर नहीं है।

मेहता अध्ययन दल के सुझावों के आधार पर अगले दस साल में लगभग पूरे देश में पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना की गई। भारत जैसे विशाल एवं विविध आधार पर कुछ अन्तर पाया जाता है। विभिन्न पंचायती राज संस्थाओं के कार्यो में भी थोड़ा बहुत अन्तर मिलता है। इनके उपरान्त भी पंचायती राज संस्थाओं में गुजरात एवं महाराष्ट्र जैसे प्रदेशों में अधिकारों का प्रभावी विकेन्द्रीयकरण देखने को मिलता है। इस प्रकार इन संस्थाओं ने विकास प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाई है। योजना और विकास के विकेन्द्रीयकरण की प्रक्रिया को और अधिक प्रभावी बनाने के लिये भारत सरकार ने राज्य सरकारों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों से परामर्श कर दिसम्बर 1977 में श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली का अध्ययन करने के लिये एक कमेटी बनाई। इस कमेटी ने अगस्त 1978 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमें यह सुझाव दिया गया कि जिले से संबंधित वे विकास कार्य जिन पर राज्य सरकार पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाती वे समस्त कार्य जिला परिषद द्वारा किये जायेंगे। कुछ ऐसे कार्य जिनका विकेन्द्रीयकरण संभव है वे है– कृषि और उससे संबंधित क्षेत्र स्वास्थ्य, शिक्षा, संचार, ग्रामीण उद्योग पिछड़ी जातियों का कल्याण, परिवार कल्याण आदि। इनमें से सब कुछ कार्य राज्य सरकार द्वारा भी किये जा सकते है। इस प्रकार कृषि अनुसंधान, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय शिक्षा, मध्यम सिंचाई परियोजनाएं और अन्य इसी प्रकार के बड़े कार्य जिला परिषद को नहीं दिये जा सकते कमेटी ने आगे यह सुझाव दिया गया कि विकेन्द्रीयकरण के लिये जिला स्तर पर सबसे उपयुक्त है और निचले स्तर पर विकेन्द्रीयकरण के राज्य की स्थिति पर निर्भर करेगा। मोटे तौर पर जिला परिषद राज्य के सभी विकेन्द्रीकृत कार्य को देखेगी और जिला स्तर पर उनके लिये योजनाएं बनाएगी। मंडल पंचायतें क्रियान्वयन का कार्य देखेगी।

इस प्रकार हम यह देखते है कि भारत में ग्रामीण विकास प्रशासन बहुउद्देशीय सामुदायिक विकास कार्यक्रम द्वारा संचालित होता है। जिसमें कृषि और संबंधित क्षेत्र, सघन कृषि विकास कार्यक्रम, क्षेत्र

विकास एवं समाज के कमजोर वर्गो के लिये विशेष कार्यक्रम और ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे के विकास के कार्यक्रम आदि पर अधिक दबाव दिया जाता है।

12.6 छठी पंचवर्षीय योजना में समेकित ग्रामीण विकास का स्वरूप

छठी पंचवर्षीय योजना में यह माना गया है की किसी क्षेत्र के सम्पूर्ण विकास एवं लाभ के लिए उचित बंटवारे हेतु परियोजना पद्धति पर्याप्त नहीं है। छठी योजना में क्षेत्र विशेष के लिये कार्यक्रम बनाने पर जोर दिया गया जिसमें स्थानीय संसाधनों एवं क्षमता का उपयोग किया जा सके। ऐसा इसलिये किया गया क्योंकि बेरोजगारी व गरीबी की माना विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग है और साथ ही कृषि एवं कृषि संबंधी विकास की संभावनाएं भी भिन्न–भिन्न है। योजना के उद्देश्यों स्थानीय आवश्यकताओं और पर्यावरणीय संतुलन को ध्यान में रखते हुये विभिन्न कार्यक्रमों के एक सूत्र में बांधे जाने की आवश्यकता है ताकि उपलब्ध संसाधनों का सामंजस्य पूर्ण एवं उचित उपयोग किया जा सके। उचित दर पर ग्रामीणों को पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य है ताकि उन्हें गरीबी की रेखा से ऊपर उठाया जा सके। योजना में यह भी कहा गया है कि क्षेत्र कार्यक्रमों के एकजुट होने से ग्रामीण परिवारों की आर्थिक स्थिति सुधरेगी। इन ग्रामीण परिवारों का विकास एवं रोजगार हमारा मूल उद्देश्य है। प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक सेक्टरों के विकास से इस लक्ष्य को प्राप्त करना प्रस्तावित है। योजना में उन सभी विकास कार्यक्रमों का जिक्र है। जिन्हें एक जुट किये जाने की आवश्यकता है। बुनियादी सुविधाओं का विस्तार नियमों एवं प्राथमिकताओं के आधार पर किया जाएगा। क्षेत्र की समन्वय समिति बुनियादी एवं सामाजिक सेवाओं की स्थापना को संचालित करेगी। इस सभी में सम्पूर्ण ब्लॉक स्तरीय योजनाऐं बनाने एवं विकास के लिये कार्यक्रमों की पहचान करने की आवश्यकता है ताकि स्थानीय संसाधनों एवं क्षमता का भरपूर उपयोग किया जा सके। ग्रामीण पिछड़ेपन और गरीबी की जटिलताओं के कारण समेकित ग्रामीण विकास पद्धति पर अधिक जोर दिया जा रहा है। समेकित विकास पद्धतियों को उपयोग मे लाने का विचार सचित एवं अपेक्षित है। क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने के लिये समेकित ग्रामीण विकास पद्धति से बेहतर कोई और पद्धति नहीं है। विकास की नीतियां बनाने में यह उचित होगा कि हम ग्रामीण गरीबी को प्रभावित करने वाले कारकों का ध्यान रखे। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आवश्यक है कि समस्त कार्य लोकतांत्रिक जन सहभागिता द्वारा पूर्ण क्षमता के साथ किये जाये।

इस कार्यक्रम के साथ 'समेकित' शब्द जोड़े जाने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि विकास प्रक्रिया का अर्थ है साधनों और संस्थाओं एजेन्सियों और लोगो, कार्यक्रमों और लाभान्वित के बीच सामंजस्य एवं एकजुटता हो। इस एक जुटता को प्राप्त करने की विभिन्न पद्धतियां हो सकती है। समेकित शब्द का उपयोग मात्र इसलिये किया जाता है ताकि उद्देश्यों और कार्यो के बीच की दूरी को मिटाया जा सकें।

12.7 ग्रामीण विकास प्रशासन के नए परिप्रेक्ष्य

उपयुक्त पद्धति और समेकित ग्रामीण विकास कार्यों को प्रभावी योजना निर्माण एवं क्रियान्वयन करने के लिये व संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के लिये प्रशासनिक व्यवस्थाओं की आवश्यकता है ताकि समन्वय पूर्ण योजना निर्माण, क्रियान्वयन, निरीक्षण और मूल्यांकन किया जा सके। उचित संस्थानिक और प्रशासनिक सेवाओं की आवश्यकता इसलिये भी है विभिन्न स्तरों पर होने वाली गतिविधियों में सामंजस्य स्थापित किया जा सके।

जिला स्तर, ब्लॉक स्तर एवं ग्राम स्तर पर विभिन्न कार्य किये जाने की आवश्यकता होती है। इन तीनों स्तरों के कार्यक्रमों मे उचित सामंजस्य स्थापित कर अपेक्षित लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते है। इन व्यवस्थाओं में न सिर्फ सामाजिक आर्थिक स्थिति का ध्यान रखना होता है। बल्कि प्रशासनिक मशीनरी के उपयोग एवं क्रियान्वयन क्षमताओं का भी ध्यान रखना होता है। इन व्यवस्थाओं को प्रभावी होना चाहिये एवं ऐसा वातावरण बनाना चाहिये जो समेकित ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को चलाने का चुनौती ग्रामीण भारत में विविधताओं एवं विभिन्न प्रकार की समस्याओं को ध्यान में रखते हु्ये यह उचित नहीं होगा कि सारे स्थानों पर एक ही प्रकार की संस्थानिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था की जाए। इन व्यवस्थाओं में विभिन्न क्षेत्रों की विभिन्न समस्याओं से निपटने के लिये अधिक लचीलापन होना आवश्यक है। चूंकि योजना निर्माण एवं क्रियान्वयन महत्वपूर्ण कारक है। इन्हें जिला ब्लॉक स्तर पर पूर्ण करना उचित होगा।

समेकित ग्रामीण विकास के लिसे संस्थानिक / प्रशासनिक व्यवस्थाएं कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत

1. समेकित ग्रामीण विकास के लिये प्रभावी संगठनात्मक प्रणाली निम्न प्रकार है। निर्णय करने एवं क्रियान्वयन करने वाली संस्थाओं को स्थानीय प्रतिनिधियों की मदद से कार्य करना चाहिए ऐसी प्रणाली लागू की जानी चाहिये कि सूचनाएं ऊपर से नीचे एवं नीचे से ऊपर त्वरित रूप से आ जा सके।
2. सभी स्तरों पर जिम्मेदारियों का स्पष्ट बंटवारा होना चाहिये दूसरे रूप में हम कह सकते है कि योजना निर्माण, बजट निर्माण, क्रियान्वयन एवं विकास कार्यक्रम एवं परियोजनाओं के लिये ऊपर से नीचे तक शक्तियों का उचित बंटवारा होना चाहिये।

ऊपर से नीचे तक कार्यक्रमों के निरीक्षण और मूल्यांकन के लिये प्रभावी संस्थानिक व्यवस्थाऐं होनी चाहिये। स्थानीय जनता के संगठन एवं विभिन्न वर्गो के बारे में सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिये। विभिन्न स्तरों पर योजना निर्माण, क्रियान्वयन निरीक्षण एवं मूल्यांकन के लिये प्रशिक्षित कर्मचारियों का होना आवश्यक है। योजना निर्माण क्रियान्वयन, निरीक्षण एवं मूल्यांकन के लिये उचित सूचना प्रणाली होनी चाहिये।

इस स्तर पर उचित फीड बैक मिलने से कार्य प्रभावी रूप से पूरा किया जा सकता है। प्रशासन द्वारा यह स्वीकार किया जाना चाहिये कि केन्द्र की निर्देशक एवं नियन्त्रक की भूमिका न होकर एक सहयोगी की भूमिका हो।

12.8 जिला एवं ब्लॉक स्तर पर वर्तमान संस्थानिक / प्रशासनिक प्रणाली को मजबूत बनाने का कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं एवं उपाय

उपर्युक्त परिदृश्य में अब हम समेकित ग्रामीण विकास के प्रभावी प्रबंधन के लिए जिला एवं ब्लॉक स्तर पर वर्तमान संस्थानिक / प्रशासनिक प्रणाली को मजबूत बनाने का कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं एवं उपायों पर चर्चा करेंगे।

प्रशासन का विकेन्द्रीयकरण :– जिला प्रशासन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित मामलों में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रशासन का विकेन्द्रीयकरण क्योंकि प्रशासकों की कार्य करने की विकेन्द्रीयकरण है क्योंकि प्रशासकों की कार्य करने की स्वतंत्रता उन्हें एक अर्थपूर्ण भूमिका प्रदान करने की उचित मानसिकता, उच्च श्रेणी के मनोबल एवं समर्पण की आवश्यकता होती है। यह विकास

गतिविधियों की समझ एवं कार्य से प्राप्त संतोष पर निर्भर करता है। प्रशासकों को अपने लक्ष्य निर्धारित करने होते है एवं उन्हें प्राप्त करने के लिये नीतियां बनानी पड़ती है। और यह नीतियां ही वास्तविक कार्यक्रम का आधार होती है। गतिविधियों से प्रशासकों को अपना लक्ष्य स्पष्ट रूप से पता चलता है और संगठन की कार्यप्रणाली शब्दों एवं भावनाओं दोनों रूपों में स्पष्ट समझ मे आती है। इन चीजों को प्रभावी बनाने की आवश्यकता है।

योजना निर्माण एवं जनसहभागिता :– छठी पंचवर्षीय योजना सन् 1978–1983 के अनुसार योजना निर्माण एवं उनके क्रियान्वयन में दूरी बनाने वाली समस्याओं का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया गया है.

1. तकनीकी प्रशासकीय एवं प्रबंधकीय समस्याऐं जिसमें निचले स्तर पर शक्तियों का वितरण ना होना, अनुमति, सहमति आदि दिये जाने में देरी और परिणामों के लिये जिम्मेदारी की कमी।
2. डेटा बेस एवं सूचना प्रणाली का अपर्याप्त होना। आपसी सामंजस्य पर पर्याप्त ध्यान न देना, व्यवस्थित पद्धति का अभाव और विकास एवं मूल्यांकन की अप्रभावी पद्धतियां।

यह कहा जा सकता है कि पिछले कुछ सालों में विकेन्द्रीयकृत योजना निर्माण के लिये प्रयास किये गये किन्तु फिर भी हमें अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो सके। योजनाऐं किसी भी क्षेत्र विशेष दशाओं के अध्ययन पर आधारित नहीं होती क्योंकि हमारे पास आंकडे इकट्ठे करने एवं उनके समुचित अध्ययन की प्रभावी प्रणाली नहीं है। ऐसा नहीं है कि हमेशा आकड़ों की कमी होती है। जिला स्तर से ऊपर के स्तर पर कई रिपोर्ट भेजी जाती है। किन्तु उनका उचित अध्ययन नहीं हो पाता और इनका उपयोग केवल नीति निर्धारकों तक ही सीमित होता है। परिणाम स्वरूप उचित निर्णय नहीं किये जाने एवं उनके क्रियान्वयन में कई परेशानियों का सामना करना पड़ता हैं। एक नया प्रशासकीय ढांचा तैयार किया जाना चाहिये जो ग्रामीण समस्याओं को भलीभांति समझ सके और किसी क्षेत्र विशेष के लिये आकड़ों का अध्ययन कर योजना निर्माण में मददगार हो सके।

समेकित ग्रामीण विकास के संदर्भ में स्थानीय स्तर पर योजना निर्माण में आने वाली समस्या यह है कि प्रशासन के एक अंग को यह पता नहीं होता कि दूसरा अंग क्या कर रहा है। इस प्रकार हम देखते है कि प्रशासन की विभिन्न एजेन्सियों में समन्वय का नितान्त अभाव है। मुख्य समन्वयक के रूप में जिला कलेक्टर ही एक ऐसा व्यक्ति है जो विभिन्न योजनाओं और अनेक आपसी समन्वय को समझ पाता है। यह समझ निचले स्तर के अधिकारियों में भी विकसित होनी चाहिये। ताकि विकास कार्यक्रम बेहतर ढंग से चलाया जा सके।

स्थानीय स्तर पर योजना निर्माण को सुदृढ़ करने के लिये योजना आयोग ने नवम्बर 1977 में प्रो. एम. एल. दांतवाला की अध्यक्षता में एक कार्यकारी दल का गठित किया जिसका कार्य ब्लॉक स्तर पर योजना निर्माण के लिये दिशा निर्देश तैयार करना था। इस कार्यकारी दल ने 1978 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

कार्यकारी दल योजना निर्माण दल को जिला मुख्यालय पर रखने की सिफारिश की है। यह व्यवस्था योजनाओं और जिला योजनाओं मे समन्वय स्थापित करेगी। वास्तव में ब्लॉक और जिला स्तर पर योजनाऐं एक साथ तैयार की जा सकेगी।

कार्यकारी दल ने यह सिफारिश भी की कि जिला स्तर पर योजना निर्माण दल, जिसकी जिम्मेदारी ब्लॉक स्तर पर योजनाऐं बनाना होगा उसमें एक कोर ग्रुप होना चाहिये। जिसमें निम्न लोग होने चाहिये।

1. मुख्य योजना निर्माण कर्ता जिसके पास पर्याप्त अनुभव हो और उचित नेतृत्व प्रदान कर सकता हो साथ ही वह ब्लॉक स्तर पर योजना बनाने और अन्य सदस्यों में टीम भावना का विकास कर सके।
2. अर्थशास्त्री / सांख्यिकी अधिकारी (परियोजना के मूल्यांकन हेतु)
3. भूगोल विषय का ज्ञाता
4. कृषि वैज्ञानिक
5. सिंचाई या सिविल इंजीनियर
6. उद्योग अधिकारी (लघु एवं कुटीर उद्योग)
7. क्रेडिट प्लानींग अधिकारी
8. इनके अलावा क्षेत्र या कार्यक्रम के अनुसार विशेषज्ञों की जहाँ डेयरी फारमिंग महत्वपूर्ण है वहाँ डेयरी से संबंधित तकनीकी जानकारी वाले व्यक्ति की आवश्यकता हो सकती है। इसलिये योजना निर्माण दल के गठन मे आवश्यकता अनुसार फेर बदल किया जा सकता है। योजना अधिकारी एक उच्च पदस्थ व्यक्ति होना चाहिये। ताकि वह अपना कार्य प्रभावशाली तरीके से कर सके। जिला कलेक्टर के से नीचे का कोई अधिकारी इस कार्य के लिये उपयुक्त होगा।

योजना निर्माण में क्रियान्वयन एवं निरीक्षण में सुधार लाने के लिये छठी पंचवर्षीय योजना में यह भी कहा गया है कि प्रत्येक स्तर पर व्यावसायिक दक्षता का उपयोग किया जायेगा। विशेष रूप से जिला और ब्लॉक स्तर पर पूर्ण कालिक योजना निर्माण एवं निरीक्षण दल गठित किये जायेंगे। राज्य स्तर पर भी योजना निर्माण मशीनरी को विशेषज्ञों की मदद से सुदृढ़ बनाया जायेगा। परियोजना राज्य सरकार के विभागों और केन्द्रीय मंत्रालयों में निरीक्षण एवं मूल्यांकन दल गठित किये जायेंगे। ब्लॉक स्तर की योजनाऐं स्वैच्छिक संगठनों, व्यावसायिक संस्थाओं और जनता की मदद से बनाई जायेगी। जिला स्तर की योजनाओं में चुनी हुई संस्था के प्रतिनिधि शामिल किये जायेंगे। योजना के लिये जिला एवं ब्लॉक स्तर पर कार्य करने के साथ यह भी आवश्यक हो जाता है कि योजना निर्माण के लिये आवश्यक आकड़ों के एकीकरण एवं अध्ययन की सुविधाऐं भी विकसित की जाये। इस उद्देश्य के लिये जिला सांख्यिकी अधिकारी मददगार हो सकता है। इसी प्रकार ब्लॉक स्तर पर भी आकड़ों के एकीकरण और अध्ययन के लिये व्यवस्थित उपाय करने होगे।

क्रियान्वयन के चरण में निरीक्षण के लिये विश्वसनीय आंकडों एवं कार्यक्रमों के मूल्यांकन की आवश्यकता है। साथ चलने वाले मूल्यांकन से छोटी–मोटी रपमरचाऐं दूर होंगी और गतिविधियां अधिक सामंजस्यपूर्ण होगी। वर्तमान प्रशासनिक प्रणाली को सूचना इकट्ठा करने एवं उनका अध्ययन करने के लिये अधिक व्यवस्थित एवं प्रभावी बनाना होगा। इसे ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के निरीक्षण एवं मूल्यांकन के महत्व को समझना होगा। यह पारस्परिक फीड बैंक जिला राज्य एवं केन्द्र स्तरों पर देने मे भी सहायक साबित होगा। एक अन्य समस्या बजट एवं वित्त प्रबंधन की है। प्रशासन यह बताने में सक्षम नहीं होता की किस कार्यक्रम के लिये कितना धन उपलब्ध कराया जायेगा। इन कारणों से भलीभांति योजना निर्माण नहीं किया जा सकता है। योजना निर्माण की प्रक्रिया में विभिन्न

सरकारी अधिकारियों के अलावा जनता व अन्य ऐजेन्सियों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित के लिये ऐसी प्रणाली लागू करनी चाहिये जो विभिन्न कार्यकारी दलों का गठन कर उनसे योजनाओं के बारे में चर्चा कर सके।

समन्वय :– समेकित ग्रामीण विकास प्रबंधन का कार्य अत्यन्त चुनौतीपूर्ण है। इसमें विभिन्न स्तरों पर कार्य में सामंजस्य की आवश्यकता होती है। योजना को अंतिम रूप देने के बाद उनका प्रभावी तरीके से क्रियान्वयन आवश्यक है जिसके लिये समन्वित प्रयास बहुत महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिये कृषि उत्पादन कार्यक्रमों के प्रभावी प्रबंधन के लिये उठाये जाने वाले कुछ कदम निम्न अनुसार है :–

बीजों का उत्पादन करना उनका उपचार करना और समय पर वितरण करना। मिट्टी का परीक्षण करना और विभिन्न प्रकार की फसलों के लिये विभिन्न प्रकार की खाद का उपयोग करना। किसानों को उचित माना में धन एवं खाद उपलब्ध करवाना। फसलों को कीड़ों एवं बीमारियों से बचाने की व्यवस्था पानी की उचित समय पर आपूर्ति करना और सिंचाई के लिये पर्याप्त बिजली के उपयोग के लिये तैयार करना उपरोक्त समस्त गतिविधियों में समन्वित प्रयासों की आवश्यकता होती है एवं इसमें विभिन्न ऐजेन्सियां मिल जुलकर कार्य करती है। कृषि विभाग, सामुदायिक विकास विभाग पशुपालन विभाग, मछली पालन विभाग सहकारिता विभाग सिंचाई विभाग विपणन बिजली आदि विभाग मिलजुल कर परस्पर सहयोग द्वारा कार्यक्रमों को सफल बनाते हैं। इनके अलावा बैंक ग्रामीण विद्युतीकरण कृषि विश्वविद्यालय आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। यदि विभिन्न ऐजेन्सिया परस्पर निर्भरता और एक दूसरे के पूरक होने की भावना विकसित करते है तो वह समन्वय अधिक प्रभावी होगा। जिन क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण नहीं हुआ है वहां इस कार्य में जिला कलेक्टर की मदद के लिये उसके समकक्ष स्तर के किसी अधिकारी को समन्वय की जिम्मेदारी दी जानी चाहिये। चूंकि योजना निर्माण एवं क्रियान्वयन दोनों के लिये प्रभावी समन्वय होना आवश्यक है। अत: जिला समन्वय अधिकारी को जिले का मुख्य योजना अधिकारी भी होना चाहिये इस व्यवस्था से योजना निर्माण प्रक्रिया में अपेक्षित लचीलापन एवं प्रभावशीलता उत्पन्न होगी। महाराष्ट्र एवं गुजरात जैसे प्रदेशों में प्रभावी लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण हो चुका है। वहां इस प्रकार की व्यवस्था विद्यमान है। जिसमें जिला परिषद के अधीन जिला स्तर का कोई अधिकारी जिले मे समस्त विकास कार्यो का प्रभारी होता है। स्थानीय स्तर पर यह जिम्मेदारी ब्लॉक विकास अधिकारी के पास होनी चाहिये। हर स्तर पर समन्वयन अधिकारियों की अध्यक्षता में समन्वय कमेटियों का गठन किया जाना चाहिये। इन कमेटियों में विभिन्न विभागों के उच्च अधिकारी एवं पंचायती राज संस्थाओं और अन्य संबंधित ऐजेन्सियों के प्रतिनिधि होने चाहिये।

समन्वय स्थापित करने की जिम्मेदारी के अलावा इन समन्वय अधिकारियों को जिला / उपखंड एवं होनी चाहिये। उनके अधीन क्रियान्वयन की जिम्मेदारी विभिन्न विभागीय अधिकारियों को दी जानी चाहिये।

12.9 सारांश

यद्यपि हमारे पास योजनाबद्ध ग्रामीण विकास लंबा एवं विधि पूर्ण अनुभव है। हम कई सफलताऐ भी प्राप्त कर चुके है। फिर भी हमारी समस्याओं का आकार एवं जटिलता काफी भिन्न है और इसलिये विभिन्न पहलुओं को व्यवस्थित तरीके से अध्ययन कर संस्थानिक प्रशासनिक तुरन्त लाये जाने की आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में विकेन्द्रीयकृत विकास की मांगो को पूरा करने के लिये

प्रशासनिक सुधार लाना एक बड़ा कठिन एवं चुनौतीपूर्ण कार्य है। जिसमें निरन्तर योजना निर्माण, क्रियान्वयन एवं व्यवस्थाओं को सुधारने की आवश्यकता है यदि हम इस कार्य को दृढ़ता, इच्छा शक्ति एवं दूरदर्शिता से करे तो हम अपने लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे।

12.10 अभ्यास प्रश्न

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम की रूपरेखा का विवेचन कीजिए।
2. पिछड़े क्षेत्रों के विकास कार्यक्रमों की समीक्षा कीजिए।
3. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण द्वारा प्राप्त जनसहभागिता की समीक्षा कीजिए।

12.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. देसाई, वसन्त : पंचायती राज, हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1990
2. मिश्रा, बी. एन. : 'रूरल डवलपमेंट', कुरूक्षेत्र, मार्च, 1991
3. हीरवे, इन्द्रा : 'पंचायती राज एट ग्रास रूट', इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, जुलाई, 1989
4. मेहता, बी. आर. : कमेटी रिपोर्ट ऑन प्लान प्रोजेक्ट, प्लानिंग कमीशन, नई दिल्ली, वो. 1, 1959

इकाई – 13

विकास प्रशासन में जन प्रतिभागिता

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 विकास प्रशासन मे जन सहभागिता

13.2.1 सहभागिता का तर्काधार

13.2.2 भागीदारी विकास रणनीतियों के महत्वपूर्ण संघटक के रूप में

13.2.3 आधुनिकीकरण एवं राजनीतिक विकास के कार्यान्वयन हेतु भागीदारी

13.2.4 विकास के सूचक

13.2.5 संस्थागत क्रियाविधियां

13.2.6 विकास में बाधाएं

13.2.7 विकास के लिए सुझाव

13.3 सारांश

13.4 शब्दावली

13.5 अभ्यास प्रश्न

13.6 संदर्भ ग्रंथ

13.0 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात आप को जान लेना चाहिए–

- जन सहभागिता के महत्व की व्याख्या करना
- विकास की रणनीतियों का विवेचन करना एवं इसमें प्रयुक्त संस्थागत कार्यविधियों को समझना
- सहभागिता के स्तर को सुधारने के लिए विभिन्न उपायों को प्रकाश में लाना

13.1 प्रस्तावना

विकास एक जटिल है। हममें से अधिकतर विकास को आर्थिक प्रक्रिया के रूप में जानता है। वास्तव में यह मात्र आर्थिक कार्य नहीं है अपितु इसका स्वरूप व्यापक है। यह आर्थिक, राजनीतिक, एवं सामाजिक क्षेत्रों मे परिवर्तन लाती है। विकास में जन भागीदारी की आवश्यकता होती है। इतना विशाल कार्य जनता की सक्रिय भागीदारी के अभाव में निष्पादित नहीं किया जा सकता है। यह बहुत आवश्यक है कि विकास से जनता लाभान्वित हो। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि जनता अपने कौशल, प्रवीणता, एवं सुविज्ञता के माध्यम से विकास प्रक्रिया में योगदान दे। यहां यह प्रश्न उठता है कि लोग किस प्रकार से विकास में अर्थपूर्ण योगदान दें? लोगों की भागीदारी के पीछे क्या कारण संभव है? लोगों की भागीदारी के परिणाम क्या हैं? क्या वे वास्तव में विकास द्वारा प्रभावित हो रहे

हैं अथवा वे व्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहे है? इस इकाई में इन सभी प्रश्नों का व्यवस्थित रूप से उत्तर दिया जाएगा।

इसके साथ ही यह इकाई विकास के लिए प्रयुक्त होने वाली विभिन्न रणनीतियों पर भी प्रकाश डालेगी। हम विकास के गांधीवादी मॉडल के विषय में जानेंगे जो कि जन सहभागिता पर बल देता है। हम दक्षिणी कोरिया, ताईवान, सिंगापुर एवं हांग–कांग द्वारा लागू किए गए विकास मॉडलों का अध्ययन भी करेंगे। इन देशों के त्वरित विकास का अध्ययन करना अत्यन्त रुचिकर है।

इस कारण विकास के सुचको का अध्ययन महत्वपूर्ण है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, विकास का अर्थ मात्र आर्थिक विकास नहीं है। इसका अर्थ है लोगों के जीवन में गुणात्मक विकास और विभिन्न सूचकों जैसे – मानव विकास सूचक, लिंग सम्बन्धी विकास सूचक, प्रजातंत्र सूचक, एवं समग्र राष्ट्रीय विकास सूचक आदि। ये विकास का आधार समझने में हमारी सहायता करेंगे। इन आधारों पर ही देशों का विकसित, अर्द्ध विकसित व विकासशील देशों के रूप में वर्गीकरण होता है।

इस इकाई में देशों के स्तर का मूल्यांकन होगा और साथ ही इसमें निम्नतम स्तर पर लोगों की भागीदारी की संस्थागत क्रियाविधियों पर भी चर्चा होगी। इन क्रियाविधियों का सर्वेक्षण करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में सामान्य जन त्रिस्तरीय पंचायती राज्य संस्थाओं के माध्यम से अपना योगदान करते हैं।

13.2 विकास प्रशासन में जन सहभागिता

इस इकाई के माध्यम से जन सहभागिता में आने वाली बाधाओं व सहभागिता की स्थिति में सुधार लाने हेतु उपचार सुझाना भी उपयोगी रहेगा।

13.2.1 सहभागिता का तर्काधार

(1) जॉन ड्व्ल्यु न्यूस्ट्राम और कीथ डेविस ने अपनी पुस्तक 'ऑर्गेनाइजेशनल बिहेवियर – 'ह्यूमन बिहेवियर एट वर्क' में भागीदारी को परिभाषित करते हुए कहा है कि – भागीदारी लोगों का उन सामूहिक स्थितियों से ऐसा मानसिक एवं भावनात्मक जुड़ाव है जो सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए योगदान देने एवं उत्तरदायित्वों को बांटने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करता हैं।

यदि हम भागीदारी को समकालीन समय काल के मूल्य संलक्षण के रूप में देखें तो निष्कर्ष में हम भागीदारी के कुछ महत्वपूर्ण आयाम निकाल सकते हैं।

(1) सम्मिलन अथवा जुड़ाव : वास्तविक भागीदारी के लिए किसी गतिविधि में लोगों के पूर्ण सम्मिलन की आवश्यकता होती है। मात्र अपने कौशल का उपयोग कर लेना भागीदारी को सुनिश्चित नहीं करता। सम्पूर्ण सम्मिलन से ही भागीदारी प्रभावशाली होती है।

(2) योगदान : भागीदारी मूल मानवीय प्रवृत्ति है। सहभागिता युक्त वातावरण में लोग अपनी रचनात्मकता एवं क्षमताओं का सर्वश्रेष्ठ उपयोग करने का प्रयास करते हैं। इससे उन्हें एक प्रकार का परितोष प्राप्त होता है।

(3) उत्तरदायित्व : भागीदारी से लोगों को उत्तरदायित्व वहन करने का अवसर प्राप्त होता है। वे स्वेच्छा से सहयोग करते हैं और 'हां मैं कर सकता हूं की भावना उन्हें और भी उत्तरदायी बनाती है। इससे काम की गुणवत्ता मे वृद्धि होती है क्योंकि कार्यभार मात्र किसी व्यक्ति विशेष

द्वारा वहन नहीं किया जाता। इस प्रकार सहभागिता युक्त वातावरण में उत्तरदायित्व के नाम पर शक्ति संकेन्द्रन की समस्या कम हो जाती है।

(4) परियोजनाओं से लाभान्वित होना : अपनी पुस्तक मे पीटर ओक्ले कहता है कि किसी परियोजना. से लाभ प्राप्त करना भी सहभागिता है। परन्तु लाभग्राही एवं साझेदार में भेद स्पष्ट कर देना चाहिए। वास्तविक सहभागिता उन साझेदारों की बात करती है जो परियोजना में सक्रियता से भाग लेते हैं न कि मात्र लाभग्राही बने रहते हैं। परियोजना में साझेदारी होने के कारण वे अर्थपूर्ण तरीके से उसे प्रभावित करते हैं और अन्तिम निर्णय में उनकी सलाह महत्वपूर्ण मानी जाती है।

सहभागिता के लाभ

1. उत्पाद की गुणवत्ता एवं मात्रा में सुधार

   सहभागिता के द्वारा प्राप्त परिणाम अधिक विश्वसनीय एवं लाभकारी होते हैं। लोग अपने कार्य मे वचनबद्धता का प्रदर्शन करते हैं। वे कार्य को गम्भीरता से लेते हैं जिसका सीधा प्रभाव अंतिम उत्पाद पर पड़ता है। उत्पाद की गुणवत्ता एवं मात्रा दोनों में ही सुधार होता है।

2. प्रेरकता स्तर मे वृद्धि

   जैसा कि पूर्व में कहा गया है, सहभागिता व्यक्ति की रचनात्मकता में वृद्धि करती है और वह स्वयं को उन्नत महसूस करने लगता है। इससे सहज ही व्यक्ति का प्रेरकता स्तर बढ़ता है। लाईकार्ट के अनुसार प्रेरकता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह प्रदर्शित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति गंभीरता से एक सुरक्षित, मित्रवत एवं समर्थक स्वयं चाहता है जो उसे उसके लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण सन्मुखी समूहों के मध्य उसकी योग्यता का अहसास करवाए। माइकल आई. ज्यूकियस के अनुसार प्रेरकता किसी अन्य अथवा स्वयं को इच्छित प्रतिक्रिया प्राप्त करने के उद्देश्य से उचित दिशा में कार्य करने एवं सही बटन दबाने के लिए प्रेरित करना है। अत: एक प्रेरित कार्यकर्ता अप्रेरित से अच्छा है। यह स्थिति विकास के पक्ष में कार्य करती है।

3. सहभागिता अधिक संपूर्ण सूजना एवं ज्ञान का उत्पादन करती है

   जब भिन्न व्यक्तियों के संसाधन एक साथ मिल जाते हैं तो निर्णय प्रक्रिया में अधिक निवेश होता है। विचारों एवं मतों की विविधता रहती है। इस प्रकार किसी समस्या का भिन्न तरीकों व दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जा सकता है। सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक अनुकूल तरीके को मान लिया जाता है। इस प्रक्रिया को अपनाने से निर्णय अधिक प्रजातांत्रिक एवं ज्ञान द्वारा समर्थित होता है।

4. किसी समाधान के अनुमोदन में वृद्धि

   कई निर्णय एक बार लिए जाने के पश्चात अस्वीकार्य भी हो जाते हैं। ऐसा होने की सम्भावना तब अधिक होती है जब वे किसी व्यक्ति विशेष द्वारा इन निर्णयों के माध्यम से लाभग्राहियों से विमर्श के बिना ही ले लिए गए हों। तथापि सहभागिता ऐसी स्थितियों की सम्भावना को कम करती है। लोगों द्वारा उस निर्णय का अनुमोदन करने की अधिक सम्भावना होती है जिसके लिए जाने की प्रक्रिया में वे सम्मिलित हों। वे न केवल स्वयं ऐसे निर्णय का समर्थन करते है अपितु अन्य लोगों को भी अंतिम निर्णय का समर्थन करने हेतु प्रोत्साहित करते हैं।

भूमि सुधार एवं ग्राम विकास पर विश्व सम्मेलन द्वारा दी गई सहभागिता की व्याख्या

(1) जन सहभागिता एक मानवाधिकार है क्योंकि मनुष्यों के जीवन को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया में सक्रिय सम्मिलन प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है।

(2) यह सामाजिक आर्थिक विकास एवं समाज के पिछड़े वर्गो के पक्ष को बल प्रदान न करती है।

(3) लोगों का जुड़ाव होने से नीतियों के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक पक्षों को प्रेरणा मिलती है।

इस प्रकार, वृहद सहभागिता व्यवस्था के लिए एक बड़ा सहारा एवं विकास प्रक्रिया की सफलता की कुंजी है। जैसा कि पंडित नेहरू ने कहा कि –

'प्रजातंत्र का अर्थ मात्र शिखर पर लोकसभा एवं राज्यों मे विधायिका ही नहीं है परन्तु ऐसी व्यवस्था है जो प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उचित भूमिका एवं वास्तव में कोई भी पद प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षित करती है।'

13.2.2 सहभागिता–विकास रणनीतियों के महत्वपूर्ण घटक के रूप में

सामाजिक शास्त्रों में विकास की अवधारणा सामाजिक परिवर्तन की दूसरी पीढ़ी के रूप में आई। बदलाव का अर्थ है सरल से जटिल समाज में परिवर्तन, असंगठित से अधिक संगठित समाज में परिवर्तन। इस प्रकार विकास का अर्थ है एक ऐसी व्यवस्था जो लोगों की आवश्यकताओं एवं महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने में सक्षम व प्रभावी हो सके, यद्‌यपि लोग इसे उन्नति मान कर भ्रमित हो जाते हैं। परन्तु इसके साथ ही उन्नति का परिमाप प्रमुखत: नैतिकता आधारित है जबकि विकास को अनुभव के आधार पर मापा जा सकता है।

विकास एक दीर्घ प्रक्रिया है। यह समाज के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संगठनों में महत्वपूर्ण बदलाव लाता है परन्तु लघु अथवा दीर्घ, प्रत्येक प्रक्रिया में लोगों का जुड़ाव होता है। विकास की प्रक्रिया तभी सफल हो सकती है जब इसमें लोगों का अर्थपूर्ण योगदान हों। यह एक विनिमय आधारित प्रक्रिया है। लोग विकास की प्रक्रिया में अपने कौशल एवं क्षमताओं का योगदान करते हैं और बदले में विकास के परिणामस्वरूप अधिक स्वतंत्र व भौतिक सुविधायुक्त जीवन प्राप्त करते हैं।

इस संदर्भ में विकास के गांधीवादी मॉडल का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है। गांधीजी के अनुसार भारत के अर्द्ध विकसित रहने की समस्या विकास के पश्चिमी मॉडल को अपना कर दूर नहीं की जा सकती। भारत की समस्याओं का हल भारतीय संदर्भ में खोजना होगा इसलिए विकास के लिए उन्होंने निम्नतम स्तर से विकास का समर्थन किया न कि उच्च स्तर से नीचे की ओर आने वाले विकास का। बाद में वर्णित व्यवस्था उपभोक्तावाद को बढ़ावा देती है एवं पहली वाली व्यवस्था नैतिक उत्थान का समर्थन करती है। अन्य शब्दों में अनियंत्रित उत्पादन से कामनाओं का गुणन एवं अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा का जन्म होता है। गांधीजी ने विकास को सम्भव बनाने के लिए जनशक्ति पर बल दिया। उन्होंने विकास में प्रमुखतम योगदान लोगों का माना। उन्होंने तर्क दिया कि भारत जैसे देश में जहां अत्यधिक मात्रा में श्रम शक्ति सरलता से उपलब्ध है, बहु मात्र उत्पादन की अपेक्षा जनता द्‌वारा उत्पादन अधिक वांछनीय है। जैसा कि उन्होंने 'हरिजन' (1935) में लिखा 'मृत यंत्रों को भारत के सात सौ हजार गांवों में बिखरे ग्रामीणों के रूप में करोड़ों जीवित यंत्रों के मुकाबले में नहीं खड़ा करना चाहिए। यंत्रों का उचित उपयोग है मानवीय प्रयास में सहायता देना एवं उसे सरल बनाना। वर्तमान में जिस रूप में यंत्रों का प्रयोग हो रहा है उससें कुछ लोगों के हाथ में धन संकेन्द्रण हो रहा है और उन लाखों लोगों की पूर्ण अवहेलना हो रही है जिनकी रोटी इन यंत्रों द्‌वारा छीन ली गई है।

इस प्रकार लोगों की अवहेलना करने वाला उत्पादन कभी विकास नहीं ला सकता है। यदि विकास को अर्थपूर्ण एवं उपयोगी होना है तो इसे लोगो को सम्मिलित कर उनकी क्षमताओं का प्रभावी रूप से उपयोग करना होगा। इसके प्रत्युतर में लोगों को उनके उत्तरदायित्व की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रेरित करना पड़ेगा और उन्हें अपनी जिम्मेदारियों को बेहतर तरीके से पूर्ण करना होगा। ऐसा करने से विकास मात्र एक प्रक्रिया न रह कर लोगों के जीवन का हिस्सा बन सकेगा।

सहभागिता– विकास रणनीतियों की केन्द्रीय अवधारणा

जहां एक ओर गांधीवादी मॉडल दीर्घकालीन विकास के प्रचलित प्रतिमानों में से एक है वहीं दूसरे प्रचलित मॉडल भी उपलब्ध हैं। विश्व के विभिन्न देशों ने विकास के विभिन्न प्रतिमान अपनाए। वास्तव में उन्होंने इस तर्क को सर्वथा अस्वीकृत कर दिया कि पूर्व उपनिवेश नियोजित तरीके से विकास नहीं कर सकते। नव औद्योगीकृत देशों ने तीव्र गति से विकास कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। सिंगापुर, ताईवान, हांग कांग, दक्षिणी कोरिया, 'चार टाईगर अथवा 'चार ड्रैगन' कहलाते हैं जिन्होंने विस्मयकारी विकास कर इतिहास रचा। विशेषज्ञों की सम्मति है कि इन देशों ने ऐसी विकास की रणनीति अपनाई जिसमें इन्होंने मानवीय पूंजी में निवेश कर इसे विकास के लिए योगदान हेतु तैयार किया। प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाया गया। उच्च गुणवत्ता युक्त तकनीकी शिक्षा का भी विकास में योगदान रहा। इस प्रकार इन देशों मे इस निवेश ने निर्यात प्रोत्साहन व उत्पादन की सहायता से विकास को सम्भव बनाया। क्या यह लोगों के योगदान के बिना सम्भव होता? अध्ययन दर्शाते हैं कि इन देशों में लोगों ने न केवल काम किया अपितु अपने काम की पूजा की। उनका जुड़ाव का स्तर इतना संपूर्ण था कि इन देशों के विकास का अर्थ ही है लोगों की क्षमताओं, कौशल, ऊर्जा, एवं सुविज्ञता का सम्मिलन। प्रभावी जन सहभागिता की सही रणनीति प्रयोग करते हुए दक्षिणी कोरिया इस्पात व ऑटोमोबाइल क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त कर इन क्षेत्रों में महाकाय बन गया। सिंगापुर में प्रमुख बहु राष्ट्रीय कम्पनियां स्थित हैं। वर्तमान में यहां पर्यटन भी फल फूल रहा है। इसका श्रेय यहां की सुनियोजित विकास रणनीति एवं मानवीय पूंजी में बुद्धिमत्तापूर्ण निवेश को जाता है। ताईवान कम्प्यूटर एवं इलैक्ट्रॉनिक उद्योग में विशेषज्ञ है। इस देश ने विस्मयकारी विकास किया है। इसका श्रेय भी उच्च स्तरीय जन सहभागिता को जाता है। हांग कांग बैंकिंग व व्यापार मे विशेषज्ञता रखता है। इसकी विकास रणनीति लोगों की प्रतिभाओं को सर्वश्रेष्ठ तरीके से प्रयुक्त करने पर केन्द्रित है।

इन सभी देशों ने विकास के अपने स्तर को बनाया है और अभी भी बना कर रख रही हैं। यहां तक कि दक्षिणी कोरिया व ताईवान में राजनीतिक अस्थिरता से भी विकास बाधित नहीं हुआ क्योंकि जनता विकास की प्रक्रिया के प्रति समर्पित है।

13.2.3 आधुनिकीकरण व राजनीतिक विकास के क्रियान्वयन हेतु भागीदारी

आधुनिकरण मूल्यों, मानदण्डों एवं मान्यताओं, विचारों एवं तदनन्तर संस्थाओं व समाज में परिवर्तन पर बल देता है। इसलिए विकास के लिए लोगों की मनोवृत्तियों में बदलाव बहुत अर्थ रखता है। जब जन साधारण की सोच बुद्धिसंगत व प्रगतिमूलक हो जाती है तभी विकास को उचित स्वरूप प्राप्त होता है। शिक्षा का स्तर, राजनीतिक चेतना, आर्थिक अवसरों आदि में आधुनिकीकरण के आने से वृद्धि हो जाती है। कानूनी बुद्धिसंगत व्यवस्था के उदय, जनसंचार के साधनों व सम्प्रेषण में विस्तार, एवं प्रजातांत्रिक सहभागिता भी आधुनिकीकरण के संकेत हैं। परन्तु आधुनिकीकरण का मार्ग सरल व

सीधा नहीं है। इसमें विभिन्न सूक्ष्म भेद हैं। इसलिए विश्व के सभी देशों के लिए एक ही फार्मूले, का प्रयोग नहीं किया जा सकता। विकसित देशों के लिए आधुनिकीकरण का मार्ग रैखिक था परन्तु विकासशील देशों के लिए विकास की लहर सामना इतनी शक्तिशाली सिद्ध हुई कि उनके लिए इसका सामना करना कठिन था। इसलिए वे स्वयं को पारम्परिक ढांचे से पूर्णरूपेण अलग नहीं कर सके और उन्होंने अपने समाजों में प्रारम्भ किए गए परिवर्तनों को हृदय से स्वीकार नहीं किया। परिणामस्वरूप विकासशील देशों में आधुनिकीकरण स्थाई प्रभाव स्थापित करने में असफल रहा। वहीं दूसरी ओर विकसित देशों का तीव्र गति से आधुनिकीकरण हुआ।

विकसित व विकासशील देशों में तुलना करने पर पता चलता है कि विकासित देशों के आधुनिकीकरण के कारकों में प्रमुख था आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में लोगों की उत्साहपूर्ण सहभागिता। लोगों ने सभी सम्भव क्षेत्रों में भागीदारी की और इस प्रकार पूंजी व संसाधनों का उत्पादन किया। उनकी सहभागिता से आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। सामान्यतया विकासशील देश आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दर्शाने में असफल रहे। इन देशों की जनता ने स्वयं को आधुनिकीकरण में भाग लेने से दूर रखा। उन्होंने आधुनिकीकरण को एक विदेशी प्रक्रिया माना जो उनकी पारम्परिक संरचनाओं को नष्ट करने को आतुर है। जैसा कि मैक्स वैबर मानता है पारम्परिक समाज आरोपित स्थान, विसरित भूमिकाओं एवं अनुदारतावादी मूल्यों का समर्थन करते हैं। इन पारम्परिक समाजों को विकासशील देशों में अपना प्रतिबिम्ब मिला। इनमें से कई अपनी जनता की असहभागी मनोवृति एवं प्रभुत्व व पदानुक्रम की व्यवस्थाओं के कारण आज भी पिछड़े हुए हैं।

यदि आधुनिकीकरण में सहभागिता महत्वपूर्ण है तो राजनीतिक विकास पर भी इसका प्रमुख प्रभाव है। ल्यूसियन पाय राजनीतिक विकास को एक आधुनिक अवधारणा मानता है। उसके अनुसार पारम्परिक राजनीतिक व्यवस्था निर्धारित कार्यो से सम्बन्ध रखती थी अर्थात एक पुलिस राज्य। परन्तु आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था कल्याणकारी राज्य की बात करती है।

पाय राजनीतिक विकास के तीन लक्षण बताता है

विभेदीकरण :– का अर्थ है भूमिकाओं, संस्थानों, एवं क्षेत्रों का पृथक्करण। इस प्रक्रिया से लोग विशिष्ट भूमिकाएं ग्रहण कर लेते हैं। उदाहरणस्वरूप एक कार्यकर्ता अपनी व्यावसायिक भूमिका को पारिवारिक भूमिका से पृथक रखता है।

समानता :– पारम्परिक समाजों की प्रजा आधुनिक 'समाज की प्रजा बन जाती है। समान नागरिकता, समान अवसर, लोगों को विकास में लिए अर्थपूर्ण सहभागिता के लिए प्रेरित करते हैं।

क्षमता :– का अर्थ है राजनीतिक व्यवस्था की सार्वजनिक कार्यो का संचालन करने व लोगों की मांगों को पूरा करने की बढ़ी हुई क्षमता। विविधता युक्त कार्यो, नये अवसरों की समान उपलब्धता एवं क्षमता निर्माण के माध्यम से सहभागिता विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।

13.2.4 विकास के सूचक

जिस प्रकार राजनीतिक विकास तीन प्रमुख विशेषताओं द्वारा मापा जाता है उसी प्रकार विकास को नापने के कुछ सूचक हैं। प्रारम्भ में यह माना जाता था कि जितना उच्च औद्योगीकरण व यंत्रीकरण का स्तर हो उतना ही उच्च विकास का स्तर होगा। परन्तु शनै: शनै: यह माना जाने लगा कि विकास

जनता के लिए है। यदि जनता एक बेहतर व प्रसन्न जीवन जीती है तो विकास सफल है। इस प्रकार सभी सूचकों का केन्द्रीकरण विकास मात्रात्मक के स्थान पर गुणात्मक सूचकों में परिवर्तित हो गया।

1. जीवन सूचकांक की भौतिक गुणवत्ता
   यह पहली बार मॉरिस द्वारा दी गई। इसमें शिशु मृत्यु एवं जीवन प्रत्याशा को देखा जाता है।
2. मानव विकास सूचकांक
   1990 में, यह माना गया कि लोगों की आय में वृद्धि मात्र ही विकास नहीं है। यह मानव जीवन अधिक जटिल व सघन रूप से विकसित होता है। इसी कारण से संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने 1990 मानव विकास रिपोर्ट के नाम से एक रिपोर्ट का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह सामाजिक आर्थिक प्रगति का एक विश्वसनीय स्रोत है। मानव विकास सूचकांक विभिन्न देशों को मानव विकास के स्तर के आधार पर तीन श्रेणियों में वर्गीकृत करता है – उच्च, मध्यम, व निम्न। यह प्राप्त करने के लिए किसी देश की जीवन प्रत्याशा, शैक्षिक स्तर एवं जीवन स्तर के आधार पर प्राप्त उपलब्धियों को आधार बनाया जाता है। यह दर्शाता है कि लोगों के लिए उपलब्ध जीवन जीने के विकल्पों के आधार पर विकास को मापा जाना चाहिए। यदि लोग एक बेहतर स्तर व गुणवत्ता युक्त जीवन व्यतीत करते हैं तो उस देश में विकास को अधिक प्रमुखता से देखा जा सकता है।
3. लिंग आधारित विकास सूचकांक
   यह भी मानव विकास के समान ही परिवर्ती का प्रयोग करता है परन्तु प्रत्येक देश के इन परिवर्ती में औसत सुयोजन को पुरुष व स्त्रियों की उपलब्धियों में असमानता के अनुसार सुनियोजित करता है। उदाहरणस्वरूप – 1 .3 करोड़ निर्धनों में 70 प्रतिशत महिलाएं हैं। श्रमिक शक्ति में महिलाओं की हिस्सेदारी बीस वर्षों में केवल चार प्रतिशत बिन्दु ही बढ़ी है। यह वृद्धि 1970 में 30 प्रतिशत से 1990 में 40 प्रतिशत हुई है। नौ करोड़ निरक्षर लोगों में महिलाओं और पुरुषों का औसत 2:1 है। महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा कहीं कम औसत मजदूरी मिलती है। प्रबंधकों व प्रशासकों में उनका संख्या कुल संख्या का सातवां 'भाग है। केन्द्रीय मंत्रीमण्डल उनका स्थान 6 प्रतिशत व लोकसभा में 10 प्रतिशत है। इसलिए यदि वास्तविक विकास का आकलन करना है तो इसमें महिलाओं के विकास से सम्बन्धित सूचकांक को सम्मिलित करना भी आवश्यक है। क्योंकि वे विकास में अर्थपूर्ण योगदान करती हैं इसलिए विकास के लिए उनके योगदान का मूल्यांकन विशेषकर किया जाना चाहिए।
4. प्रजातंत्र सूचकांक – 'द इकॉनॉमिस्ट ने एक अध्ययन में 167 देशों में प्रजातंत्र का परीक्षण किया। इसने देशों को पूर्ण प्रजातंत्र, दोषपूर्ण प्रजातंत्र, व संकर प्रजातंत्र में वर्गीकृत किया। यह वर्गीकरण कुछ प्रश्नों जैसे कि – क्या वहाँ नौकरशाह सुरक्षित हैं? क्या वे नीतियों को लागू करने में सक्षम हैं? क्या राष्ट्रीय चुनाव स्वतंत्र, निष्पक्ष व न्यायपूर्ण हैं? इस प्रकार विकास में लोगों की सहभागिता सिद्ध होती है।
5. सकल राष्ट्रीय प्रसन्नता – यह जीवन की गुणवत्ता को सकल राष्ट्रीय उत्पाद से अधिक संपूर्णता में परिभाषित करने का प्रयास है। यह पारिभाषिक शब्द भूटान के जिग्मे वांगचुक द्वारा 1972 दी गई। विकास के पारम्परिक प्रतिमान आर्थिक उन्नति को विकास का अन्तिम लक्ष्य मानते

हैं। परन्तु सकल राष्ट्रीय प्रसन्नता भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति की गणना करता है। अत: मात्र आर्थिक उन्नति ही महत्वपूर्ण नहीं है। उससे अधिक सामाजिक आर्थिक विकास की दीर्घकालिकता सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण, एवं सुशासन की स्थापना आदि का महत्व है।

13.2.5 संस्थागत क्रियाविधियां

ग्रामीण समुदाय लघु गणतंत्र हैं जिनके भीतर उनकी आवश्यकता की लगभग समस्त वस्तुएं उपलब्ध हैं और वे किसी भी प्रकार के विदेशी सम्बन्धों से मुक्त हैं। ग्रामीण समुदाय जिनमें से प्रत्येक स्वयं में एक लघु राज्य है, ने भारत की जनता के संरक्षण में सर्वाधिक योगदान किया है।

ये वाक्य पूर्व उपनिवेश काल के एक स्वयंसिद्ध स्वतंत्र ग्राम का वास्तविक चित्रण करते हैं। परन्तु ब्रिटिश राज्य के उदय ने गांवों की इस गणतांत्रिक छवि को नष्ट कर दिया। केन्द्रीयकृत प्रशासन के प्रारम्भ से 'सभा की अवधारणा सर्वथा नष्ट हो गई। वास्तव में तो पंचायत की अवधारणा किसी न किसी रूप में भारतीय इतिहास में उपस्थित रही है। दुर्भाग्यवश ब्रिटिश शासन व्यवस्था को स्वशासन की भारतीय व्यवस्था की बुद्धिमत्ता पर विश्वास नहीं था। इस प्रकार विकास में सहभागिता का तत्व शनै: शनै: कम होता गया।

परन्तु संविधान सभा की बहसों के दौरान पंचायती राज्य संस्थाओं का समर्थन किया गया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने पंचायतों का जोरदार समर्थन करते हुए कहा कि 'संविधान को गांव से प्रारम्भ होकर केन्द्र की ओर जाना चाहिए। ' अंततः संविधान में अनुच्छेद 40 के अन्तर्गत पंचायतों के संगठन को सम्मिलित किया गया। इसका पाठ इस प्रकार है – राज्य ग्राम पंचायतों के संगठन के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी समस्त शक्तियां व सत्ता प्रदान करेगा जो स्वशासन की इकाईयों के रूप में कार्य करने में उन्हें सक्षम करे सकें।

स्वतंत्रता के पश्चात, 1956 में प्रारम्भ की गई स्थानीय पंच वर्षीय योजना की सहायता से राज्यों ने सामुदायिक विकास के कार्यक्रम आरम्भ किए। संपूर्ण भारत में ब्लॉक विकास समितियां, सहकारी संगठन, आदि कार्य कर रहे थे। तथापि, ये प्रयत्न अपूर्ण रहे। मुख्य समस्या पंचायतों के लिए वित्त की अनुपलब्धता थी। ग्रामीणों के स्तर पर पहल की कमी व उदासीनता के कारण निम्नमूल स्तर के प्रयास असफल सिद्ध हुए।

इस व्यवस्था की कमियों की जांच करने के लिए बलवन्त राय मेहता कमेटी का गठन किया गया। इसकी प्रमुख संस्तुति थी विकेन्द्रीकरण की त्रिस्तरीय व्यवस्था का निर्माण करना। यह स्तर थे ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, एवं जिला परिषद। इस प्रतिमान के माध्यम से शक्ति के हस्तांतरण का लक्ष्य रखा गया।

इस त्रिस्तरीय पंचायती राज्य व्यवस्था का उद्घाटन पंडित नेहरू द्वारा 2 अक्टूबर 1959 को किया गया। उनका विश्वास था कि लोगों को अवसर प्रदान करके उन्हें उत्तरदायित्व वहन करने हेतु प्रशिक्षित किया जा सकता है। इसलिए यह अत्यावश्यक हो जाता है कि एक साहसपूर्ण कदम उठाया जाए जिसके द्वारा अधिक से अधिक उत्तरदायित्वों का हस्तान्तरण किया जा सके। यह एक नए युग का आरम्भ था।

73 वां एवं 74 वां संशोधन अधिनियम

इन अधिनियमों में आबन्धों के विषय में दिशा निर्देश दिए गए हैं। जैसे कि नियमित चुनाव करवाना, अनुसूचित जाति, जनजाति व महिलाओं के लिए आरक्षण आदि। चुनाव आयोग की व्यवस्था भी इसके द्वारा की गई। पंचायतों का सफल संचालन दर्शाता है कि 73 वें व 74 वें संशोधनों की व्यवस्थाओं का तत्परता से पालन किया गया है। लोकप्रिय सहभागिता को व्यापक समर्थन मिलने के कारण यह निश्चित है कि यह व्यवस्था स्थाई हो चुकी है।

स्थापित संस्थागत क्रियाविधियों के अतिरिक्त कुछ अन्य क्रियाविधियां भी हैं जिनके माध्यम से जन सहभागिता सुनिश्चित की जा सकती है। वे इरा प्रकार हैं –

निर्वाचित अधिकारी

इन अधिकारियों को अपने मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी दिखाई देना पड़ता है और इसलिए ये सरकार में अधिक पारदर्शिता एवं जवाबदारी पर बल देते हैं। इसके अतिरिक्त, जब ये अधिकारी जन सहभागिता पर बल देते है तो इनकी सफलता की संभावना अधिक होती है क्योंकि इनके प्रयासों को वैध माना जाता है।

गैर लाभकारी संस्थाएं

इनका सरकार के साथ एक नेटवर्क संबंध होता है जिसके अनुसार वे निगमों में सेवाएं देते हैं, बैठकों में भाग लेते हैं और निर्वाचित अधिकारियों एवं व्यावसायिक प्रशासकों दोनों के ही साथ संबंध विकसित करते हैं। ये जन सहभागिता को काफी बल प्रदान करते हैं।

जनसंचार माध्यम

विकास प्रयासों में लोगों को सम्मिलित करने में जनसंचार माध्यम महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। वे सामुदायिक समस्याओं को प्रदर्शित करते हैं, सहभागिता के अवसर प्रदान करते हैं, और कई बार लोगों की ओर से आवाज भी उठाते हैं।

व्यवसाय

व्यवसाय सहभागिता के लिए ऐसे मार्ग एवं अवसरों का निर्माण करने हेतु समुचित वातावरण का निर्माण करता है जो अन्य नागरिकों के लिए भी कार्य कर सकें और इस प्रकार विकास में वृद्धि हेतु योगदान दे सकें। इस प्रकार व्यावसायिक संस्थान सामुदायिक सेवा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं।

धार्मिक संगठन

ये संगठन समुदाय की समस्याओं को देखने व सेवाएं प्रदान करने में सरकार के साथ सहयोग करते हैं। तथापि, एक धर्मनिरपेक्ष ढांचे में निर्णय प्रक्रिया में इनका सम्मिलन अपेक्षित नहीं है।

13.2.6 विकास में बाधाएं

1. विकास को शीर्ष से लाने वाला उपगमन – इसका अर्थ है विकास प्रक्रिया को उच्च स्तरीय अधिकारियों द्वारा लोगों तक लाया जाना। लोग विकास प्रक्रिया में भाग लेने में हिचकिचाते हैं क्योंकि वे उच्च अधिकारियों से डरते हैं। उन्हें केवल विकास का लाभग्राही होने का दर्जा दिया जाता है न कि विकास नीतियों में साझेदार का। इसलिए नीतियों का कार्यान्वयन निचले स्तर पर असफल हो जाता है। लोग अपने कौशल व विद्वता का विकास हेतु योगदान नहीं देते हैं।

2. उचित समन्वयन की कमी– समुदाय की आवश्यकताएं एवं राज्य की परम्पराएं व–उत्तरदायित्व सदैव परस्पर विरुद्ध रहे हैं। अधिकतर नीतियां विशेषज्ञों द्वारा निर्मित होती हैं और नियोजन व निर्णय प्रक्रिया के समय लोगों का सम्मिलन नहीं होता। इसलिए कार्यान्वयन के समय लोग पाते हैं कि नीतियां उनकी आवश्यकताओं से भिन्न हैं।
3. विकास हेतु पर्याप्त अनुदान न होना – अधिकतर विकास योजनाओं के लिए बहुत अधिक संसाधन एवं अनुदान के आवंटन की आवश्यकता होती है। परन्तु लोगों के पास पहुंचने तक यह राशि अत्यन्त कम हो जाती है जो उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपर्याप्त होती है। इसलिए ये योजनाएं केवल कागज पर आकर्षक लगती हैं। पर्याप्त वित्तीय संसाधनों के अभाव में लोग विकास योजनाओं को अपर्याप्त पाते हैं।
4. राजनीतिज्ञों द्वारा हस्तक्षेप की समस्या – राजनीतिज्ञ विकास को अपनी सेविका मानते हैं। इसलिए विकास योजनाओं के कार्यान्वयन में निरन्तर वे बाधा डालते रहते हैं। स्थानीय जनता राजनीतिज्ञों द्वारा धन एवं शक्ति के दुरुपयोग के कारण हतोत्साहित हो जाती है। उनके कौशल एवं क्षमताओं को उपेक्षित किया जाता है और राजनीतिज्ञों के स्वार्थ सर्वोपरि रहते हैं।

13.2.7 विकास के लिए सुझाव

1. विकास को स्थानीय वास्तविकताओं में स्थापित किया जाना – स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति तभी हो सकती है जब विकास में स्थानीय आवश्यकताओं पर विचार किया जाए। अंततः विकास के लाभग्राहियों को ही विकास का लाभ मिलना चाहिए। इसलिए विकास जन केन्द्रित, स्थानीय संसाधनों पर आधारित एवं सुस्थापित होना चाहिए।
2. सुविज्ञ व्यावसायिक विशेषज्ञों द्वारा दिशा निर्देशन – विकास के लिए नियोजन से कार्यान्वयन तक प्रत्येक अवस्था पर निरीक्षण व संचालन की आवश्यकता होती है और इसलिए निरन्तर दिशा निर्देश भी आवश्यक होता है। यह दिशा निर्देश विशेषज्ञों द्वारा दिया जाना आवश्यक है। यह लोगों के लिए इस कारण से उपयोगी है क्योंकि इसके द्वारा उनके प्रयासों को उचित दिशा मिलती है। सही निवेश के साथ मिल कर उनके प्रयास विकास के लिए सुविज्ञता एवं स्थानीय कौशल को संयुक्त कर एक नया प्रतिमान स्थापित करेंगे।
3. अन्तर्शास्त्रीय प्रकृति – विकास को मात्र आर्थिक मामला नहीं माना जाना चाहिए। इसके कई चेहरे हैं। इसलिए यह एक पूर्ण मामला है न कि केवल मात्रात्मक परिवर्ती। विकास को सफल बनाने के लिए विभिन्न विषयों से सम्बन्धित सफल व्यक्तिओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए। जैसे कि कृषि, अभियांत्रिकी सामाजिक कार्य, निर्माण, चिकित्सा आदि के क्षेत्र के व्यक्तियों को सम्मिलित हो कर विकास को सम्भव बनाना चाहिए। मात्र विशेषज्ञों एवं जनता की सेवाओं पर निर्भर करना पर्याप्त नहीं है।
4. पारदर्शिता एवं प्रेरकता – लोग तभी पूर्ण भावना से विकास में भागीदारी करेंगे जब उन्हें पता होगा कि उनके प्रयास व्यर्थ नहीं जाएंगे। इसके लिए निरन्तर प्रेरकता की आवश्यकता है। उनकी रुचि को बनाए रखने के लिए विभिन्न लघु कार्य आवंटित किए जाने चाहिए। उत्तरदायित्व की भावना निश्चित ही उन्हें आगे बढ़ाएगी। उनके प्रयासों की तीव्रता में भी वृद्धि होगी। योजनाओं के कियान्वयन में पारदर्शिता, शीर्ष से अनावश्यक दबाव एवं उच्चाधिकारियों द्वारा अनुचित

हस्तक्षेप की अनुपस्थिति, कोष के दुरुपयोग पर रोक आदि स्थितियां विकास के लिए लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करवाने का उचित वातावरण उपलब्ध करवा सकती हैं।

5. काईजन उपागम – काईजन एक जापानी तकनीक है जिसके अन्तर्गत कदम दर कदम निरन्तर विकास होता रहता है क्योंकि विकास गतिविधियों में लोगों का पूर्ण सम्मिलन होता है। काईजन का अर्थ दो जापानी शब्दों से प्रतिपादित किया गया है– काई अर्थात कदम दर कदम जून अर्थात निरन्तर सुधार।

यह एक पूर्णतया सामूहिक गतिविधि है जिसमें लोगों के एक समूह से प्रतिभागी साथ कार्य करके विकास प्रक्रिया करने का प्रयास करते हैं। वे सामूहिक प्रयास करके कदम दर कदम निरन्तर विकास करते हैं। ये समूह निम्नतम स्तर पर बनाए जाते हैं। सभी प्रतिभागी सक्रिय सहभागिता करते हैं और अंततः विकास के लिए व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करते हैं।

ऐसे कई उदाहरण हैं जहां विकास कार्य के लिए सहभागी तरीका अपनाया गया–

1. ग्रामीण महिलाओं के लिए अति लघु स्तर पर वित्त सुविधा 'स्ववित्तपोषी सहायता समूह'
2. साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए सामुदायिक कार्य

काईजन की अवधारणा की सफलता के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि ऐसे लघु समूह मोहल्ले के स्तर पर बनाए जाने चाहिए और समूह के नेताओं को नियमित रूप से नगर दण्डनायक के अन्तर्गत आने वाले प्रशासनिक प्रमुखों से मिलते रह कर अपने मोहल्ले के सर्वांगीण विकास के लिए कार्य करना चाहिए।

13.3 सारांश

इस इकाई में विकास में लोगो की सहभागिता के अर्थ एवं लाभ के विषय में अध्ययन किया। इसके साथ–साथ हमने विकास नीतियों का भी अध्ययन किया। इस इकाई में आधुनिकीकरण एवं राजनीतिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जन सहभागिता के महत्व पर भी विचार किया गया। विकास के सूचक एवं संस्थागत क्रियाविधियों का अध्ययन भी इस इकाई में सम्मिलित किया गया। अन्त में हमने जन सहभागिता में आने वाली बाधाओं एवं उनके उपचारों पर चर्चा की।

13.4 शब्दावली

साझेदारी : जो किसी परियोजना मे मात्र लाभग्राही न रह कर सक्रिय भागीदारी करते है।

विकास के सूचक : विकास को मापने के लिए उचित मापदण्ड जो भिन्न–भिन्न देशों मे विकास का स्तर दर्शाते है।

काईज़न : एक जापानी तकनीक जिसमें कदम दर कदम निरन्तर विकास / सुधार होता है।

13.5 अभ्यास प्रश्न

1. विकास की संस्थागत क्रियाविधियां कौन सी हैं।
2. 'काईज़न' से आप क्या समझते हैं? इसके क्या लाभ हैं?
3. सहभागिता की सार्थकता की समीक्षा कीजिए।

13.6 संदर्भ ग्रंथ

1. देसाई, वसन्त : पंचायती राज, हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1990

2. मिश्रा, बी. एन. : 'रूरल डवलपमेंट', कुरूक्षेत्र, मार्च, 1991
3. हीरवे इन्द्रा : 'पंचायती राज एट ग्रास रूट', इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, जुलाई, 1989
4. मेहता, दी. आर. : कमेटी रिपोर्ट ऑन प्लान प्रोजेक्ट, प्लानिंग कमीशन, नई दिल्ली. वो. व, 1959

ISBN - 13/978-81-8496-035-8